प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक

[विभिन्न विश्वविद्यालयों की बी० ए० राजनीतिशास्त्र के छात्रों के लिए]

लेखक :
डॉ० बी० पी० पाण्डेय
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
राजनीतिशास्त्र विभाग
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
टीकमगढ़ (म० प्र०)

सरस्वती प्रेस
इलाहाबाद

प्रकाशक
श्रीपतराय,
सरस्वती प्रेस,
इलाहाबाद।

प्रथम संस्करण १९७७

मूल्य ४०.०० रुपये

मुद्रक :
सरस्वती मुद्रण प्रतिष्ठान,
H-२६, राधेपुरी, दिल्ली-५१
द्वारा अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

प्रस्तावना

'राजनीतिक विचारकों' पर आज छात्रों को अनेक पुस्तकें उपलब्ध है। इनमें कुछ अनुवाद है, तो कुछ प्रश्नोत्तर रूप मे लिखी पुस्तकें है। इन पुस्तको में छात्रों की भाषागत कठिनाइयों को बहुत-कुछ रूप में हल कर दिया है। किंतु 'कोर्स' की कठिनाई अभी भी है। ऐसी पुस्तकें कम ही है जो निर्धारित पाठ्यक्रम को पूरा करती हों। अन्य कठिनाइयों के साथ-ही-साथ प्रस्तुत पुस्तक में छात्रों की इस 'कोर्स' विषयक कठिनाई को ध्यान मे रखा गया है और मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार आदि राज्यों के विश्वविद्यालयों द्वारा बी० ए० के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम को पुस्तक का आधार बनाया गया है।

साथ ही, राजनीतिक दर्शन जैसे कठिन एवं दुरूह विषय को अधिकाधिक रूप मे स्पष्ट करने एवं सरल और सुबोध बनाने का प्रयास किया गया है। दर्शन के विभिन्न पक्षो को विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत रखकर उनकी व्याख्या की गई है। पुस्तक की भाषा, छात्रों की अपनी ही भाषा है। मुझे पूरा-पूरा विश्वास है कि भाषा इन विचारकों के विचारों एवं भावों को हृदयंगम करने में बाधक नहीं होगी, अपितु सहायक ही होगी।

पुस्तक में 'प्रतिनिधि' विचारकों को ही सम्मिलित किया गया है; इनमें कुछ पाश्चात्य दार्शनिक है और कुछ भारतीय। पाश्चात्य विचारकों में जहाँ प्लेटो और अरस्तू यूनानी राजदर्शन का प्रतिनिधित्व करते हैं, वहाँ सिसरो एवं संत टामस एक्वीनास क्रमशः रोमन एवं मध्ययुगीन राजदर्शन के महान् प्रतिनिधि है। मैकियावेली, रूसो, टी० एच० ग्रीन एवं कार्ल मार्क्स आधुनिक राजनीतिक दर्शन के प्रतिनिधि है। भारतीय विचारकों में मनु और कौटिल्य जहाँ प्राचीन भारतीय दर्शन का प्रतिनिधित्व करते है, वहाँ तिलक, गांधी, नेहरू आधुनिक भारत की वह महान् विभूतियाँ है जिन पर हम सभी को गर्व है।

पुस्तक के अन्त मे कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को सन्निहित किया गया है। इन दार्शनिको पर सामान्यतः ऐसे ही प्रश्न पूछे जाते है। इनसे छात्रों को मार्गदर्शन मिलेगा, ऐसा मेरा विचार है।

भाषा की सरलता एवं विषय की स्पष्टता के साथ ही 'शैली' इस पुस्तक की सबसे बडी विशेषता है। किसी भी विचारक अथवा दार्शनिक के दर्शन के निर्माण के पीछे एक निश्चित पृष्ठभूमि होती है, जो उसे आधार प्रदान करती है; कुछ समस्याएँ होती है, जिनका वह अपने ढंग से निदान प्रस्तुत करता है; उसके दर्शन पर परिस्थितिगत

तथा अन्य प्रभावों को भी जानना जरूरी है। इन सबके बिना किसी भी राजनीतिक विचारक के दर्शन को पढ़ा तो जा सकता है, समझा नहीं जा सकता, उसे पूर्णतः हृदयंगम नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत पुस्तक में प्रत्येक दार्शनिक—पाश्चात्य एवं भारतीय—के सामान्य परिचय के साथ ही उसके ऊपर पड़ने वाले प्रभावों, उसकी प्रमुख समस्याओं और उसके द्वारा सुझाए गए निदानों के संदर्भ में ही उसके दर्शन को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

पुस्तक छात्रों के लिए न केवल उपयोगी सिद्ध होगी बल्कि वह उसे पसंद भी करेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है।

पुस्तक को और अधिक उपयोगी बनाने के लिए सभी सुझावों का मैं हृदय से स्वागत करूँगा।

—बी० पी० पाण्डेय

विषय सूची

खण्ड—अ

राजनीतिक विचारक

[POLITICAL THINKERS]

प्लेटो

[PLATO]

[ई० पू० ४२८—३४७]

जो पुरानों के स्थान पर नए विश्व में आस्थावान हैं, प्लेटो के
ह—
—सी० सी० मैक्सी

ट—

य—स्थान : एथेन्स (यूनान); जन्म : ई० पू० ४२८; मृत्यु : ई० पू०
३४७।

—रिपब्लिक : ई० पू० ३७८; स्टेट्समैन : ई० पू० ३६५; लॉज :
ई० पू० ३६०—३४८।

दर्शन है और दर्शन प्लेटो।" —इमरसन

महान् दार्शनिकों में से एक है जिन्होंने विश्व को उन तत्त्वों से परिचित
त है, उस 'सत्य' का उद्घाटन किया है जिसे प्रत्येक व्यवस्था के मूल
है, उस 'ज्ञान स्रोत' को प्रवाहित किया है जो चिंतक एवं विचारकों की
ई है। यह 'तत्त्व', यह 'सत्य' और यह 'ज्ञान स्रोत' न तो देश और युग
मित है और न किसी एक विषय से संबद्ध। प्लेटो के विचारों को 'सर्व-
गीन' कहना अधिक उपयुक्त होगा। लगभग हर देश (विशेषकर
हर युग में 'प्लेटो' अध्ययन एवं चिंतन का विषय रहा है तथा उसके
थवा अधिक रूप में) युग विशेष की लगभग प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विचार-
सकता है। 'आदर्शवाद' का तो वह स्वयं प्रणेता था। आज के युग
विचारधाराओं—समाजवाद और साम्यवाद का भी उसे मूल प्रेरणा-
है। मैक्सी ने लिखा है—"समस्त समाजवादी तथा साम्यवादी चिंतन
। यदि प्लेटो आज जीवित होता तो वह उत्कृष्टतम साम्यवादी सिद्ध
देह उसी उत्साह से रूस की यात्रा की शीघ्रता करता जिस उत्साह
न सिराक्यूज के निरंकुश शासक के आमंत्रण पर वहाँ गया था।"

जहाँ तक एक अन्य महत्त्वपूर्ण विचारधारा—फॉसीवादी (अधिनायकवादी) विचारधारा का प्रश्न है उसे 'प्रथम फॉसिस्टवादी' निरूपित किया गया है। जहाँ तक 'साध्य विषय' और उसकी 'परिधि' का प्रश्न है, प्लेटो ने अपने को किसी एक विषय तक सीमित नहीं रखा है।

सामान्य परिचय

प्लेटो का असली नाम 'अरिस्तोक्लीज' था। स्वस्थ एवं बलिष्ठ शरीर के कारण प्लेटो नाम पड़ा। प्रखर एवं तीक्ष्ण बुद्धि उसे प्रकृति से देन में मिली थी। उसका जन्म एथन्स के एक कुलीन, संभ्रान्त एवं समृद्ध परिवार मे ईसा पूर्व ४२७ मे हुआ था। वह पितृपक्ष की तरफ से (उसके पिता का नाम अरिस्तोन था) एथेन्स नगर-राज्य के राजवंश से तथा मातृपक्ष (उसकी माता का नाम पेरिकटिओन था) की तरफ से प्रसिद्ध सोलोन घराने से संबद्ध था। ऐसे घरानों से, जो एथेन्स की राजनीति में सक्रिय थे, संबंधित होने के कारण प्लेटो की राजनीतिक जीवन मे प्रवेश करने की महती किंतु प्रारंभिक आकांक्षा को अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। उससे अपेक्षा भी यही की गई थी। किंतु दो महत्त्वपूर्ण घटनाओं ने उसके जीवन क्रम को ही बदल दिया—ईसा पूर्व ४०४ के विद्रोह (तीस के विद्रोह से विख्यात है) तथा उसके तुरंत उपरांत की दुखद घटनाओं एवं बर्बरतापूर्ण अत्याचारों के क्रम ने उसकी राजनीतिक मान्यताओं को झकझोर कर राजनीतिक आकांक्षाओं को धूमिल बना दिया था। ऐथेन्स की राजनीति के प्रति उसकी घृणा उस समय अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गई जब तात्कालिक अप्र शासन-व्यवस्था के आदेश पर सुकरात जैसे महान् व्यक्ति (जिसे प्लेटो अपने युग का सर्वाधिक बुद्धिमान, न्यायपरायण तथा सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति मानता था) को जहर का प्याला पीकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर देनी पड़ी। प्रोफेसर गैटिल ने तो यहाँ तक लिखा है—इसके बाद उसने एथेन्स की राजनीति में फिर कभी सक्रिय भाग नहीं लिया और प्लेटो सक्रिय राजनीतिज्ञ बनते-बनते रह गया। जीवन क्रम में इस मोड़ ने प्लेटो को दर्शन के अध्ययन की ओर उन्मुख किया।

कुछ शासन के प्रकोप से बचने के लिए और कुछ परिस्थितिजन्य नैराश्य को कम करने के लिए प्लेटो ने अनेक देशों का पर्यटन किया। इस दौरान प्लेटो को अनेकानेक शासन पद्धतियों का अध्ययन करने और विभिन्न व्यवस्थाओं को समीप से देखने का भरपूर अवसर मिला। उसके विचारों में प्रौढ़ता भी आने लगी थी। **रिपब्लिक** जैसी अमर कृतियों की यही रचनात्मक पृष्ठभूमि थी। **अकादमी** ई० पू० ३८६ में प्लेटो द्वारा एथेन्स में स्थापित शिक्षण संस्था की स्थापना इस दिशा में अकेला कदम था। फॉस्टर ने इस संस्था के संबंध मे लिखा है : प्लेटो की अकादमी केवल बौद्धिक प्रशिक्षण का केंद्र मात्र नहीं थी। यह ग्रीक जीवन को सुधारने के लिए आवश्यक राजनीतिक वैज्ञानिकों तथा प्रशासकों के निर्माण का कारखाना थी। प्लेटो ने लगभग ४२ वर्ष का बाकी अपना आधा जीवन इसी संस्था मे अध्ययन-अध्यापन में व्यतीत किया। ईसा पूर्व ३४७ में अस्सी वर्ष की आयु मे इस महान दार्शनिक की मृत्यु हो गई

प्रमुख रचनाएँ

प्लेटो ने अनेकानेक विषयों पर साधिकार अनेकों ग्रंथों की रचना की, जिनकी संख्या ४० के लगभग है। राजनीतिक दर्शन के क्षेत्र में **रिपब्लिक, स्टेट्स्मैन** तथा **लॉज** उसकी महान् कृतियाँ है। ऐपोलजी तथा गोर्जियाज जैसी रचनाएँ भी राजनीतिशास्त्र के छात्र के लिए लाभप्रद हो सकती है। इन कृतियों में प्लेटो लगभग २५०० वर्ष बाद आज भी जीवित है और जीवित रहेगा। इसमें **रिपब्लिक** ही प्लेटो की विचारधारा का सही प्रतिनिधित्व करती है। बिलडुरॉ ने **रिपब्लिक** को "प्लेटो का पुस्तकीकरण" कहा है। यह सही है कि आज मानव जीवन के प्रत्येक पहलू का अध्ययन अलग-अलग शास्त्र के रूप में किया जा रहा है किन्तु उस युग में जब प्लेटो अपनी **रिपब्लिक** की रचना मे संलग्न था जीवन इतना अधिक विभाजित नहीं था। जीवन मे समग्रता एवं एकरूपता थी। साथ ही 'राज्य' और 'समाज', 'राजनीति' और 'नैतिकता' जैसे विषयों में अंतर नही माना गया था। इसके अतिरिक्त प्लेटो व्यक्ति को एक इकाई के रूप मे मान्यता नहीं दे सका। वह उसे राज्य से अलग कोई महत्त्व नही देता। परिणामस्वरूप प्लेटो के लिए व्यक्ति की नैतिकता राज्य की नैतिकता है और राज्य की श्रेष्ठता पर व्यक्ति की श्रेष्ठता निर्भर करती है। उसने लिखा है : "राज्य वृक्षों या चट्टानों से पैदा नहीं होते बल्कि उन व्यक्तियों के चरित्र से निर्मित होते है जो उनमें निवास करते है।" इन सभी मान्यताओं का परिणाम यह हुआ कि **रिपब्लिक** किसी एक विशिष्ट विषय की पुस्तक न रहकर सभी विषयों की एक पुस्तक बन गई है। नेटाइन ने इसी आशय की पुष्टि करते हुए लिखा है : "**रिपब्लिक** किसी निश्चित प्रकार का ग्रंथ नहीं है। यह न तो राजनीति की पुस्तक है और न नीतिशास्त्र या अर्थशास्त्र या मनोविज्ञान की, यद्यपि इसमें इन सभी का समावेश हुआ है या और अधिक विषयों का भी, क्योंकि इसमें कला, शिक्षा तथा दर्शन को भी नहीं छोड़ा गया है।"

रिपब्लिक में प्लेटो की समस्या थी . आदर्श के रूप मे शासन की सर्वोत्कृष्ट व्यवस्था के निदान के रूप में उसने दार्शनिक शासक (जिसमें विवेक की प्रधानता होती है) के शासन को सर्वश्रेष्ठ निरूपित किया है। कालांतर मे प्लेटो के विचारों मे परिवर्तन आया और इन्हीं परिवर्तित विचारो की अभिव्यक्ति **स्टेट्स्मैन** तथा **लॉज** पुस्तकों में हुई है। **स्टेट्स्मैन** जिसे **पॉलिटिक्स** भी कहा गया है, अपेक्षाकृत एक संक्षिप्त कृति है जिसमें यद्यपि प्लेटो की आस्था **रिपब्लिक** के आदर्श राज्य मे यथावत् बनी हुई है किंतु जिसका झुकाव 'विधिमूलक शासन' के प्रति कुछ बढ गया है। उसका निष्कर्ष है कि परिस्थितियाँ जैसी हैं उनमे विधि का शासन ही शासन का एक मात्र व्यावहारिक स्वरूप है। गैटिल ने **स्टेट्स्मैन (पॉलिटिक्स)** को एक ऐसी कृति कहा है जो प्लेटो के विचारों मे संक्रमण का प्रतिनिधित्व करती है। **लॉज** मे जाकर यह संक्रमण समाप्त हो जाता है। दार्शनिक ठोस धरातल पर उतर आता है और वास्तविकताओं के आगे नत-मस्तक हो जाता है। **लॉज** मे प्लेटो वास्तविक राज्यों की विस्तृत चर्चा करता है और कानूनों की आवश्यकता को स्वीकार कर लेता है। गैटिल ने लिखा है : "**लॉज** में प्लेटो ने प्रशासन व्यवस्था का

सविस्तार वर्णन किया है जिसमें लोकतंत्रीय और अभिजाततंत्रीय तत्त्वों का समन्वय और नियंत्रण तथा संतुलन की विशद व्याख्या है।"

रिपब्लिक के 'आदर्श राज्य' की परिणति लॉज के 'उपआदर्श राज्य' में होती है। यह एक महान् संयोग ही है कि जहां सुकरात का 'गुण ही ज्ञान है' प्लेटो का समारंभ है वहां लॉज की मान्यता अरस्तू (प्लेटो के महान् शिष्य) का समारंभ है। ऐसी गुरु-शिष्य परंपरा अन्यत्र दुर्लभ है।

रचना शैली एवं पद्धति :

रचना की जिस वर्णनात्मक शैली से आज हम सामान्यतः परिचित हैं उस शैली का प्लेटो ने प्रयोग नहीं किया है। उसके ग्रंथ 'संवाद शैली' में लिखे गए हैं। इस शैली में कुछ पात्र प्रश्न एवं समस्याएँ प्रस्तुत करते हैं तथा दूसरे पात्र समाधान प्रस्तुत करते हैं। इसे 'प्रश्नोत्तर', 'कथोपकथन' या 'वादविवाद प्रणाली' भी कहा जा सकता है। इस प्रणाली में सहज रूप में ग्राह्य तर्क के आधार पर विषय का प्रतिपादन होता है तथा विषय को आगे बढ़ाया जाता है। प्लेटो की मान्यता थी कि सत्य की खोज (जो एक दार्शनिक का प्रमुख लक्ष्य है) के लिए एकमात्र यही प्रणाली उपयुक्त है। मैटर ने इस आशय की पुष्टि में लिखा है : "(व्यक्तिगत) वाद-विवाद के रूप में लिखे गए संवाद दर्शन—सत्य के निरंतर अन्वेषण से परिपूर्ण हैं और बौद्धिक उधेड़-बुन के संचालित अभिनय हैं"। 'उद्धरण' एवं 'सादृश्यता' इस प्रणाली के अभिन्न अंग हैं। प्लेटो ने इन दोनों ही तरीकों का, विषय के स्पष्टीकरण के संदर्भ में, खुल कर प्रयोग किया है। संरक्षक वर्ग की संतान श्रेष्ठ हो इस आशय के अपने तर्क के समर्थन में उसने पशुओं विशेषकर घोड़ों का उदाहरण लिया है। दार्शनिक शासक के किन्हीं विशिष्ट लक्षणों के स्पष्टीकरण के लिए उसने 'प्रहरी' की सादृश्यता प्रस्तुत की है।

प्रमुख प्रभाव :

प्लेटो का लक्ष्य एक ऐसी शासन प्रणाली की खोज थी जो सभी दृष्टियों से 'आदर्श' हो और प्लेटो के अनुसार, ऐसा तभी संभव था जब कि शासन संचालन का दायित्व जानकार, योग्य एवं सक्षम व्यक्तियों—दार्शनिकों—के हाथों में हो। उसका कथन था : "जब तक शासक दार्शनिक नहीं बन जाते या दार्शनिकों को शासक नहीं बना दिया जाता तब तक शासन भ्रष्ट ही बना रहेगा और सुकरात जैसे मनीषियों को असक्षम, अयोग्य एवं अज्ञानी व्यक्तियों के हाथों अपने प्राण गँवाते रहना होगा।"

इस आदर्श राज्य के निर्माण में जिन तत्त्वों एवं मान्यताओं को आधार बनाया गया है वह भी, कम अथवा अधिक रूप में, उसी वातावरण का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष परिणाम थे। प्रजातंत्र के प्रति प्लेटो की घृणा को ही लीजिए : ऐसा प्रजातंत्र जो सुकरात जैसे महान् व्यक्तियों का जीवन ले ले, कभी भी सुकरात के अनन्य उपासक प्लेटो का आदर्श नहीं बन सकता था। प्रत्येक को 'चिकित्सक' बनाने तथा 'प्रत्येक का समान योग्यता के साथ दूसरों पर प्रशासन' जैसी प्रजातांत्रिक मान्यताओं से प्लेटो का मौलिक

विरोध था। राजनीतिज्ञों की अक्षमता, अज्ञानता, स्वार्थपरक गुटबंदी तथा उनके आपसी संघर्षों की उसने कटु आलोचना की है। प्लेटो ने प्रजातांत्रिक व्यक्ति का चित्रण इस प्रकार किया है : "(वह) यदि एक क्षण शराब के नशे में चूर है तो दूसरे ही क्षण परहेज़गार, कभी खेलकूद में भीषण संलग्न तो कभी उससे पूर्णतः विमुख और फिर दोनों से ही अलग दर्शन के अध्ययन में रत। आज राजनीतिज्ञ है और खड़े होकर बिना सोचे-समझे व्यर्थ बकवास करता है तो कल शूरवीर योद्धा।"

तात्कालिक राजनीतिक जीवन को बड़ी गहराई तथा बहुत बारीकी के साथ समीप से अध्ययन करने पर प्लेटो का यही निष्कर्ष था कि एथेन्स की उस पतित, गर्हित एवं अपमानजनक स्थिति के लिए ऐसे ही प्रजातांत्रिक व्यक्ति उत्तरदायी थे। कुछ आलोचकों ने प्लेटो के प्रजातंत्र विरोधी होने के लिए उसका अभिजात कुल में जन्म बतलाया है। इसके खंडन में सेबाइन ने बड़ा ही सुंदर तर्क दिया है : "प्रजातंत्र में उसकी अनास्था अरस्तू से कहीं कम थी जो न तो अभिजात कुल में पैदा हुआ था और न एथेन्स का निवासी था।" स्पष्ट है उसके प्रजातंत्र विरोधी विचार परिस्थितियों के ही सीधे परिणाम थे।

प्लेटो के विचारों पर सर्वाधिक प्रभाव सुकरात का पड़ा। प्लेटो की अपनाई संवाद पद्धति सुकरात की ही देन थी। इन संवादों में सुकरात ही प्रमुख पात्र है। डैवसी का यह संक्षिप्त-सा वाक्यांश प्लेटो पर सुकरात के प्रभाव को पूर्णतः स्पष्ट कर देता है कि "प्लेटो में सुकरात पुनः जीवित हुआ है।"

प्रमुख समस्या—प्लेटो के समय में न केवल एथेन्स बल्कि समूची यूनानी सभ्यता पतनोन्मुख थी। यूनानी नागरिक होने के कारण इस पतन से उसका चिंतित होना स्वाभाविक ही था। किंतु प्लेटो इससे भी अधिक दार्शनिक एवं भावुक चिंतक भी था। उसने नगर राज्यों की आलोचनात्मक समीक्षा की : शासन अक्षम एवं अयोग्य व्यक्तियों द्वारा संचालित था। गुटबंदियों एवं दलीय हितों में संघर्ष के कारण नगर-राज्य सरकारें सापेक्ष रूप से अस्थिर थीं। छोटे-से-छोटे नगर-राज्य में भी संपत्ति के आधार पर जो दो राज्य बन गए थे—वह जिनके पास संपत्ति थी और वह जो निर्धन थे (निर्धनों का राज्य)—इनमें युद्ध की स्थिति थी। नागरिकों की शिक्षा के साथ-ही-साथ प्रशासकों का प्रशिक्षण भी आवश्यक था। अतः प्लेटो की समस्या एक ऐसी व्यवस्था का निर्धारण था जो मोटे तौर पर स्थायी हो, जिसमें शासन-संचालन योग्यतम व्यक्तियों में निहित हो, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्राकृतिक गुणों के अनुसार ही कार्य दिया जाय, जिसमें संपत्ति की एक समुचित व्यवस्था निर्मित की जा सके तथा ऐसी शिक्षा-व्यवस्था को बनाया जा सके जो श्रेष्ठ नागरिकों तथा श्रेष्ठ शासकों दोनों के निर्माण में समर्थ हो। प्रश्न था : ऐसे राज्य का क्या स्वरूप हो ?

रिपब्लिक में प्लेटो ने इसी समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है। प्रोफेसर नेटिलशिप ने लिखा है : "यह **रिपब्लिक** उस व्यक्ति के उत्साह द्वारा लिखी गई है जो केवल मानव जीवन पर ही विचार नहीं कर रहा था बल्कि जो उसे सुधारने और उसमें क्रांतिकारी परिवर्तन करने के लिए अत्यंत व्याकुल था। प्रत्येक गंभीर खराबी को ध्यान में रखकर ही इसे लिखा गया है।"

तथापि किसी एक गुण की ही प्रमुखता या प्रधानता होती है। यही प्रधान गुण व्यक्ति के कार्य का निर्धारण करता है और इस संदर्भ में प्लेटो गुण के अनुसार कार्य का भी निरूपण करता है : जिनमें विवेक की प्रधानता है, जो ज्ञानी एवं बुद्धिमान हैं वह अच्छे प्रशासक होंगे; जिनमें उत्साह है, जो साहसी और महत्त्वाकांक्षी है वह अच्छे सैनिक होंगे और जिनमें क्षुधा की प्रमुखता है, जिनमें अनेकानेक प्रकार की भूख ने 'डेरा' डाल लिया है वह अच्छे उत्पादक होंगे। आत्मा के (इन) गुणों के आधार पर राज्य के व्यक्तियों के कार्यों का उपरोक्त निर्धारण करने के दो तार्किक परिणाम समक्ष प्रस्तुत होते है :

१. राज्य के तीन कार्य हैं—शासन, रक्षा एवं उत्पादन; तथा २. समाज के तीन वर्ग है—प्रशासक, सैनिक एवं उत्पादक।

शासन का दायित्व (विवेकी) प्रशासकों को, देश की रक्षा का दायित्व (साहसी) सैनिकों को तथा उत्पादन का दायित्व (क्षुधा प्रधान) उत्पादकों को सौंपा गया है। प्लेटो (इन) तीनों वर्गो एवं उनके (इन) विशिष्ट कार्यो के औचित्य को तर्क की कसौटी पर इस प्रकार आकता है—

यह सही है कि राज्य व्यक्तियों द्वारा निर्मित है किन्तु राज्य असंबद्ध व्यक्तियों का समूह मात्र नहीं है। राज्य में व्यक्ति आपस में घनिष्ठ रूप से संबद्ध है। संबद्धता का कारण 'आर्थिक आवश्यकताएँ' हैं। प्लेटो की मान्यता है कि राज्य की उत्पत्ति मनुष्य की आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप होती है। कोई भी व्यक्ति आत्मनिर्भर नही होता। आवश्यकताओं की पूर्ति में वह दूसरों पर निर्भर है। चूंकि आवश्यकताएं अनेक होती हैं अत. उनकी पूर्ति के लिए बहुत से व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। यह पारस्परिक दृष्टि से अन्योन्याश्रित व्यक्ति जब एकसाथ निवास करने लगते है तभी राज्य का निर्माण होता है। व्यक्ति अपनी स्वयं की इन प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति में समर्थ नही है। अत: इनकी पूर्ति के लिए प्रत्येक दूसरे पर निर्भर है। यही पारस्परिक पर-निर्भरता राज्य के व्यक्तियों को एकता के सूत्र मे बांधने वाला आरंभिक किन्तु महत्त्वपूर्ण तंतु है। एक व्यक्ति एक वस्तु का उत्पादन करता है और दूसरा दूसरी वस्तु का। इस प्रकार उत्पादन विषयक यह समूची व्यवस्था 'श्रमविभाजन' तथा 'विशिष्टीकरण' पर आधारित है। प्लेटो की मान्यता है कि जिन व्यक्तियों मे क्षुधा की प्रधानता है वही उत्पादन के इस कार्य को अपनी पूरी दक्षता एवं निष्ठा के साथ कर सकेंगे। ऐसे व्यक्ति राज्य के प्रथम वर्ग—**उत्पादक वर्ग**—का गठन करते हैं।

प्रोफेसर बार्कर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्लेटो और उसके पूर्वगामी दार्शनिक' में लिखते हैं : "प्राथमिक आवश्यकताओं की मात्र पूर्ति से व्यक्ति संतुष्ट नही हो जाते। वह अपनी परिष्कृत इच्छाओं की संतुष्टि भी चाहते हैं।" अन्न, वस्त्र और निवास जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं के पूरा हो जाने पर अच्छे जीवन की लालसा व्यक्ति को स्वाभाविक रूप से सताने लगती है। यह आवश्यकताएँ प्राथमिक आवश्यकताओं से न केवल प्रकृतितः भिन्न होती हैं बल्कि संख्या में भी अधिक होती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किए गए कार्यों में भी अनेकरूपता एवं विभिन्नता आने लगती है। अधिकाधिक रूप में व्यक्ति इन कार्यों के प्रति आकृष्ट होते है। यह क्रम उत्तरोत्तर रूप में अग्रसर होता

विरोध था। राजनीतिज्ञों की अक्षमता, अज्ञानता, स्वार्थपरक गुटबंदी तथा उनके आपसी संघर्षों की उसने कटु आलोचना की है। प्लेटो ने प्रजातांत्रिक व्यक्ति का चित्रण इस प्रकार किया है : "(वह) यदि एक क्षण शराब के नशे में चूर है तो दूसरे ही क्षण परहेजगार, कभी खेलकूद में भीषण संलग्न तो कभी उससे पूर्णत: विमुख और फिर दोनों से ही अलग दर्शन के अध्ययन में रत। आज राजनीतिज्ञ है और खड़े होकर बिना सोचे-समझे व्यर्थ बकवास करता है तो कल शूरवीर योद्धा।"

तात्कालिक राजनीतिक जीवन को बड़ी गहराई तथा बहुत बारीकी के साथ समीप से अध्ययन करने पर प्लेटो का यही निष्कर्ष था कि एथेन्स की उस पतित, गर्हित एवं अपमानजनक स्थिति के लिए ऐसे ही प्रजातांत्रिक व्यक्ति उत्तरदायी थे। कुछ आलोचकों ने प्लेटो के प्रजातंत्र विरोधी होने के लिए उसका अभिजात कुल में जन्म बतलाया है। इसके खंडन में सेबाइन ने बड़ा ही सुंदर तर्क दिया है : "प्रजातंत्र में उसकी अनास्था अरस्तू से कहीं कम थी जो न तो अभिजात कुल में पैदा हुआ था और न एथेन्स का निवासी था।" स्पष्ट है उसके प्रजातंत्र विरोधी विचार परिस्थितियों के ही सीधे परिणाम थे।

प्लेटो के विचारों पर सर्वाधिक प्रभाव सुकरात का पड़ा। प्लेटो की अपनाई संवाद पद्धति सुकरात की ही देन थी। इन संवादों में सुकरात ही प्रमुख पात्र है। मैक्सी का यह संक्षिप्त-सा वाक्यांश प्लेटो पर सुकरात के प्रभाव को पूर्णत: स्पष्ट कर देता है कि "प्लेटो में सुकरात पुन: जीवित हुआ है।"

प्रमुख समस्या—प्लेटो के समय में न केवल एथेन्स बल्कि समूची यूनानी सभ्यता पतनोन्मुख थी। यूनानी नागरिक होने के कारण इस पतन में उसका चिंतित होना स्वाभाविक ही था। किंतु प्लेटो इससे भी अधिक दार्शनिक एवं भावुक चिंतक भी था। उसने नगर राज्यों की आलोचनात्मक समीक्षा की : शासन अक्षम एवं अयोग्य व्यक्तियों द्वारा संचालित था। गुटबंदियों एवं दलीय हितों में संघर्ष के कारण नगर-राज्य सरकारें सापेक्ष रूप से अस्थिर थीं। छोटे-से-छोटे नगर-राज्य में भी संपत्ति के आधार पर जो दो राज्य बन गए थे—वह जिनके पास संपत्ति थी और वह जो निर्धन थे (निर्धनों का राज्य)—उनमें युद्ध की स्थिति थी। नागरिकों की शिक्षा के साथ-ही-साथ प्रशासकों का प्रशिक्षण भी आवश्यक था। अत: प्लेटो की समस्या एक ऐसी व्यवस्था का निर्धारण था जो मोटे तौर पर स्थायी हो, जिसमें शासन-संचालन योग्यतम व्यक्तियों में निहित हो, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्राकृतिक गुणों के अनुसार ही कार्य दिया जाय, जिसमें संपत्ति की एक समुचित व्यवस्था निर्मित की जा सके तथा ऐसी शिक्षा-व्यवस्था को बनाया जा सके जो श्रेष्ठ नागरिकों तथा श्रेष्ठ शासकों दोनों के निर्माण में समर्थ हो। प्रश्न था : ऐसे राज्य का क्या स्वरूप हो ?

रिपब्लिक में प्लेटो ने इसी समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है। प्रोफेसर नेटिलशिप ने लिखा है : "यह **रिपब्लिक** उस व्यक्ति के उत्साह द्वारा लिखी गई है जो केवल मानव जीवन पर ही विचार नहीं कर रहा था बल्कि जो उसे सुधारने और उसमें क्रांतिकारी परिवर्तन करने के लिए अत्यंत व्याकुल था। प्रत्येक गंभीर खराबी को ध्यान [illegible] ही इसे लिखा गया है।"

खण्ड—अ

राजनीतिक विचारक

POLITICAL THINKERS]

तः
वि
नह
सा
उ
कि

का

स्व

प्लेटो

[PLATO]

[ई० पू० ४२८—३४७]

जो पुरानों के स्थान पर नए विश्व में आस्थावान हैं, प्लेटो के
है—
—सी० सी० मैक्सी

ट—

य—स्थान : एथेन्स (यूनान) ; जन्म : ई० पू० ४२८; मृत्यु : ई० पू० ३४७।

—रिपब्लिक : ई० पू० ३७८; स्टेट्समैन : ई० पू० ३६५; लॉज : ई० पू० ३६०—३४८।

दर्शन है और दर्शन प्लेटो।" —इमरसन

महान् दार्शनिकों में से एक है जिन्होंने विश्व को उन तत्त्वों से परिचित न है, उस 'सत्य' का उद्घाटन किया है जिसे प्रत्येक व्यवस्था के मूल है, उस 'ज्ञान स्रोत' को प्रवाहित किया है जो चिंतक एवं विचारकों की है। यह 'तत्त्व', यह 'सत्य' और यह 'ज्ञान स्रोत' न तो देश और युग त है और न किसी एक विषय से संबद्ध। प्लेटो के विचारों को 'सर्व-न' कहना अधिक उपयुक्त होगा। लगभग हर देश (विशेषकर र युग में 'प्लेटो' अध्ययन एवं चिंतन का विषय रहा है तथा उसके थवा अधिक रूप में) युग विशेष की लगभग प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विचार-सकता है। 'आदर्शवाद' का तो वह स्वयं प्रणेता था। आज के युग वचारधाराओं—समाजवाद और साम्यवाद का भी उसे मूल प्रेरणा-। मैक्सी ने लिखा है—"समस्त समाजवादी तथा साम्यवादी चिंतन। यदि प्लेटो आज जीवित होता तो वह उत्कृष्टतम साम्यवादी सिद्ध इ उसी उत्साह से रूस की यात्रा की शीघ्रता करता जिस उत्साह सिराक्यूज़ के निरंकुश शासक के आमंत्रण पर वहाँ गया था।"

जहाँ तक एक अन्य महत्त्वपूर्ण विचारधारा—फॉसीवादी (अधिनायकवादी) विचारधारा का प्रश्न है उसे 'प्रथम फॉसिस्टवादी' निरूपित किया गया है। जहाँ तक 'साध्य विषय' और उसकी 'परिधि' का प्रश्न है, प्लेटो ने अपने को किसी एक विषय तक सीमित नहीं रखा है।

सामान्य परिचय

प्लेटो का असली नाम 'अरिस्तोक्लीज' था। स्वस्थ एवं बलिष्ठ शरीर के कारण प्लेटो नाम पड़ा। प्रखर एवं तीक्ष्ण बुद्धि उसे प्रकृति से देन मे मिली थी। उसका जन्म एथेन्स के एक कुलीन, संभ्रान्त एवं समृद्ध परिवार में ईसा पूर्व ४२७ में हुआ था। वह पितृपक्ष की तरफ से (उसके पिता का नाम अरिस्तोन था) एथेन्स नगर-राज्य के राजवंश से तथा मातृपक्ष (उसकी माता का नाम पेरिकटिओन था) की तरफ से प्रसिद्ध सोलोन घराने से संबद्ध था। ऐसे घरानों से, जो एथेन्स की राजनीति में सक्रिय थे, सबंधित होने के कारण प्लेटो की राजनीतिक जीवन मे प्रवेश करने की महती किंतु प्रारंभिक आकांक्षा को अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। उससे अपेक्षा भी यही की गई थी। किंतु दो महत्त्वपूर्ण घटनाओं ने उसके जीवन क्रम को ही बदल दिया—ईसा पूर्व ४०४ के विद्रोह (तीस के विद्रोह से विख्यात है) तथा उसके तुरंत उपरांत की दुखद घटनाओं एवं बर्बरतापूर्ण अत्याचारों के क्रम ने उसकी राजनीतिक मान्यताओं को झकझोर कर राजनीतिक आकांक्षाओं को धूमिल बना दिया था। ऐथेन्स की राजनीति के प्रति उसकी घृणा उस समय अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गई जब तात्कालिक भ्रष्ट-शासन-व्यवस्था के आदेश पर सुकरात जैसे महान् व्यक्ति (जिसे प्लेटो अपने युग का सर्वाधिक बुद्धिमान, न्यायपरायण तथा सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति मानता था) को जहर का प्याला पीकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर देनी पड़ी। प्रोफेसर गैटिल ने तो यहाँ तक लिखा है—इसके बाद उसने एथेन्स की राजनीति में फिर कभी सक्रिय भाग नहीं लिया और प्लेटो सक्रिय राजनीतिज्ञ बनते-बनते रह गया। **जीवन क्रम में इस मोड़ ने** प्लेटो को दर्शन के अध्ययन की ओर उन्मुख किया।

कुछ शासन के प्रकोप से बचने के लिए और कुछ परिस्थितिजन्य नैराश्य को कम करने के लिए प्लेटो ने अनेक देशों का पर्यटन किया। इस दौरान प्लेटो को अनेकानेक शासन पद्धतियों का अध्ययन करने और विभिन्न व्यवस्थाओं को समीप से देखने का भरपूर अवसर मिला। उसके विचारों में प्रौढ़ता भी आने लगी थी। **रिपब्लिक** जैसी अमर कृतियों की यही रचनात्मक पृष्ठभूमि थी। **अकादमी** ई० पू० ३८६ में प्लेटो द्वारा एथेन्स में स्थापित शिक्षण संस्था की स्थापना इस दिशा में अकेला कदम था। फॉस्टर ने इस संस्था के संबंध में लिखा है: प्लेटो की अकादमी केवल बौद्धिक प्रशिक्षण का केंद्र मात्र नहीं थी। यह ग्रीक जीवन को सुधारने के लिए आवश्यक राजनीतिक वैज्ञानिकों तथा प्रशासकों के निर्माण का कारखाना थी। प्लेटो ने लगभग ४२ वर्ष का बाकी अपना आधा जीवन इसी संस्था मे अध्ययन-अध्यापन में व्यतीत किया। ईसा पूर्व ३४७ में अस्सी वर्ष की आयु मे इस महान दार्शनिक की मृत्यु हो गई

प्रमुख रचनाएँ

प्लेटो ने अनेकानेक विषयों पर साधिकार अनेकों ग्रंथों की रचना की, जिनकी संख्या ४० के लगभग है। राजनीतिक दर्शन के क्षेत्र में **रिपब्लिक, स्टेट्स्मैन** तथा **लॉज** उसकी महान् कृतियाँ हैं। ऐपोलजी तथा गोर्जियाज जैसी रचनाएँ भी राजनीति-शास्त्र के छात्र के लिए लाभप्रद हो सकती हैं। इन कृतियों में प्लेटो लगभग २५०० वर्ष बाद आज भी जीवित है और जीवित रहेगा। इसमें **रिपब्लिक** ही प्लेटो की विचारधारा का सही प्रतिनिधित्व करती है। विलडुरॉ ने **रिपब्लिक** को "प्लेटो का पुस्तकीकरण" कहा है। यह सही है कि आज मानव जीवन के प्रत्येक पहलू का अध्ययन अलग-अलग शास्त्र के रूप मे किया जा रहा है किन्तु उस युग में जब प्लेटो अपनी **रिपब्लिक** की रचना मे संलग्न था जीवन इतना अधिक विभाजित नहीं था। जीवन मे समग्रता एवं एकरूपता थी। साथ ही 'राज्य' और 'समाज', 'राजनीति' और 'नैतिकता' जैसे विषयों में अंतर नहीं माना गया था। इसके अतिरिक्त प्लेटो व्यक्ति को एक इकाई के रूप मे मान्यता नहीं दे सका। वह उसे राज्य से अलग कोई महत्त्व नहीं देता। परिणामस्वरूप प्लेटो के लिए व्यक्ति की नैतिकता राज्य की नैतिकता है और राज्य की श्रेष्ठता पर व्यक्ति की श्रेष्ठता निर्भर करती है। उसने लिखा है : "राज्य वृक्षों या चट्टानों से पैदा नहीं होते बल्कि उन व्यक्तियों के चरित्र से निर्मित होते है जो उनमें निवास करते है।" इन सभी मान्यताओं का परिणाम यह हुआ कि **रिपब्लिक** किसी एक विशिष्ट विषय की पुस्तक न रहकर सभी विषयों की एक पुस्तक बन गई है। सेबाइन ने इसी आशय की पुष्टि करते हुए लिखा है : "**रिपब्लिक** किसी निश्चित प्रकार का ग्रंथ नहीं है। यह न तो राजनीति की पुस्तक है और न नीतिशास्त्र या अर्थशास्त्र या मनोविज्ञान की, यद्यपि इसमें इन सभी का समावेश हुआ है या और अधिक विषयों का भी, क्योंकि इसमें कला, शिक्षा तथा दर्शन को भी नहीं छोड़ा गया है।"

रिपब्लिक में प्लेटो की समस्या थी : आदर्श के रूप में शासन की सर्वोत्कृष्ट व्यवस्था के निदान के रूप में उसने दार्शनिक शासक (जिसमें विवेक की प्रधानता होती है) के शासन को सर्वश्रेष्ठ निरूपित किया है। कालांतर मे प्लेटो के विचारों में परिवर्तन आया और इन्हीं परिवर्तित विचारों की अभिव्यक्ति **स्टेट्स्मैन** तथा **लॉज** पुस्तकों में हुई है। **स्टेट्स्मैन** जिसे **पॉलिटिक्स** भी कहा गया है, अपेक्षाकृत एक संक्षिप्त कृति है जिसमें यद्यपि प्लेटो की आस्था **रिपब्लिक** के आदर्श राज्य मे यथावत् बनी हुई है किंतु जिसका झुकाव 'विधिमूलक शासन' के प्रति कुछ बढ़ गया है। उसका निष्कर्ष है कि परिस्थितियाँ जैसी हैं उनमे विधि का शासन ही शासन का एक मात्र व्यावहारिक स्वरूप है। गैटिल ने **स्टेट्स्मैन (पॉलिटिक्स)** को एक ऐसी कृति कहा है जो प्लेटो के विचारों मे संक्रमण का प्रतिनिधित्व करती है। **लॉज** मे जाकर यह संक्रमण समाप्त हो जाता है। दार्शनिक ठोस धरातल पर उतर आता है और वास्तविकताओं के आगे नत-मस्तक हो जाता है। **लॉज** मे प्लेटो वास्तविक राज्यों की विस्तृत चर्चा करता है और कानूनों की आवश्यकता को स्वीकार कर लेता है। गैटिल ने लिखा है : "**लॉज** में प्लेटो ने प्रशासन व्यवस्था का

सविस्तार वर्णन किया है जिसमें लोकतंत्रीय और अभिजाततंत्रीय तत्त्वों का समन्वय और नियंत्रण तथा संतुलन की विशद व्याख्या है।"

रिपब्लिक के 'आदर्श राज्य' की परिणति **लॉज़** के 'उपआदर्श राज्य' में होती है। यह एक महान् संयोग ही है कि जहां सुकरात का 'गुण ही ज्ञान है' प्लेटो का समारंभ है वहां **लॉज़** की मान्यता अरस्तू (प्लेटो के महान् शिष्य) का समारंभ है। ऐसी गुरु-शिष्य परंपरा अन्यत्र दुर्लभ है।

रचना शैली एवं पद्धति :

रचना की जिस वर्णनात्मक शैली से आज हम सामान्यतः परिचित है उस शैली का प्लेटो ने प्रयोग नहीं किया है। उसके ग्रंथ 'संवाद शैली' में लिखे गए है। इस शैली में कुछ पात्र प्रश्न एवं समस्याएँ प्रस्तुत करते है तथा दूसरे पात्र समाधान प्रस्तुत करते है। इसे 'प्रश्नोत्तर', 'कथोपकथन' या 'वादविवाद प्रणाली' भी कहा जा सकता है। इस प्रणाली मे सहज रूप मे ग्राह्य तर्क के आधार पर विषय का प्रतिपादन होता है तथा विषय को आगे बढ़ाया जाता है। प्लेटो की मान्यता थी कि सत्य की खोज (जो एक दार्शनिक का प्रमुख लक्ष्य है) के लिए एकमात्र यही प्रणाली उपयुक्त है। मैंटर ने इस आशय की पुष्टि मे लिखा है : "(व्यक्तिगत) वाद-विवाद के रूप मे लिखे गए संवाद दर्शन—सत्य के निरतर अन्वेषण से परिपूर्ण हैं और बौद्धिक उधेड़-बुन के संचालित अभिनय है"। 'उद्धरण' एव 'सादृश्यता' इस प्रणाली के अभिन्न अंग है। प्लेटो ने इन दोनों ही तरीकों का, विषय के स्पष्टीकरण के संदर्भ में, खुल कर प्रयोग किया है। संरक्षक वर्ग की संतान श्रेष्ठ हो इस आशय के अपने तर्क के समर्थन में उसने पशुओं विशेषकर घोड़ों का उदाहरण लिया है। दार्शनिक शासक के किन्हीं विशिष्ट लक्षणों के स्पष्टीकरण के लिए उसने 'प्रहरी' की सादृश्यता प्रस्तुत की है।

प्रमुख प्रभाव :

प्लेटो का लक्ष्य एक ऐसी शासन प्रणाली की खोज थी जो सभी दृष्टियों से 'आदर्श' हो और प्लेटो के अनुसार, ऐसा तभी संभव था जब कि शासन संचालन का दायित्व जानकार, योग्य एवं सक्षम व्यक्तियों—दार्शनिकों—के हाथों में हो। उसका कथन था : "जब तक शासक दार्शनिक नहीं बन जाते या दार्शनिकों को शासक नहीं बना दिया जाता तब तक शासन भ्रष्ट ही बना रहेगा और सुकरात जैसे मनीषियों को असक्षम, अयोग्य एवं अज्ञानी व्यक्तियों के हाथों अपने प्राण गँवाते रहना होगा।"

इस आदर्श राज्य के निर्माण में जिन तत्त्वों एव मान्यताओं को आधार बनाया गया है वह भी, कम अथवा अधिक रूप में, उसी वातावरण का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष परिणाम थे। प्रजातंत्र के प्रति प्लेटो की घृणा को ही लीजिए : ऐसा प्रजातंत्र जो सुकरात जैसे महान् व्यक्तियों का जीवन ले ले, कभी भी सुकरात के अनन्य उपासक प्लेटो का आदर्श नहीं बन सकता था। प्रत्येक को 'चिकित्सक' बनाने तथा 'प्रत्येक का समान योग्यता के साथ दूसरो पर जैसी फ से प्लेटो का मौलिक

विरोध था। राजनीतिज्ञों की अक्षमता अज्ञानता स्वार्थपरक गुटबन्दी तथा उनके आपसी संघर्षों की उसने कटु आलोचना की है। प्लेटो ने प्रजातांत्रिक व्यक्ति का चित्रण इस प्रकार किया है: "(वह) यदि एक क्षण शराब के नशे में चूर है तो दूसरे ही क्षण परहेजगार, कभी खेलकूद में भीषण संलग्न तो कभी उससे पूर्णतः विमुख और फिर दोनों से ही अलग दर्शन के अध्ययन में रत। आज राजनीतिज्ञ है और खड़े होकर बिना सोचे-समझे व्यर्थ बकवास करता है तो कल शूरवीर योद्धा।"

तात्कालिक राजनीतिक जीवन को बडी गहराई तथा बहुत बारीकी के साथ समीप से अध्ययन करने पर प्लेटो का यही निष्कर्ष था कि एथेन्स की उस पतित, गर्हित एवं अपमानजनक स्थिति के लिए ऐसे ही प्रजातान्त्रिक व्यक्ति उत्तरदायी थे। कुछ आलोचकों ने प्लेटो के प्रजातंत्र विरोधी होने के लिए उसका अभिजात कुल में जन्म बतलाया है। इसके खंडन में सेबाइन ने बड़ा ही सुंदर तर्क दिया है: "प्रजातंत्र में उसकी अनास्था अरस्तू से कहीं कम थी जो न तो अभिजात कुल में पैदा हुआ था और न एथेन्स का निवासी था।" स्पष्ट है उसके प्रजातंत्र विरोधी विचार परिस्थितियों के ही सीधे परिणाम थे।

प्लेटो के विचारों पर सर्वाधिक प्रभाव सुकरात का पड़ा। प्लेटो की अपनाई संवाद पद्धति सुकरात की ही देन थी। इन संवादों में सुकरात ही प्रमुख पात्र है। सैक्सी का यह संक्षिप्त-सा वाक्यांश प्लेटो पर सुकरात के प्रभाव को पूर्णतः स्पष्ट कर देता है कि "प्लेटो में सुकरात पुनः जीवित हुआ है।"

प्रमुख समस्या—प्लेटो के समय में न केवल एथेन्स बल्कि समूची यूनानी सभ्यता पतनोन्मुख थी। यूनानी नागरिक होने के कारण इस पतन से उसका चिंतित होना स्वाभाविक ही था। किंतु प्लेटो इससे भी अधिक दार्शनिक एवं भावुक चिंतक भी था। उसने नगर राज्यों की आलोचनात्मक समीक्षा की: शासन अक्षम एवं अयोग्य व्यक्तियों द्वारा संचालित था। गुटबंदियों एवं दलीय हितों में संघर्ष के कारण नगर-राज्य सरकारें सापेक्ष रूप से अस्थिर थीं। छोटे-से-छोटे नगर-राज्य में भी संपत्ति के आधार पर जो दो राज्य बन गए थे—वह जिनके पास संपत्ति थी और वह जो निर्धन थे (निर्धनों का राज्य)—उनमें युद्ध की स्थिति थी। नागरिकों की शिक्षा के साथ-ही-साथ प्रशासकों का प्रशिक्षण भी आवश्यक था। अतः प्लेटो की समस्या एक ऐसी व्यवस्था का निर्धारण था जो मोटे तौर पर स्थायी हो, जिसमें शासन-संचालन योग्यतम व्यक्तियों में निहित हो, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्राकृतिक गुणों के अनुसार ही कार्य दिया जाय, जिसमें संपत्ति की एक समुचित व्यवस्था निर्मित की जा सके तथा ऐसी शिक्षा-व्यवस्था को बनाया जा सके जो श्रेष्ठ नागरिकों तथा श्रेष्ठ शासकों दोनों के निर्माण में समर्थ हो। प्रश्न था: ऐसे राज्य का क्या स्वरूप हो?

रिपब्लिक में प्लेटो ने इसी समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है। प्रोफेसर नेटिलशिप ने लिखा है: "यह **रिपब्लिक** उस व्यक्ति के उत्साह द्वारा लिखी गई है जो केवल मानव जीवन पर ही विचार नहीं कर रहा था बल्कि जो उसे सुधारने और उसमें क्रांतिकारी परिवर्तन करने के लिए अत्यंत व्याकुल था। प्रत्येक गंभीर खराबी को ध्यान में रखकर ही इसे लिखा गया है।"

प्रमुख समाधान—समाधान के रूप में प्लेटो ने एक आदर्श का चित्रण किया है—एक ऐसा आदर्श जिसका लक्ष्य प्रकृति के उन शाश्वत सिद्धांतों का स्पष्टीकरण था जिनकी तात्कालिक नगर-राज्य अवहेलना कर रहे थे। इस व्यवस्था मे व्यक्ति वही कार्य करता है जिसे वह अपने प्रकृति प्रदत्त गुणों के कारण अच्छी तरह से करने में सक्षम है, एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था है जिसका लक्ष्य इन प्राकृतिक गुणो को पूर्णत: प्राप्त करके अपने विशिष्ट कार्य में दक्षता एवं पटुता प्राप्त करने का व्यक्ति को अवसर प्रदान करना है। व्यक्ति विशेषकर प्रशासक (संरक्षक) इसलिए कि प्रशासन की श्रेष्ठता के वे आधार-स्तम्भ है—पारिवारिक एव संपत्ति विषयक प्रलोभनो में फँसकर अपने निर्दिष्ट मार्ग से विचलित तथा अपने पद से च्युत न हों, इसलिए उन्हे परिवार एवं संपत्ति से विमुख रखा गया है—"न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी"। अधिक स्पष्टीकरण के लिए उपरोक्त 'व्यवस्थाओं' का ब्यौरा अनिवार्य है।

आदर्श राज्य—व्यक्तिवाद का घोर विरोधी होने के कारण प्लेटो व्यक्ति को एक व्यक्ति के रूप में मान्यता न दे सका। उसके लिए व्यक्ति का समाज की एक अभिन्न इकाई के रूप में ही महत्त्व था। चूँकि ग्रीक (यूनानी) दर्शन में राज्य और समाज दो पर्यायवाची शब्द थे इसलिए व्यक्ति और नागरिक मे भी कोई अंतर नही माना गया। प्लेटो की मान्यता थी कि मनुष्य के विचार ही संस्थाओं के रूप मे अभिव्यक्ति पाते है। सभी प्रकार की संस्थाएँ वस्तुत: उसी के विचार है। राज्य की परिभाषा देते हुए वह लिखता है: "राज्य वृक्षो या चट्टानों से उत्पन्न नहीं होते वरन् उन व्यक्तियों के चरित्र द्वारा निर्मित होते है जो उनमे निवास करते हैं।" प्लेटो के लिए व्यक्ति की नैतिकता राज्य की है। एक की श्रेष्ठता दूसरे की श्रेष्ठता की कसौटी है। उसकी मान्यता थी कि श्रेष्ठ नागरिकों द्वारा ही श्रेष्ठ राज्य का निर्माण संभव है। इस प्रकार हम देखते है कि प्लेटो के लिए व्यक्ति और राज्य के न तो उद्देश्यों में अंतर है और न हितो में किसी भी प्रकार का टकराव। वह तो राज्य को व्यक्ति का वृहत्तर स्वरूप मानता है।

इस 'समानता' को प्लेटो और भी आगे बढाता है। एक आदर्शवादी विचारक होने के नाते वह राज्य को (जो उसके लिए एक नैतिक संस्था भी है) व्यक्ति की आत्मा से संबंधित कर देता है। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा है: "हमे क्यों न इस तथ्य को स्वीकार कर लेना चाहिए कि हम मे से प्रत्येक मे वही सिद्धांत और लक्षण है जो कि राज्य में होते है। इस संदर्भ मे प्लेटो पैथोगोरस के सिद्धांत के आधार पर मानव आत्मा के तीन लक्षण बतलाता है: (१) विवेक, (२) उत्साह (साहस), तथा (३) क्षुधा। विवेक का तत्त्व व्यक्ति में बुद्धि का उद्भव करता है तथा उसे ज्ञान प्राप्त कराता है। उत्साह से व्यक्ति मे साहस एवं महत्त्वाकांक्षा उत्पन्न होती है और क्षुधा का तत्त्व व्यक्ति में अनेक प्रकार की 'भूख' उत्पन्न करता है। वह अनेक प्रकार की इच्छाओं एवं वासनाओं को जन्म देता है। इन तीनों तत्त्वों का तथा प्रत्येक से उत्पन्न गुणों का व्यक्ति तथा राज्य दोनों के ही जीवन में महत्त्व है। चूँकि वह तत्त्व प्रकृतिप्रदत्त है (आत्मा का लक्षण है) इसलिए कार्यों का यह निर्धारण भी प्रकृतिजन्य है।

प्लेटो का कथन है कि यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति मे यह तीनो गुण विद्यमान रहते हैं

तथापि किसी एक गुण की ही प्रमुखता या प्रधानता होती है यही प्रधान गुण व्यक्ति के कार्य का निर्धारण करता है और इस संदर्भ में प्लेटो गुण के अनुसार कार्य का भी निरूपण करता है . जिनमें विवेक की प्रधानता है, जो ज्ञानी एवं बुद्धिमान है वह अच्छे प्रशासक होंगे; जिनमें उत्साह है, जो साहसी और महत्त्वाकांक्षी हैं वह अच्छे सैनिक होंगे और जिनमें क्षुधा की प्रमुखता है, जिनमें अनेकानेक प्रकार की भूख ने 'डेरा' डाल लिया है वह अच्छे उत्पादक होंगे। आत्मा के (इन) गुणों के आधार पर राज्य के व्यक्तियों के कार्यों का उपरोक्त निर्धारण करने के दो तार्किक परिणाम समक्ष प्रस्तुत होते हैं :

१. राज्य के तीन कार्य हैं—शासन, रक्षा एवं उत्पादन; तथा २. समाज के तीन वर्ग हैं—प्रशासक, सैनिक एवं उत्पादक।

शासन का दायित्व (विवेकी) प्रशासकों को, देश की रक्षा का दायित्व (साहसी) सैनिकों को तथा उत्पादन का दायित्व (क्षुधा प्रधान) उत्पादकों को सौंपा गया है। प्लेटो (इन) तीनों वर्गों एवं उनके (इन) विशिष्ट कार्यों के औचित्य को तर्क की कसौटी पर इस प्रकार आंकता है—

यह सही है कि राज्य व्यक्तियों द्वारा निर्मित है किन्तु राज्य असंबद्ध व्यक्तियों का समूह मात्र नहीं है। राज्य में व्यक्ति आपस में घनिष्ठ रूप से संबद्ध हैं। संबद्धता का कारण 'आर्थिक आवश्यकताएँ' है। प्लेटो की मान्यता है कि राज्य की उत्पत्ति मनुष्य की आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप होती है। कोई भी व्यक्ति आत्मनिर्भर नहीं होता। आवश्यकताओं की पूर्ति में वह दूसरों पर निर्भर है। चूंकि आवश्यकताएँ अनेक होती हैं अतः उनकी पूर्ति के लिए बहुत से व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। यह पारस्परिक दृष्टि से अन्योन्याश्रित व्यक्ति जब एकसाथ निवास करने लगते हैं तभी राज्य का निर्माण होता है। व्यक्ति अपनी स्वयं की इन प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति में समर्थ नहीं है। अतः इनकी पूर्ति के लिए प्रत्येक दूसरे पर निर्भर है। यही पारस्परिक पर-निर्भरता राज्य के व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बाँधने वाला आरंभिक किन्तु महत्त्वपूर्ण तंतु है। एक व्यक्ति एक वस्तु का उत्पादन करता है और दूसरा दूसरी वस्तु का। इस प्रकार उत्पादन विषयक यह समूची व्यवस्था 'श्रमविभाजन' तथा 'विशिष्टीकरण' पर आधारित है। प्लेटो की मान्यता है कि जिन व्यक्तियों में क्षुधा की प्रधानता है वही उत्पादन के इस कार्य को अपनी पूरी दक्षता एवं निष्ठा के साथ कर सकेंगे। ऐसे व्यक्ति राज्य के प्रथम वर्ग—**उत्पादक वर्ग**—का गठन करते हैं।

प्रोफेसर बार्कर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्लेटो और उसके पूर्वगामी दार्शनिक' में लिखते हैं : "प्राथमिक आवश्यकताओं की मात्र पूर्ति से व्यक्ति संतुष्ट नहीं हो जाते। वह अपनी परिष्कृत इच्छाओं की संतुष्टि भी चाहते हैं।" अन्न, वस्त्र और निवास जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं के पूरा हो जाने पर अच्छे जीवन की लालसा व्यक्ति को स्वाभाविक रूप में सताने लगती है। यह आवश्यकताएँ प्राथमिक आवश्यकताओं से न केवल प्रकृतितः भिन्न होती है बल्कि संख्या में भी अधिक होती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किए गए कार्यों में भी अनेकरूपता एवं विभिन्नता आने लगती है। अधिकाधिक रूप में व्यक्ति इन कार्यों के प्रति आकृष्ट होते है। यह क्रम उत्तरोत्तर रूप में अग्रसर होता

रहता है और अन्ततः संरक्षण की समस्या राज्य के सम्मुख उपस्थित हो जाती है। राष्ट्रीय संरक्षण का यह महान् दायित्व सैनिकों पर है और अच्छे सैनिक वही हो सकते हैं जिनमें साहस के गुण की प्रधानता हो। प्लेटो सैनिक में 'विवेक' गुण की उपस्थिति भी आवश्यक मानता है, क्योंकि 'शत्रु' और 'मित्र' की पहचान, जो एक सैनिक के लिए जरूरी है, विवेक गुण से ही आती है। ऐसे व्यक्ति आदर्श राज्य के दूसरे वर्ग—**सैनिक वर्ग**—का गठन करते हैं।

राज्य का तीसरा वर्ग, जो तुलनात्मक दृष्टि से संख्या में सबसे छोटा वर्ग है, उन व्यक्तियों का है जिनमें 'विवेक' की प्रधानता है। विवेक से व्यक्ति ज्ञानी और बुद्धिमान बनते हैं। यही वह व्यक्ति है जो प्रत्येक व्यवस्था की 'तह' में जाकर सत्य का अन्वेषण करता है। प्लेटो की मान्यता है कि शासन उन्हीं का कार्य है जो 'जानते' है और 'जानते' वही है जिनमें विवेक की प्रधानता है। आदर्श राज्य का यह 'शासक वर्ग' है। प्लेटो इसे **'दार्शनिक शासक'** कहता है।

राज्य सिद्धांत—यह है आदर्श राज्य की संगठनात्मक व्यवस्था, किन्तु यही आदर्श राज्य नहीं है, जिसका चित्रण प्लेटो ने अपनी **रिपब्लिक** में किया है। आवश्यक था कि प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कार्यों को किस प्रकार करे कि वह अपने कार्यों में विशिष्टता एवं दक्षता प्राप्त कर ले; साथ ही, अन्य दूसरे (वर्ग अथवा व्यक्ति) के कार्यों में किसी भी प्रकार से बाधक न बने और इसी संदर्भ में प्लेटो अपने आधारभूत सिद्धांत—न्याय सिद्धांत—की चर्चा करता है। न्याय न केवल व्यक्ति का गुण है बल्कि राज्य का भी गुण है। यह गुण व्यक्ति से यह अपेक्षा करता है कि वह उसी कार्य को, जो प्रकृति ने (आत्मा के प्रधान लक्षण के रूप में) उसे सौंपा है, पूरी लगन, निष्ठा एवं तन्मयता के साथ करे और दूसरों के कार्यों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करे। परिणामस्वरूप व्यक्ति अपने निर्धारित कार्यों में निश्चय ही श्रेष्ठता (विशिष्टीकरण की नीति द्वारा) प्राप्त कर लेगा तथा दूसरों को अपने-अपने कार्यों में श्रेष्ठता प्राप्त करने का (अहस्तक्षेप की नीति द्वारा) अवसर प्रदान करेगा। यह (न्याय) राज्य के प्रत्येक वर्ग से अपेक्षा करता है कि वह अपने निर्धारित कार्यों को पूरी निष्ठा एवं लगन के साथ करेंगे और अन्य किसी भी वर्ग के कार्यों में किसी भी प्रकार से बाधक नहीं बनेंगे। अर्थात् न्याय पर आधारित राज्य का 'शासक वर्ग' शासन संचालन में अपने 'सैनिक वर्ग' विदेशी आक्रमणों को रोकने तथा आंतरिक शांति बनाये रखने में अपने 'शौर्य' का प्रदर्शन करता है और 'उत्पादक वर्ग' उत्पादन व्यवस्था में अपने 'आत्म संयम' का परिचय देता है।

संक्षिप्त में, न्याय पर आधारित इस आदर्श राज्य में व्यक्ति तथा राज्य के सर्वतोमुखी विकास के द्वार हमेशा ही खुले रहेंगे तथा व्यक्तिगत एवं समूहगत आधार पर श्रेष्ठ जीवन की उपलब्धि हो सकेगी।

शिक्षा व्यवस्था—किन्तु प्लेटो को आशंका थी कि वातावरण के प्रभाव में मानव-प्रगति में विकृति आ सकती है और व्यक्ति अपने निर्धारित मार्ग से विचलित हो सकता है। इस 'आशंका' के निराकरण के लिए उसने आदर्श राज्य में शिक्षा को विशेष
की है प्लेटो के अनुसार शिक्षा का कार्य ज्ञान देना नहीं है इसका एकमात्र

लक्ष्य है उस .... का निर्माण करना जो प्रकृति-प्रदत्त गुणों का विकास कर सके, "जो आत्मा की अभिवृद्धि में अत्यंत सहायक सिद्ध हो सके।" इस प्रकार शिक्षा 'नकारात्मक' तथा 'सकारात्मक' दोनों ही प्रकार के कार्य करती है। प्रो० बार्कर ने लिखा है, "एक सामान्य शिक्षा प्रणाली ही एक विशिष्ट कार्य के लिए वह प्रेरणा देगी जो न्याय की अपेक्षा है।" **रिपब्लिक** में जिस शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था है, उसकी श्रेष्ठता के संदर्भ में रूसो जैसे विद्वान् ने लिखा है : वह "शिक्षा पर सर्वकाल में लिखा गया श्रेष्ठतम ग्रंथ है।"

साम्यवादी सिद्धांत—अपने आदर्श राज्य में प्लेटो ने सर्वाधिक महत्त्व प्रशासक वर्ग को दिया है जो उसकी इस मान्यता का परिणाम है कि यदि शासन श्रेष्ठ होगा तो राज्य श्रेष्ठ होगा और श्रेष्ठ राज्य से ही श्रेष्ठ जीवन संभव है। स्पष्ट है उसके लिए प्रशासकों की श्रेष्ठता का आधारभूत महत्त्व था। किन्तु "दूध का जला छाछ भी फूँक-फूँक कर पीता है," शासकों के भ्रष्ट होने की किसी भी आशंका को वह बिल्कुल ही निर्मूल कर देना चाहता था और इस धारणा की परिणति **रिपब्लिक** में साम्यवादी सिद्धांत के रूप में प्रगट हुई है। 'व्यक्तिगत संपत्ति' और 'व्यक्तिगत परिवार' में प्लेटो को वह दो चीजें दिखीं जो शासक को भ्रष्ट एवं पदच्युत कर सकती थीं। इनका निराकरण अनिवार्य था। अतः आदर्श राज्य में व्यवस्था की गई है कि शासकों के न तो अपने परिवार होंगे और न उनकी अपनी संपत्ति। इन दोनों ही संस्थाओं का उनके लिए पूर्ण निषेध कर दिया गया है। स्पष्ट रूप से यह साम्यवादी व्यवस्था प्रथम दो वर्गों—सैनिक एवं शासक वर्ग (जिन्हें वह सम्मिलित रूप से संरक्षक कहता है)—के लिए है। उत्पादक वर्ग पर यह लागू नहीं होती। एक लेखक ने लिखा है : "साम्यवाद विषयक उसके विचार व्यक्तिगत संपत्ति तथा कुटुम्ब का विनाश कर एक ऐसी नूतन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना से संबंध रखते हैं जो उसके आदर्श राज्य के स्वप्न को साकार करने में सहायक हो।"

यह है उस आदर्श राज्य की संक्षिप्त रूपरेखा जिसका चित्रण प्लेटो ने अपनी अमर कृति **रिपब्लिक** में किया है। **रिपब्लिक** में प्लेटो का लक्ष्य दार्शनिक शासक का निर्माण करना था। उसकी धारणा थी : "जब तक दार्शनिक शासक न होंगे एवं विश्व के शासक दर्शन की भावना एवं शक्ति से अनुप्राणित नहीं होंगे तब तक राज्य अपने दोषों का निराकरण नहीं कर पाएंगे।" आदर्श राज्य के निर्माण की यह (दार्शनिक शासक) एक स्वाभाविक परिणति है।

दार्शनिक शासक—**रिपब्लिक** की ५वीं तथा ६ठी पुस्तक में 'दर्शन के शासन' की चर्चा है। अब तक की जानकारी के आधार पर कहा जा सकता है कि **रिपब्लिक** मूलतः ज्ञान से संबंधित है। प्लेटो का निष्कर्ष है कि ज्ञान ही सरकार पर नियंत्रण रखे तथा उसे निर्देश दे और चूँकि दर्शन ही एकमात्र सत्य ज्ञान है अतः आवश्यक रूप से दार्शनिक ही शासक होना चाहिए और इसी संदर्भ में वह लिखता है, "जब तक दार्शनिक शासक न होंगे एवं विश्व के शासक दर्शन की भावना एवं शक्ति से अनुप्राणित नहीं होंगे तब तक राज्य अपने दोषों का निराकरण नहीं कर पाएंगे।" परिवार और संपत्ति विषयक प्रलोभन उसे अपने लक्ष्य से विचलित न कर दे इसलिए साम्यवादी व्यवस्था के

अनुसार उन्हें इन दोनों का निषेध कर दिया गया है। साथ ही, प्लेटो आदर्श राज्य में कानून को कोई मान्यता नहीं देता। प्लेटो ऐसे शासक को न केवल शासन की पूर्ण सत्ता सौंप देता है बल्कि उसके निर्बाध संचालन का अधिकार भी प्रदान कर देता है। ऐसे शासन में कानून के लिए कोई स्थान नहीं रखा गया है। कानून का शासन विवेक के शासन की तुलना में न केवल निकृष्ट है बल्कि यह निश्चित रूप से हानिकारक है और इसीलिए दार्शनिक शासक कानून द्वारा प्रतिबंधित नहीं है। शिक्षा व्यवस्था में छोटा-सा भी परिवर्तन समूची आदर्शात्मक व्यवस्था के लिए अनिष्टकारी सिद्ध हो सकता है। उसने लिखा है : "जब कभी संगीत की पद्धति में परिवर्तन होता है तो राज्य के मूलभूत नियम सदैव उनके साथ बदलते हैं।" **रिपब्लिक** में दार्शनिक को इस संबंध में दिए गए कुछ निर्देशों का भी उल्लेख है।

न्याय सिद्धांत—न्याय सिद्धांत प्लेटो के दर्शन का केंद्र-बिंदु है। यह वह आधार-शिला है जिस पर उसने अपने आदर्श राज्य का निर्माण किया है। **रिपब्लिक** का वैकल्पिक नाम भी 'न्याय के संबंध में' है। सिद्धांत की व्याख्या के प्रारंभ में ही यह जान लेना अनिवार्य है कि प्लेटो के 'न्याय' शब्द से जिस 'अदालती न्याय' का चित्र हमारे मस्तिष्क में खिंचता है प्लेटो का उससे दूर का भी संबंध नहीं था। वस्तुतः उसका न्याय 'नैतिकता' के अधिक समीप है। बार्कर ने इस आशय का समर्थन करते हुए लिखा है : "प्लेटो का न्याय कानूनी विषय नहीं है ; न यह कानूनी अधिकारों एवं कर्त्तव्यों की किसी बाह्य योजना से संबंधित है। यह कानूनीपन के क्षेत्र में न आकर सामाजिक नैतिकता के क्षेत्र में आता है।" यही कारण है कि प्लेटो न्याय को मानव आत्मा का एक प्रमुख लक्षण मानता है। 'न्याय' सहित व्यक्ति—आत्मा के चार लक्षण हैं : विवेक, उत्साह, क्षुधा तथा न्याय। प्रथम तीन लक्षणों का विवरण संबंधित संदर्भों में दिया जा चुका है। यह सही है कि न्याय मानव आत्मा का उसी प्रकार एक अभिन्न लक्षण है जिस प्रकार कि प्रथम तीन लक्षण। किन्तु यह लक्षण अन्य लक्षणों से स्वरूप एवं कार्य दोनों में ही भिन्न है। प्रथम, यद्यपि विवेक, उत्साह तथा क्षुधा प्रत्येक व्यक्ति में पाए जाते हैं, किन्तु प्रधानता किसी एक लक्षण की ही होती है जबकि न्याय सभी व्यक्तियों में समानरूप विद्यमान होता है। दूसरे, (प्रथम तीन लक्षणों में से) जिस भी लक्षण की व्यक्ति में प्रधानता होती है वही लक्षण जीवन में उसके कार्य का निर्धारण करता है, जबकि न्याय प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षा करता है कि वह अपने इस प्रकृति-प्रदत्त कार्य को पूरी लगन, निष्ठा एवं तन्मयता के साथ करे तथा दूसरे के कार्य में किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न न करे।

प्लेटो अपने न्याय सिद्धांत के प्रतिपादन से पूर्व अपने समय में प्रचलित (न्याय संबंधी) अन्य विचारधाराओं का खंडन करता है और तत्पश्चात् ही अपने स्वयं के सिद्धांत का प्रतिपादन करता है। न्याय संबंधी यह प्रमुख विचारधाराएँ थीं : (१) सैफालस का न्याय सिद्धांत, (२) थ्रैसीमैकस का न्याय सिद्धांत, तथा (३) ग्लोकन का न्याय सिद्धांत।

सैफालस का सिद्धांत—इसे परंपरावादी सिद्धांत भी कहते हैं। सैफालस के अनुसार 'सत्य बोलना और अपने ऋण का भुगतान कर देना' ही न्याय है

जैसे व्यापारी से न्याय की यही परिभाषा अपेक्षित की जा सकती है। सेफालस के बाद पालीमार्कस ने न्याय की परिभाषा इस प्रकार की है : "प्रत्येक व्यक्ति को वह देना ही, जो उसके लिए उचित है, न्याय है।" वह इस सिद्धांत का दूसरा महत्त्वपूर्ण समर्थक माना जाता है। 'उचित' शब्द का प्रयोग करके उसने इस परंपरावादी न्याय सिद्धांत में दो विरोधी तत्त्वों का समावेश कर दिया है जो एकसाथ 'मित्र' के साथ 'मित्रता' और 'शत्रु' के साथ 'शत्रुता' करने में समर्थ हैं।

थ्रैसीमैकस का सिद्धांत—इसे उग्रवादी सिद्धांत या सौफिस्ट्स का न्याय सिद्धांत (क्योंकि थ्रैसीमैकस एक सौफिस्ट था) भी कहा जाता है। थ्रैसीमैकस का सिद्धांत ठोस यथार्थ पर आधारित है। वह कहता है कि सरकार का (चाहे उसका स्वरूप कैसा भी हो) एक मात्र उद्देश्य स्वयं के निहित स्वार्थों की सिद्धि है। ऐसी सरकार द्वारा निर्मित ऐसे कानूनों का पालन ही जनता के लिए न्याय है, जो इसी लक्ष्य की प्राप्ति के साधन है, तथा उसकी अवहेलना अन्याय ; चूंकि सरकार (जनता से) सबल है इसलिए थ्रैसीमैकस के अनुसार "(ऐसे) सबल का हित न्याय है।"

ग्लोकन का सिद्धांत—ग्लोकन के अनुसार न्याय किसी अटल प्राकृतिक नियम पर आधारित नहीं है। यह परिस्थितियों की उपज है तथा मनुष्यकृत है। ग्लोकन एक ऐसी प्राकृतिक अवस्था का चित्रण करता है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति दूसरों पर निर्बाध रूप से अन्याय करने की स्थिति मे है। परिणामस्वरूप सभी को अन्याय का शिकार होने का बराबर ही भय बना रहता है। इस दुःखमय स्थिति के एक मात्र निराकरण के रूप मे सभी व्यक्ति आपस में एक समझौता करते हैं कि व्यक्ति न तो अन्याय करेगा और न उसे अन्याय करने दिया जाएगा। यही न्याय है। इस प्रकार ग्लोकन के लिए, 'न्याय भय का शिशु है।'

प्लेटो ने न्याय के संबंध मे प्रचलित इन तीनों विचारधाराओं से अपनी असहमति व्यक्त करने में तर्क प्रस्तुत किए हैं। उनका उद्देश्य इन विचारधाराओं का जहाँ खंडन करना है वहाँ अपने न्याय सिद्धांत की सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत करना भी है। यथा न्याय मे ऐसा अन्तर्विरोध नही होता जिसमे कि दो विरोधी कार्यों को वह एकसाथ संपादित कर सके अर्थात् मित्र को मित्रता और शत्रु को शत्रुता दे सके और न उसका कार्य दूसरो को हानि पहुंचाना है। प्लेटो को थ्रैसीमैकस का यह कथन भी स्वीकार नहीं कि शासक हमेशा ही अपने निहित लक्ष्य अथवा स्वार्थ की सिद्धि में लीन रहता है। उसकी मान्यता है कि जिस प्रकार एक डॉक्टर का लक्ष्य अपने मरीज के रोग का निदान करना है, न कि धन कमाना ; एक गड़रिए का लक्ष्य अपनी भेड़ो की रक्षा करना है, न कि उनका मांस खाना ; उसी प्रकार एक श्रेष्ठ शासक का लक्ष्य अपनी प्रजा का कल्याण है न कि उन्हे अपनी स्वार्थ-सिद्धि का साधन बनाना। वह इस निष्कर्ष से भी सहमत नही कि 'अन्याय' 'न्याय' से अच्छा है (यदि शक्तिशाली के हित में किया गया कार्य न्यायपूर्ण और अपने हित में किया गया कार्य अन्यायपूर्ण है तो) क्योंकि यह निष्कर्ष न तो तर्कसंगत है और न उचित। न्याय निश्चय ही अन्याय से श्रेष्ठ है। ग्लोकन की इस मान्यता को भी वह

करता है कि न्याय रूढ़ि-जन्य है और उससे भी अधिक कि न्याय कमजोरो

की आवश्यकता' है या कि 'भय का शिशु' है। प्लेटो के अनुसार न्याय आत्मा का एक स्वाभाविक एवम् चिरंतन लक्षण है। यह प्रकृति-प्रदत्त है, मनुष्य-निर्मित नहीं। एक ऐसा शाश्वत धर्म है जिसका न केवल हर कमजोर तथा शक्तिशाली को पालन करना आवश्यक है, बल्कि जिसके पालन से व्यक्ति शक्तिशाली बनता है। न्याय संबंधी उपरोक्त तीनों ही सिद्धान्त 'न्याय' को व्यक्तियों के आपसी संबंधों तक सीमित कर देते हैं जो प्लेटो को स्वीकार नहीं। प्लेटो द्वारा उस व्यक्तिवाद के विरोध को सहज ही समझा जा सकता है जो नगर-राज्यों की तात्कालिक पतित एवं भ्रष्ट व्यवस्था के मूल में था। इसीलिए प्लेटो की मान्यता है कि न्याय कहीं भी व्यक्ति के जीवन तक सीमित नहीं रखा जा सकता। यह व्यक्ति की नहीं, समष्टि की वस्तु है; वह समष्टि जो व्यक्तियों द्वारा निर्मित होने पर ही उनसे भिन्न है। प्लेटो के लिए समष्टि के संदर्भ में ही व्यक्ति का महत्त्व है।

प्लेटो के अनुसार राज्य एक नैतिक संस्था है जिसके सभी सदस्य एक इकाई के रूप में आबद्ध है। इस आबद्धता का एक मात्र सूत्र न्याय ही मनुष्य को प्रकृति की श्रेष्ठतम देन है। यह आत्मा का प्रथम सद्गुण है; विवेक, उत्साह एवं क्षुधा अन्य सद्गुण हैं। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, प्रत्येक मनुष्य की आत्मा में यह चारों सद्गुण विद्यमान होते हैं किन्तु प्लेटो की मान्यता के अनुसार दो की स्थिति गौण होती है और दो की प्रमुख। प्रमुख लक्षणों में एक लक्षण न्याय है जो सभी में समान रूप से पाया जाता है तथा सभी से जिसकी एक ही अपेक्षा है—दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप किए बिना अपना निर्धारित कार्य करो। प्रत्येक व्यक्ति के कार्य का निर्धारण कौन करता है?

प्लेटो की मान्यता है कि विवेक, उत्साह तथा क्षुधा व्यक्तियों में विद्यमान हैं किंतु प्रधानता किसी एक की ही होती है। आत्मा का यही सद्गुण व्यक्ति के इस महत्त्वपूर्ण कार्य का निर्धारण करता है। इस प्रकार न्याय का कार्य एवं रूप अन्य सद्गुणों से भिन्न है। गैटिल ने लिखा है. "सभी में व्याप्त होने के कारण यह अन्य सब सद्गुणों का आदि कारण एवं स्थिति है। यह वह विशिष्ट इच्छा है जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति स्वधर्म (अपने विशिष्ट कर्त्तव्य) में संलग्न रहता है और दूसरों के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करता है।"

उपरोक्त परिभाषा से न्याय के तीन लक्षण स्पष्ट होते हैं—

(१) **अपने निर्धारित कार्य को करना**—प्रत्येक व्यक्ति के इस कार्य का निर्धारण उसकी आत्मा के उस सद्गुण द्वारा होता है जो अन्य दो सद्गुणों से प्रमुख होता है। उदाहरण के लिए यदि उसमें क्षुधा के गुण की प्रधानता है तो वह उत्पादक होगा, यदि उत्साह की प्रधानता है तो सैनिक होगा और यदि विवेक की प्रधानता है तो शासक होगा।

(२) **दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप न करना**—कार्यों के निर्धारण का लक्ष्य तब तक पूरा नहीं होगा जब तक कि 'अहस्तक्षेप की नीति' को न अपनाया जाएगा। दूसरे शब्दों में, उत्पादक उत्पादन का, सैनिक सुरक्षा का तथा शासक प्रशासन का ही कार्य करेगा।

(३) **अपने कार्य में विशिष्टता प्राप्त करना**—प्लेटो के अनुसार श्रेष्ठता की प्राप्ति व्यक्ति तथा राज्य दोनों का लक्षण है और दोनों की एक-दूसरे से घनिष्ठ

रूप मे सवद्ध है क्योंकि उसकी मा यता हे कि श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति श्रेष्ठ राज्य मे ही सम्भव है तथा राज्य की श्रेष्ठता नागरिक जीवन की श्रेष्ठता पर आधारित है। यह श्रेष्ठता तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति तथा समाज का प्रत्येक वर्ग अपनी पूरी योग्यता, निष्ठा एवं लगन के साथ उसी एक कार्य को करता है जिसे करने के लिए वह प्राकृतिक दृष्टि से पूर्णत: सक्षम है तथा दूसरे व्यक्ति अथवा वर्ग के कार्यों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता।

न्याय के दो पक्ष—उपरोक्त विवरण से यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है कि न्याय के दो पक्ष हैं—(१) न्याय का व्यक्तिगत पक्ष और (२) न्याय का सामाजिक पक्ष। प्रथम को व्यक्तिगत न्याय और दूसरे को सामाजिक न्याय कहा गया है।

जब राज्य के विभिन्न वर्ग एवं समूह निर्धारित मर्यादाओं के अंतर्गत अपने निर्धारित कार्यों का संपादन करते हैं तथा दूसरों के ऐसे ही निर्धारित कार्यों में किसी भी प्रकार का अतिक्रमण नहीं करते तब वे वर्ग अपने साथ न्याय करते है। न्याय के सिद्धांत की माँग है कि शासक विवेकशील हो, सैनिक साहसी हो तथा उत्पादक आत्म-सयमी। यह न्याय का सामाजिक पक्ष है।

प्रोफेसर जोवेट ने न्याय के इन दोनों पक्षों को अपने शब्दों में इस प्रकार स्पष्ट किया है: "न्याय व्यक्तिगत जीवन के उस प्रकार का नाम है जहाँ आत्मा का हर अग अपना कार्य करता है, राज्य का वह जीवन है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति तथा प्रत्येक वर्ग अपने विशिष्ट कार्यों को संपन्न करता है।"

संक्षेप मे न्याय सिद्धांत का प्लेटो के दर्शन में केंद्रीय महत्त्व है। यह वह आधारशिला है जिस पर उसने अपनी कल्पना के आदर्श राज्य को निर्मित किया है। न्याय व्यक्ति तथा राज्य के अन्य सद्गुणों की एक आवश्यक शर्त है, जो श्रेष्ठ एवं सुखमय जीवन की प्राप्ति की प्रेरणा, साधन एवं उसकी तार्किक परिणति भी है। ईवन्सटीन के शब्दों में कहा जा सकता है: "न्याय के विवेचन में प्लेटो के राजनीतिक दर्शन के समस्त तत्त्व निहित हैं। उसके न्याय सिद्धांत के अंतर्गत व्यक्ति के प्रकृति के साथ, राज्य के साथ तथा अपने अन्य साथियों के साथ जिन संबधो का निरूपण किया गया है वे एक क्रमबद्ध ढग से बने भव्य भवन का निर्माण करते है।

न्याय सिद्धांत की आलोचना—प्लेटो के न्याय सिद्धात की अनेकानेक आधारो पर आलोचना की गई है। इनमे प्रमुख हैं: (१) 'न्याय' शब्द अस्पष्ट एवं भ्रामक है। अधिक अच्छा होता प्लेटो 'न्याय' के स्थान पर 'नैतिकता' शब्द का प्रयोग करता। (२) प्लेटो के इस कथन से आलोचको को आपत्ति नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति में किसी-न-किसी विशिष्ट कार्य को अच्छी तरह से करने की क्षमता होती है किन्तु इस बात का निर्धारण करना कि अमुक व्यक्ति मे अमुक लक्षण की प्रधानता है कठिन कार्य है और इसी निर्धारण पर प्लेटो की समूची व्यवस्था (आदर्श राज्य की व्यवस्था) आधारित है। (३) यदि इस आशय को स्वीकार भी कर लिया जाए कि प्रत्येक व्यक्ति में किसी एक लक्षण की प्रधानता होती है तो क्या यह उचित, तर्कसंगत एवं व्यावहारिक होगा कि उसे एक ही कार्य करने को कहा जाए? (४) यह सही है कि यदि व्यक्ति पूरी

लगन एवं निष्ठा के साथ एक ही कार्य करता रहे और उस कार्य के संपादन में उसकी रुचि बनी रही तो निश्चय ही उस कार्य मे वह दक्षता एव श्रेष्ठता प्राप्त कर लेगा। किंतु क्या यह विकास व्यक्ति का एक-पक्षीय विकास न होगा ? क्या विशिष्टीकरण का सिद्धांत व्यक्ति की आत्मा मे विद्यमान अन्य तत्त्वों के वांछित विकास को अवरुद्ध न कर देगा ? ऐसी व्यवस्था मे व्यक्ति का सर्वांगीण विकास संभव नही है जिसे कि प्लेटो प्राप्त करना चाहता है। (५) प्लेटो यह जानता था कि सोना ताँबे या लोहे में तथा ताँबा लोहे और सोने मे बदल सकता है (विवेक, उत्साह तथा क्षुधा को उसने क्रमशः स्वर्ण, ताँबा तथा लोहा कहा है)—इस आशय का उल्लेख अपने-आपमें कम महत्त्वपूर्ण नही है। किंतु आत्मा के गुणों के इस संभावित परिवर्तन को किस प्रकार व्यवस्थित किया जाएगा प्लेटो ने इस आशय की कोई व्यवस्था नही की है। (न्याय) सिद्धांत का यह एक महत्त्वपूर्ण दोष है। (६) प्लेटो का न्यायसिद्धात एक कार्य-गत सिद्धांत है, जिसकी प्रमुख मान्यता है कि व्यक्ति किसी अन्य के कार्यक्षेत्र में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप किये बिना अपना निर्धारित कार्य पूरी निष्ठा के साथ करता रहे। श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति का यही 'राजमार्ग' है। इस व्यवस्था में व्यक्ति के अधिकारों का कोई उल्लेख नहीं हे। क्या इसे 'न्याय' के नाम पर व्यक्ति के अधिकारों की धारणा का बलिदान न कहा जाएगा ? (७) प्लेटो की न्याय व्यवस्था मे सभी व्यक्तियों तथा वर्गो के कार्यों का निर्धारण कर दिया गया है तथा उनसे अपेक्षा की गई है कि वह अपनी निर्धारित मर्यादाओं मे रहकर ही अपने निर्धारित कार्यो का सम्पादन करेंगे। इस निर्धारण में, आलोचकों का कथन है, न तो प्रशासक वर्ग (जो अल्पसंख्यक वर्ग है) प्रसन्न है और न (बहुसंख्यक) उत्पादक वर्ग। प्रशासक वर्ग को संपत्ति तथा परिवार का (जिसे प्रसन्नता का केंद्र कहा जा सकता है) पूर्ण निषेध कर दिया है तथा उत्पादक वर्ग पूर्णतः [illegible]-वादी विचारधारा का विरोध प्लेटो को उस सीमा तक ले जाता है जहाँ व्यक्ति का पूर्ण रूप मे समाजीकरण हो जाता है। वह व्यक्ति को व्यक्ति के रूप मे मान्यता नही दे सका है। व्यक्ति का व्यक्तिगत पक्ष सामाजिक पक्ष से कम महत्त्वपूर्ण नही होता। (९) यह भी कहा गया है कि दार्शनिक शासकों के हाथों में शासन की असीमित सत्ता सौंप देना तानाशाही को आमंत्रण देने जैसा ही है। उन्हें कुछ निर्देश अवश्य ही दिए गए हैं किन्तु उनके ऊपर कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई है। प्लेटो की न्याय व्यवस्था में कानून को कोई जगह नहीं है। जीवन के अंतिम दिनों में अवश्य ही वह कानून के महत्त्व को स्वीकार करता है और लॉज में कानून के शासन को उपयुक्त शासन स्वीकार कर लेता है।

शिक्षा सिद्धांत

शिक्षा सिद्धांत आदर्श राज्य व्यवस्था का दूसरा अति महत्त्वपूर्ण आधार है। प्लेटो के लिए शिक्षा व्यवस्था का कितना महत्त्व था यह इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि **रिपब्लिक** की लगभग चार पुस्तकों (दूसरी, तीसरी, छठी तथा सातवी) में आदर्श राज्य की आदर्श शिक्षा प्रणाली की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है यह रूपरेखा इतनी

विशद एव अपने-आपमे इतनी पूर्ण है कि अनेक विद्वानों ने **रिपब्लिक** को शिक्षा शास्त्र का ही एक ग्रंथ मान लिया है।

प्लेटो की शिक्षा संबंधी कुछ मान्यताएँ :

(१) नागरिकों को श्रेष्ठ बनाना प्लेटो की प्रथम समस्या थी। उसका कथन था कि राज्य की श्रेष्ठता उसका निर्माण करने वाले नागरिकों की श्रेष्ठता पर निर्भर होती है। शिक्षा नागरिकों को श्रेष्ठ बनाने का एकमात्र साधन है। जिस शिक्षा प्रणाली को **रिपब्लिक** मे स्थान दिया गया है वह व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास पर समुचित बल देती है।

(२) न्याय सिद्धांत की मान्यता है कि यह श्रेष्ठता तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति अपनी पूरी योग्यता, निष्ठा एवं लगन के साथ उसी एक कार्य को करता है जिसे प्रकृति ने (आत्मा के प्रधान लक्षण के आधार पर) उसे सौंपा है (या जिसे करने के लिए वह प्राकृतिक दृष्टि से पूर्णतः सक्षम है) तथा दूसरे व्यक्ति अथवा वर्ग के कार्यों मे वह किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता।

(३) प्लेटो की समूची व्यवस्था का अन्तिम लक्ष्य 'दार्शनिक शासक' का निर्माण करना है क्योंकि उसकी मान्यता है कि "जब तक दार्शनिक शासक न होंगे एवं विश्व के शासक दर्शन की भावना एवं शक्ति से अनुप्राणित नही होंगे तब तक राज्य अपने दोषों का निराकरण नही कर पाएँगे।

(४) प्लेटो मानव आत्मा को अजर-अमर तथा ज्ञान का कोष मानता था। अतः उसके (आत्मा के) नष्ट होने तथा उसे ज्ञान प्रदान करने का प्रश्न ही पैदा नही होता। अपनी ग्रहणशीलता के गुण के कारण आत्मा अवश्य ही अपने वातावरण से प्रभावित होती रहती है। शिक्षा का कार्य एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना है जिससे आत्मा के गुणों मे अभिवृद्धि हो या दूसरे शब्दों में शिक्षा आत्मा के श्रेष्ठ गुणों को प्रकाश मे लाकर सही दिशा में अग्रसर करे। प्रो० नेटिलशिप ने लिखा है : "प्लेटो के अनुसार शिक्षा का ध्येय आत्म-चक्षुओं को प्रकाशोन्मुख करना है।"

(५) शिक्षा स्वयं एक अच्छाई है। इसका अंतिम लक्ष्य उस सत्य की खोज करना है जो काल तथा स्थान की पहुँच के बाहर है। उस चिरंतन, शाश्वत तथा अटल सत्य का परिशोधन ही शिक्षा की परिपूर्णता एवं सार्थकता का द्योतक है।

प्लेटो की शिक्षा प्रणाली की विशिष्टताएँ—प्लेटो के समय मे दो राज्यों—एथेन्स तथा स्पार्टा की प्रमुखता थी। इन दोनों नगर-राज्यों की शिक्षा व्यवस्थाएँ यद्यपि एक-दूसरे से काफी भिन्न थीं तथापि प्रत्येक की अपनी कुछ विशिष्टताएँ थी। प्लेटो ने इन दोनों का गहराई से अध्ययन किया था तथा प्रत्येक से उसने उन लक्षणों को ग्रहण किया जो उसे अपने आदर्श राज्य के संदर्भ में उपयुक्त प्रतीत हुए। इस संबंध मे बार्कर ने लिखा है : "एथेन्स से प्लेटो की शिक्षा योजना का व्यक्तिगत पक्ष आता है—(यह) कि व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास हो। स्पार्टा से उसका सामाजिक पक्ष—(यह) कि नागरिक को राज्य मे उसके उचित स्थान पर प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से शिक्षा राज्य के नियंत्रण मे हो

लगन एवं निष्ठा के साथ एक ही कार्य करता रहे और उस कार्य के संपादन में उसकी रुचि बनी रही तो निश्चय ही उस कार्य मे वह दक्षता एवं श्रेष्ठता प्राप्त कर लेगा। किंतु क्या यह विकास व्यक्ति का एक-पक्षीय विकास न होगा ? क्या विशिष्टीकरण का सिद्धांत व्यक्ति की आत्मा में विद्यमान अन्य तत्त्वों के वांछित विकास को अवरुद्ध न कर देगा ? ऐसी व्यवस्था में व्यक्ति का सर्वांगीण विकास संभव नही है जिसे कि प्लेटो प्राप्त करना चाहता है। (५) प्लेटो यह जानता था कि सोना ताँबे या लोहे मे तथा ताँबा लोहे और सोने मे बदल सकता है (विवेक, उत्साह तथा क्षुधा को उसने क्रमशः स्वर्ण, ताँबा तथा लोहा कहा है)—इस आशय का उल्लेख अपने-आपमें कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। किंतु आत्मा के गुणों के इस संभावित परिवर्तन को किस प्रकार व्यवस्थित किया जाएगा प्लेटो ने इस आशय की कोई व्यवस्था नहीं की है। (न्याय) सिद्धांत का यह एक महत्त्व-पूर्ण दोष है। (६) प्लेटो का न्यायसिद्धांत एक कार्य-गत सिद्धांत है, जिसकी प्रमुख मान्यता है कि व्यक्ति किसी अन्य के कार्यक्षेत्र में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप किये बिना अपना निर्धारित कार्य पूरी निष्ठा के साथ करता रहे। श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति का यही 'राजमार्ग' है। इस व्यवस्था में व्यक्ति के अधिकारों का कोई उल्लेख नहीं है। क्या इसे 'न्याय' के नाम पर व्यक्ति के अधिकारों की धारणा का बलिदान न कहा जाएगा ? (७) प्लेटो की न्याय व्यवस्था मे सभी व्यक्तियों तथा वर्गों के कार्यों का निर्धारण कर दिया गया है तथा उनसे अपेक्षा की गई है कि वह अपनी निर्धारित मर्यादाओं मे रहकर ही अपने निर्धारित कार्यों का सम्पादन करेंगे। इस निर्धारण में, आलोचकों का कथन है, न तो प्रशासक वर्ग (जो अल्पसंख्यक वर्ग है) प्रसन्न है और न (बहुसंख्यक) उत्पादक वर्ग। प्रशासक वर्ग को संपत्ति तथा परिवार का (जिसे प्रसन्नता का केंद्र कहा जा सकता है) पूर्ण निषेध कर दिया है तथा उत्पादक वर्ग पूर्णतः उपेक्षित है। (८) व्यक्ति-वादी विचारधारा का विरोध प्लेटो को उस सीमा तक ले जाता है जहाँ व्यक्ति का पूर्ण रूप से समाजीकरण हो जाता है। वह व्यक्ति को व्यक्ति के रूप मे मान्यता नहीं दे सका है। व्यक्ति का व्यक्तिगत पक्ष सामाजिक पक्ष से कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। (९) यह भी कहा गया है कि दार्शनिक शासकों के हाथों में शासन की असीमित सत्ता सौंप देना तानाशाही को आमंत्रण देने जैसा ही है। उन्हें कुछ निर्देश अवश्य ही दिए गए है किन्तु उनके ऊपर कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई है। प्लेटो की न्याय व्यवस्था में कानून को कोई जगह नहीं है। जीवन के अंतिम दिनो में अवश्य ही वह कानून के महत्त्व को स्वीकार करता है और लॉज में कानून के शासन को उपयुक्त शासन स्वीकार कर लेता है।

शिक्षा सिद्धांत

शिक्षा सिद्धांत आदर्श राज्य व्यवस्था का दूसरा अति महत्त्वपूर्ण आधार है। प्लेटो के लिए शिक्षा व्यवस्था का कितना महत्त्व था यह इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि रिपब्लिक की लगभग चार पुस्तकों (दूसरी, तीसरी, छठी तथा सातवीं) मे आदर्श राज्य की आदर्श शिक्षा प्रणाली की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है यह रूपरेखा इतनी

निशद एव अपने आपमे इतनी पूर्ण है कि अनेक विद्वानो ने **रिपब्लिक** को 'शिक्षा शास्त्र' का ही एक ग्रंथ मान लिया है।

प्लेटो की शिक्षा संबंधी कुछ मान्यताएँ :

(१) नागरिकों को श्रेष्ठ बनाना प्लेटो की प्रथम समस्या थी। उसका कथन था कि राज्य की श्रेष्ठता उसका निर्माण करने वाले नागरिकों की श्रेष्ठता पर निर्भर होती है। शिक्षा नागरिकों को श्रेष्ठ बनाने का एकमात्र साधन है। जिस शिक्षा प्रणाली को **रिपब्लिक** मे स्थान दिया गया है वह व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास पर समुचित बल देती है।

(२) न्याय सिद्धात की मान्यता है कि यह श्रेष्ठता तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति अपनी पूरी योग्यता, निष्ठा एवं लगन के साथ उसी एक कार्य को करता है जिसे प्रकृति ने (आत्मा के प्रधान लक्षण के आधार पर) उसे सौंपा है (या जिसे करने के लिए वह प्राकृतिक दृष्टि से पूर्णतः सक्षम है) तथा दूसरे व्यक्ति अथवा वर्ग के कार्यों मे वह किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नही करता।

(३) प्लेटो की समूची व्यवस्था का अन्तिम लक्ष्य 'दार्शनिक शासक' का निर्माण करना है क्योंकि उसकी मान्यता है कि "जब तक दार्शनिक शासक न होंगे एवं विश्व के शासक दर्शन की भावना एवं शक्ति से अनुप्राणित नही होंगे तब तक राज्य अपने दोषो का निराकरण नहीं कर पाएँगे।

(४) प्लेटो मानव आत्मा को अजर-अमर तथा ज्ञान का कोष मानता था। अतः उसके (आत्मा के) नष्ट होने तथा उसे ज्ञान प्रदान करने का प्रश्न ही पैदा नही होता। अपनी ग्रहणशीलता के गुण के कारण आत्मा अवश्य ही अपने वातावरण से प्रभावित होती रहती है। शिक्षा का कार्य एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना है जिससे आत्मा के गुणो में अभिवृद्धि हो या दूसरे शब्दों में शिक्षा आत्मा के श्रेष्ठ गुणो को प्रकाश में लाकर सही दिशा में अग्रसर करे। प्रो० नेटिलशिप ने लिखा है : "प्लेटो के अनुसार शिक्षा का ध्येय आत्म-चक्षुओं को प्रकाशोन्मुख करना है।"

(५) शिक्षा स्वयं एक अच्छाई है। इसका अंतिम लक्ष्य उस सत्य की खोज करना है जो काल तथा स्थान की पहुँच के बाहर है। उस चिरंतन, शाश्वत तथा अटल सत्य का परिशोधन ही शिक्षा की परिपूर्णता एवं सार्थकता का द्योतक है।

प्लेटो की शिक्षा प्रणाली की विशिष्टताएँ—प्लेटो के समय मे दो राज्यो—एथेन्स तथा स्पार्टा की प्रमुखता थी। इन दोनों नगर-राज्यों की शिक्षा व्यवस्थाएँ यद्यपि एक-दूसरे से काफी भिन्न थी तथापि प्रत्येक की अपनी कुछ विशिष्टताएँ थीं। प्लेटो ने इन दोनों का गहराई से अध्ययन किया था तथा प्रत्येक से उसने उन लक्षणो को ग्रहण किया जो उसे अपने आदर्श राज्य के संदर्भ में उपयुक्त प्रतीत हुए। इस संबंध मे बार्कर ने लिखा है "एथेन्स से प्लेटो की शिक्षा योजना का व्यक्तिगत पक्ष आता है—(यह) कि व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास हो स्पार्टा से उसका सामाजिक पक्ष (यह) कि नागरिक को राज्य में उसके उचित स्थान पर प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से शिक्षा राज्य के नियंत्रण में हो

इन दो विभिन्न प्रणालियों के समन्वय से जिस नवीन शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था प्लेटो ने अपनी रिपब्लिक में की, उसकी भी अपनी कुछ विशिष्टताएँ हैं। यथा—

राजकीय नियंत्रण—शिक्षा के महत्त्व को देखते हुए प्लेटो शिक्षा को व्यक्तिगत प्रयासों की दया पर नहीं छोड़ना चाहता था। किसी निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति का एक मात्र साधन उसे शिक्षा ही प्रतीत हुई। सेबाइन ने लिखा है : "यदि शिक्षा पर ध्यान न दिया गया तो राज्य द्वारा प्रतिपादित अन्य कार्यों का कोई महत्त्व नहीं।" परिणाम-स्वरूप, आदर्श राज्य में शिक्षा राज्य द्वारा नियंत्रित है।

अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था—यह शिक्षा के महत्त्व का ही कारण है कि आदर्श राज्य में शिक्षा को ऐच्छिक नहीं रखा गया है। **रिपब्लिक** में शिक्षा की जिस व्यवस्था को अपनाया गया है वह न केवल राज्य द्वारा नियंत्रित है बल्कि अनिवार्य भी है।

स्त्रियों को पुरुषों के समान शिक्षा—प्लेटो की शिक्षा व्यवस्था मनुष्यों की लैंगिक विभिन्नताओं को स्वीकार नहीं करती। उसकी मान्यता थी कि "लड़के और लड़कियों की मौलिक क्षमताओं में कोई अंतर नहीं है।" अतः उसका निष्कर्ष था : "दोनों को एक-सी शिक्षा दी जाए तथा स्त्रियों को पुरुषों के समान ही विभिन्न पदों पर नियुक्त किया जा सकता है।"

जीवन-पर्यंत शिक्षा—आदर्श राज्य की शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन-पर्यंत चलती रहती है। मनुष्य की आत्मा के गुणों का निरंतर विकास होता रहता है और वह पूर्णता की प्राप्ति के लिए बराबर ही अग्रसर होती रहती है। चूँकि शिक्षा का उद्देश्य इन गुणों का परिमार्जन करना तथा पूर्णता की प्राप्ति करना है, इसलिए शिक्षा भी मनुष्य के जीवन-पर्यंत चलती रहनी चाहिए।

सर्वांगीण विकास पर बल—शिक्षा के पाठ्यक्रम का अध्ययन हमें सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा देता है कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ आत्मा का निवास होता है। अतः शिक्षा व्यवस्था में आत्मा के विकास के साथ-ही-साथ स्वास्थ्य पर भी पर्याप्त बल दिया है। स्वास्थ्य के लिए 'व्यायाम' तथा आत्मा के लिए 'संगीत' की व्यवस्था है।

सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक शिक्षा-पद्धतियों का सुंदर समन्वय—आदर्श राज्य की शिक्षा व्यवस्था में सैद्धानिक एवं व्यावहारिक पक्षों का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। सैद्धांतिक शिक्षा व्यावहारिक शिक्षा के अभाव में वास्तविकता से परे रहती है और व्यावहारिक शिक्षा सैद्धांतिक शिक्षा के बिना लक्ष्यहीन। प्रो० बार्कर ने लिखा है : "सिद्धांत एवं व्यवहार मस्तिष्क की समान संतानें हैं। इसलिए मस्तिष्क को दोनों के संपर्क में लाना आवश्यक है।"

शिक्षा योजना—प्लेटो की शिक्षा योजना के प्रमुखतः दो स्तर हैं : (१) प्राथमिक शिक्षा तथा (२) उच्च शिक्षा। जैसा कि निम्न विवरण से पूर्णतः स्पष्ट है, प्रत्येक स्तर के पाठ्यक्रम के निर्धारण में प्लेटो ने बड़ी ही सतर्कता से काम लिया है और इसका निर्धारण करते समय आदर्श राज्य के निर्माण का लक्ष्य उसकी आंखों के सामने से कभी भी ओझल नहीं हुआ है।

प्राथमिक शिक्षा—यह शिक्षा ६ वर्ष की आयु से २० वर्ष की आयु तक चलती है। व्यक्ति के जीवन का यह निर्माणकाल है। इस अवधि में उसके शरीर तथा आत्मा के निहित गुणों का स्वाभाविक रूप से विकास होता है। प्लेटो की इस प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य इस बढ़ते हुए 'पौधे' को न केवल एक निश्चित दिशा दिखाना था बल्कि ऐसे व्यवधानों से उसकी रक्षा करना भी था जो गलत दिशा दिखाएँ या उसके विकास को अवरुद्ध करें। साथ ही, इसे पर्याप्त पोषण की भी आवश्यकता थी। प्लेटो ने इस स्तर की शिक्षा के पाठ्यक्रम के निर्धारण में इसका पूरा-पूरा ध्यान रखा है। 'संगीत' और 'व्यायाम' से साधारणत: जो अर्थ लगाया जाता है, प्लेटो का अर्थ उससे कहीं व्यापक है। प्रो० बार्कर के शब्दों में, " 'संगीत' मन के सामान्य प्रशिक्षण का मार्ग है।" 'संगीत' शब्द के अन्तर्गत संगीत के अतिरिक्त साहित्य तथा विभिन्न कलाओं को भी सम्मिलित किया गया है। प्लेटो की मान्यता थी कि संगीत में महान् शक्ति निहित है। वह उसके (संगीत के) मन पर पड़ने वाले प्रभाव से परिचित था। वह लिखता है : "जब संगीत की लय में परिवर्तन आता है तो राज्य के विधान में भी परिवर्तन आ जाता है।" उसने पाठ्यक्रम में अपनाई जाने वाली राग-रागिनियों, वाद्यों आदि का विवरण प्रस्तुत किया है। प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में उसी साहित्य को अपनाए जाने पर उसने बल दिया है जो मन में सत् एवं उदात्त विचारों का उदय कर सकें। उसके अनुसार "अच्छा साहित्य वह है जिससे कि व्यक्ति में निहित श्रेष्ठता को समुचित प्रोत्साहन मिल सके। इसी संदर्भ में प्लेटो ने कवियों की कटु आलोचना की है। उसने इस बात की पूरी-पूरी सतर्कता बरती है कि पाठ्यक्रम में कोई ऐसा विषय शामिल न किया जाए जो मानव मस्तिष्क को अन्यथा प्रभावित करे।

प्लेटो की मान्यता थी कि मानव मन की स्वस्थता के लिए शरीर की स्वस्थता एक अति आवश्यक शर्त है। इसी संदर्भ में उसने 'व्यायाम' विषयक पाठ्यक्रम का निर्धारण किया है। बार्कर के अनुसार यह व्यायाम "मन के लिए शरीर का प्रशिक्षण है।" प्लेटो ने 'व्यायाम' शब्द का और विस्तृत एवं व्यापक अर्थ लिया है। इसमें साधारण व्यायाम के अतिरिक्त भोजन तथा चिकित्सा भी सम्मिलित है। उसके लिए "भोजन का सादापन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चीज थी।" चिकित्सा की चर्चा उसने 'नकारात्मक' रूप में ही की है। चिकित्सा शरीर की रुग्णता का प्रतीक है। उसकी मान्यता थी कि यदि व्यक्ति हमेशा ही नीरोग रहेगा तो उसे चिकित्सक की शरण न लेना पड़ेगी।

प्लेटो की प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य श्रेष्ठ सैनिक का निर्माण करना था और ऐसे व्यक्ति ही सैनिक के महती दायित्व को निभा सकते हैं जो शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही दृष्टियों से पूर्ण स्वस्थ हों।

प्लेटो की इस शिक्षा व्यवस्था में उसकी अपनी कोई मौलिकता नहीं थी। यह व्यवस्था तथा यह कार्यक्रम एथेन्स एवं स्पार्टा की शिक्षा प्रणालियों में किया गया सुधार ही था। सेबाइन ने इस निष्कर्ष की पुष्टि करते हुए लिखा है : "रिपब्लिक में वर्णित प्रारम्भिक शिक्षा की योजना कोई पूर्णत: नवीन योजना न होकर मौजूदा योजना का

उच्च शिक्षा—किंतु जैसा कि सेबाइन ने आगे फिर लिखा है : "उच्च स्तरीय शिक्षा योजना निःसंदेह **रिपब्लिक** का अत्यंत मौलिक तथा अत्यंत विशिष्ट प्रस्ताव है।" उच्च शिक्षा की अवधि २० वर्ष से ३५ वर्ष निर्धारित की गई है। प्राथमिक शिक्षा की तुलना में उच्च शिक्षा का क्षेत्र न केवल सीमित था वल्कि निश्चयात्मकता की मात्रा इसमें अधिक थी। यह शिक्षा उन्हीं स्त्री-पुरुषों के लिए थी जो इस शिक्षा के लिए योग्यता की शर्तों को पूरा करते थे। जिस प्रकार प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य श्रेष्ठ सैनिकों का निर्माण था उसी प्रकार उच्च शिक्षा का उद्देश्य श्रेष्ठ शासकों—दार्शनिक राजा—का निर्माण था। इसलिए उच्च शिक्षा में जिन विषयों को महत्त्व दिया गया है वह हैं—गणित, ज्योतिष तथा तर्कशास्त्र। उसकी मान्यता थी कि ये मूलतः 'निश्चित विज्ञान' हैं जो दर्शन के अध्ययन की पृष्ठभूमि का निर्माण करेंगे—वह अध्ययन जो 'अच्छाई' की जानकारी का एकमात्र रास्ता है। उच्च स्तरीय शिक्षा की अवधि मे ही ३० वर्ष की आयु के उपरात ऐसे व्यक्तियों का चयन किया जाएगा जो आगे दर्शन की शिक्षा के अधिकारी होंगे। ५ वर्ष की इस अवधि मे उन्हें 'द्वन्द्वात्मकता' की शिक्षा की व्यवस्था है। यद्यपि प्लेटो ने इसे समझाने का प्रयास नहीं किया था तथापि विद्वानों का कथन है कि इससे अभिप्राय उस शिक्षा से है जो प्रत्येक वस्तु तथा व्यवस्था को तह मे ले जाकर अंतिम सत्य का दर्शन कराती है। इस आशय की पुष्टि प्लेटो द्वारा दी गई द्वन्द्वात्मकतावादी' की परिभाषा से स्पष्ट होता है : "द्वन्द्वात्मकतावादी वह है जो प्रत्येक वस्तु के निचोड़ की संबोधना तक पहुँच जाता है और अच्छाई के स्वरूप का दर्शन कर लेता है।"

अगले १५ वर्षों का समय वास्तविक अनुभव की प्राप्ति का समय है। ३५ वर्ष तक के अध्ययन में जिन्होंने अपनी श्रेष्ठता (बौद्धिक तथा अन्य) सिद्ध की है, प्रशासन तथा युद्ध जैसी परिस्थितियों में उनके वास्तविक अनुभव का कठिन परीक्षण होगा। इस 'अग्नि परीक्षा' में जो सफल होंगे उन्हे ५० वर्ष की आयु में संरक्षक का पद प्राप्त होगा। प्लेटो लिखता है : "अब वह समय आ गया है जब वे (संरक्षक) अपने आत्मचक्षुओं को उपर उठाएँ और सार्वभौम ज्ञान के प्रकाश का दर्शन करें तथा राज्य मे पूर्ण न्याय तथा व्यवस्था कायम करने के गुरुतर भार को सम्हालें।" यही था इस महान् दार्शनिक का लक्ष्य जिसे वह शिक्षा प्रणाली द्वारा प्राप्त करना चाहता था।

शिक्षा सिद्धांत की आलोचना—प्लेटो की शिक्षा प्रणाली की अनेकानेक आधारों पर आलोचना की गई है। इसमें प्रमुख हैं—

(१) प्लेटो की शिक्षा योजना एक निश्चित उद्देश्य को लेकर चलती है—दार्शनिक शासक का निर्माण। परिणामस्वरूप उत्पादक वर्ग के लिए इस योजना मे कोई स्थान नहीं है। यह बहुसंख्यक वर्ग पूर्णतः उपेक्षित है। यही कारण है कि प्लेटो की शिक्षा प्रणाली को 'संकीर्ण', 'एकांगी' तथा 'अप्रजातांत्रिक' कहकर आलोचना की गई है।

(२) यह सही है कि प्लेटो अपने लक्ष्य की प्राप्ति—दार्शनिक राजा का निर्माण-सिद्धातत कर लेता है परतु क्या ऐसा व्यक्ति जिसका लगभग सम्पूण जीवन ५० वर्ष

अध्ययन में व्यतीत हुआ है तथा उसके बाद भी जो चिन्तन में लीन रहता है, एक सफल शासक हो सकेगा ? क्या वह शासन की पेचीदगियों को समझकर उनका उपयुक्त निदान प्रस्तुत करने में सफल हो सकेगा ? एक लेखक ने बड़े ही सुन्दर ढंग से लिखा है : "यह ऐसा ही है जैसे कि एक संन्यासी को सांसारिक जीवन में उलझा कर उससे सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने की कामना करना।" बहुतों को इसमें संदेह है। वह (दार्शनिक) चिंतक तो होगा ; उसके कर्मठ कार्यकर्ता होने में संदेह किया जा सकता है।

(३) प्लेटो की शिक्षा योजना में उच्च शिक्षा उन्ही को दी जाएगी जो उसे प्राप्त करने के अधिकारी है। इन 'अधिकारियों' के चयन की कोई उपयुक्त एवं व्यवहारिक प्रणाली प्लेटो नही सुझा सका है जो इस प्रणाली का एक बडा दोष है।

(४) शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर जिन विषयों के अध्ययन की व्यवस्था की गई है, उनके निर्धारण में प्लेटो आवश्यकता से अधिक सचेत है। इसमें उन्ही विषयों को और उसी सीमा तक सम्मिलित किया गया है जो उसके लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक है। इस संदर्भ में 'नाटक' और 'कविता' जैसी चीजों का (जिन्हें संगीत के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा में सम्मिलित किया गया है) उदाहरण भी दिया जा सकता है।

(५) शिक्षा का राज्य के पूर्ण नियंत्रण मे होना भी उचित नहीं माना गया है। ऐसी व्यवस्था में व्यापकता के स्थान पर संकीर्णता तथा विविधता के स्थान पर एकरूपता का साम्राज्य होगा।

(६) प्लेटो की शिक्षा योजना की इस आधार पर भी आलोचना की गई है कि उसका (शिक्षा का) कार्यकाल आवश्यकता से अधिक विस्तृत है—५० वर्ष की आयु तक शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत उसे लागू करने का समय कितनों के पास रहता है ? क्या ऐसी शिक्षा स्वयं शासकों के 'उत्साह' और 'उपक्रम' को कुंठित न बना देगी ?

(७) **रिपब्लिक** में प्लेटो का उद्देश्य शिक्षा द्वारा शासकों को उस 'अच्छाई' की जानकारी प्राप्त करना है जिसे समझाने का उसने 'कष्ट' ही नहीं किया है। इस कमी के कारण प्लेटो की शिक्षा योजना पर अस्पष्टता का दोष लगाया गया है। कहा गया है : "अधिक अच्छा होता यदि हमें उसके 'अच्छाई' विषयक विचार अधिक स्पष्ट रूप में मिलते।"

साम्यवादी सिद्धांत

"जब तक दार्शनिक शासक न होंगे एवं विश्व के शासक दर्शन की भावना एवं शक्ति से अनुप्राणित नहीं होंगे तब तक राज्य अपने दोषों का निराकरण नही कर पाएँगे।" यह प्लेटो की 'केन्द्रीय मान्यता' थी। **रिपब्लिक** का उद्देश्य ऐसे दार्शनिक शासन का ही निर्माण करना है। उसके शिक्षा सिद्धांत की परिणति दार्शनिक शासक के निर्माण मे होती है। प्लेटो ने शासकों को पतित होते देखा था। वह उन प्रलोभनों से भी परिचित था जो शासक को पथ भ्रष्ट एवं पदच्युत करने मे हमेशा ही सक्रिय रहे

है। साथ ही, वह यह भी जानता था कि दार्शनिक शासक, जिसमें विवेक गुण अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में विकसित हो चुका है तथा जिसने सभी वस्तुओं एवं व्यवस्थाओं की तह में जाकर अंतिम सत्य की जानकारी प्राप्त कर ली है, अपने पद से साधारणतः च्युत नहीं होगा। किंतु वह इस संदर्भ में तनिक भी खतरा मोल लेने के लिए तैयार नहीं था। उसे 'परिवार' और 'संपत्ति' में ऐसे प्रलोभन दिखाई दिए। परिणामस्वरूप, अपने आदर्श राज्य में उसने संरक्षक वर्ग को इन दोनों ही वस्तुओं का निषेध कर दिया है और यही है प्लेटो का साम्यवाद।

इस संदर्भ में सेबाइन का कथन उचित प्रतीत होता है कि "प्लेटो का साम्यवाद एक निश्चित राजनीतिक उद्देश्य लेकर चलता है।" कुछ अन्य लेखकों ने प्लेटो के साम्यवाद के मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक एवं व्यावहारिक आधार ढूंढ़ने का प्रयास भी किया है और एक सीमा तक उन्हें इस कार्य में सफलता भी मिली है। उदाहरण के लिए, प्लेटो का आदर्श राज्य कार्यों के विशिष्टीकरण पर आधारित है। एक व्यक्ति एक ही कार्य करेगा जिसे करने के लिए वह प्राकृतिक दृष्टि से सक्षम है। प्रशासनों में विवेक गुण की प्रधानता है जो अन्य गुणों से श्रेष्ठ है। प्लेटो ने इसे (विवेक को) ईश्वरीय धातु कहा है। सभी नागरिकों में केवल उन्हीं को स्वर्ण तथा चांदी को न तो छूना चाहिए और न ही उपयोग में लाना चाहिए। साम्यवादी व्यवस्था (सम्पत्ति का साम्यवाद) इसी मान्यता का परिणाम है। राज्य की एकता आदर्श राज्य की एक अति आवश्यक शर्त है।

संपत्ति का साम्यवाद :

इस व्यवस्था में संरक्षक वर्ग के लिए संपत्ति वर्जित है। अर्थात् संरक्षकों की अपनी व्यक्तिगत संपत्ति नहीं होगी। उन्हें 'बैरकों' में रहने तथा साथ-साथ भोजन करने की व्यवस्था थी। गैटिल ने लिखा है : "असभ्य तथा अकृत्रिम जीवन की प्रशंसा करने मे प्लेटो रूसो का पूर्वगामी था।" संरक्षक वर्ग को संपत्ति का अधिकार प्रदान न करने का एक सामान्य कारण प्लेटो की एक मान्यता थी कि राजनीतिक एवं आर्थिक शक्तियों का एक ही हाथों में निहित कर देने का परिणाम राजनीतिक शुद्धता एवं राजनीतिक सक्षमता के लिए घातक सिद्ध होगा। चूंकि प्लेटो ने संरक्षकों को राजनीतिक शक्ति का एकाधिकार प्रधान कर दिया था, इसलिए व्यक्तिगत संपत्ति का निषेध आवश्यक था। उसी के शब्दों में : "जब भी वे अपनी भूमि, घर एवं संपत्ति अर्जित कर लेंगे तब वे अपने अन्य नगरवासियों के सहयोगी एवं सहायक बने रहने की अपेक्षा उनसे ईर्षा एवं द्वेष करने लग जाएँगे। उनके जीवन के सभी दिन नागरिकों से घृणा करने और उनके द्वारा घृणा किए जाने में ही व्यतीत होंगे। इस प्रकार अंततः वह अपने तथा नगर के सर्वनाश का भी मार्ग प्रशस्त करेंगे।" रक्षक स्वयं भक्षक बन जाएँगे।

तीसरे वर्ग (उत्पादक वर्ग) को यद्यपि संपत्ति के अर्जन एवं संचयन का वह अधिकार प्रदान करता है तथापि संपत्ति के अत्यधिक बाहुल्य एवं उसकी अत्यधिक न्यूनता को नियंत्रित करने तथा उसके अर्जन के साधनों के औचित्य पर प्रतिबंध लगा

सकती है उत्पादक की श्रेष्ठता के संदर्भ मे प्लेटो संपत्ति विषयक दोनो अतियों (अत्यधिक बाहुल्य एवं अत्यधिक कमी) को अवांछनीय एवं हानिकारक मानता है। एक कुम्हार के धनी हो जाने पर वह कहता है : "तब वह आलसी और लापरवाह हो जाएगा'''वह एक खराब कुम्हार बन जाएगा।" एक अन्य ऐसे ही अत्यधिक अकिंचन कारीगर के संदर्भ में, जो न तो अपने आवश्यक औजारों को और न व्यवसाय संबंधी अन्य जरूरी वस्तुओं के खरीदने में समर्थ है, वह कहता है : "उसके द्वारा निर्मित वस्तुएँ निकृष्ट होंगी और वह अपनी संतान को या शिष्यों को समुचित प्रशिक्षण न दे सकेगा और इस प्रकार वह और भी निकृष्ट कारीगर बनेंगे।" साथ ही, संपत्ति के अर्जन मे वह उचित साधनों पर बल देता है।

परिवार का साम्यवाद :

इसे 'पत्नियों का साम्यवाद' भी कहा गया है। इससे तात्पर्य है कि संरक्षक वर्ग के व्यक्तियो के न तो अपनी पत्नियाँ होंगी, और न संतान। दूसरे शब्दों मे, उनके अपने व्यक्तिगत परिवार नही होंगे। यह सही है कि प्लेटो ने संरक्षक वर्ग के श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषों मे यौन-संबंधों की व्यवस्था की है किन्तु इसका एक मात्र लक्ष्य श्रेष्ठ संतान की उत्पत्ति ही है। श्रेष्ठ प्रजनन के लिए उसने स्त्रियों एवं पुरुषों के लिए आयु का निर्धारण भी किया है। यह आयु स्त्रियों में २०-४० वर्ष तथा पुरुषों में २५-५५ वर्ष रखी गई है। 'जोड़ों' का चयन, उनका पारस्परिक मिलन तथा मिलन के परिणामस्वरूप उत्पन्न संतान के पालन-पोषण का दायित्व राज्य को सौंपा गया है। राज्य की श्रेष्ठता की प्राप्ति एवं उसे बनाए रखने के लिए यह दार्शनिक कितना-कुछ कर सकता था यह इसी एक उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि प्रजनन की निर्धारित आयु सीमा के पहले या बाद की संतान को नष्ट किए जाने का उसने सुझाव दिया है, क्योंकि उसके मतानुसार ऐसी संतान, निश्चित रूप से अपूर्ण, अविकसित, अपंग तथा अयोग्य होगी।

परिवार का साम्यवाद संपत्ति के साम्यवाद का कारण है, परिणाम नहीं। व्यक्ति संकीर्ण स्वार्थों के दायरो में जीता है और उन्ही की पूर्ति मे अपने सम्पूर्ण जीवन को खपा देता है। प्लेटो को परिवार स्वार्थ का गढ़ प्रतीत हुआ। व्यक्तिगत परिवार के भीतर बच्चो का उस प्रकार समग्र रूप से विकास संभव नहीं हो पाता, जिसकी राज्य अपेक्षा करता है और परिवार की चहारदीवारी में स्त्रियों की प्रतिभाएँ हमेशा से ही नष्ट होती रही है। जहाँ तक शासन-संचालन-प्रतिभा का प्रश्न है, प्लेटो की मान्यता थी, स्त्रियाँ पुरुषों से किसी भी रूप में कम नहीं हैं। इसी संदर्भ में प्लेटो विवाह प्रथा पर भी प्रहार करता है। उसके अनुसार विवाह प्रथा का एक मात्र लक्ष्य वैध संतान की ही प्राप्ति है। मनुष्यों में संभोग की निरुद्देश्य प्रवृत्ति का जो, उसके अनुसार, स्थायी वैवाहिक प्रणाली की ही देन है, वह कटु आलोचक था। उसके मतानुसार पालतू जानवरों में भी इस प्रवृत्ति को सहन नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि उसने अपने आदर्श राज्य मे सोद्देश्य किंतु अस्थायी विवाह प्रणाली का सुझाव दिया है। यह उद्देश्य है राज्य की योग्य एवं श्रेष्ठ संतान की उत्पत्ति ऐसे बच्चों का लालन-पालन

राज्य के नियंत्रण एवं निर्देशन मे होगा। चूँकि जन्म होने के तुरंत ही उपरांत इन्हे राज्य के नियंत्रण मे ले लिया जाएगा इसलिए न तो माँ-बाप को अपनी संतान की पहचान होगी और न ही संतान को अपने माँ-बाप की। संरक्षक सभी बच्चो के माँ-बाप होगे और उन्हें वही सब-कुछ देगे जो माँ-बाप अपने स्वयं के बच्चों को देते है।

इस प्रकार परिवार की साम्यवादी व्यवस्था से प्लेटो तीन लक्ष्यों की प्राप्ति करना चाहता है, जो राज्य की एकता तथा न्याय व्यवस्था की भी अपेक्षा है : संरक्षक वर्ग को स्वार्थो के संकीर्ण दायरों से मुक्त करना, स्त्रियों को घर की चहारदीवारी से बाहर निकाल कर उन्हे प्रशासन के महत्त्वपूर्ण कार्यों में भागीदारी प्रदान करना तथा श्रेष्ठ संतान की उत्पत्ति या संतान के श्रेष्ठ परिपालन की व्यवस्था करना।

आलोचना—साम्यवादी व्यवस्था प्लेटो के दर्शन का वह भाग है जिसकी अत्यधिक आलोचना की गई। अरस्तू ने भी इस संदर्भ मे कोई 'रियायत' नही बरती है। उसने प्लेटो के साम्यवाद की कटु आलोचना की है। बार्कर का कथन है : "प्लेटो जिन उद्देश्यो को लेकर साम्यवाद की योजना रखता है उनसे सहमत होने मे कठिनाई नहीं हो सकती, परन्तु साधनो को स्वीकार करने मे कठिनाई होती है। उसके सिद्धांतों से हम सहमत हो सकते है, परंतु हमे उनके व्यवहृत करने के तरीकों को अमान्य करना पड़ सकता है।" यह कथन साम्यवादी व्यवस्था के दोनों ही पक्षों से संबद्ध है।

(अ) संपत्ति का साम्यवाद—१. संपत्ति के साम्यवाद का उद्देश्य संरक्षक वर्ग को पतित होने से बचाना था। संपत्ति की धारणा में स्वार्थ पनपता है। वह ईर्षा-द्वेष को जन्म देती है और इसी कारण प्लेटो संरक्षक वर्ग के लिए संपत्ति का निषेध करता है। यदि इस मान्यता को स्वीकार कर लिया जाए तो उत्पादक वर्ग को संपत्ति रखने के अधिकार का औचित्य समझ मे सहज ही नही आ पाता। पुनः प्लेटो उत्पादक वर्ग को व्यक्तिगत संपत्ति रखने का अधिकार प्रदान करता है तथा संपत्ति के कारण उत्पन्न विवादो के निबटारे का दायित्व उसी संरक्षक वर्ग को सौपता है जो संपत्तिविहीन है। क्या ऐसे व्यक्ति संपत्ति विषयक इन जटिल समस्याओ का निदान खोज सकेंगे? बार्कर जैसे विद्वानो को इसमें संदेह है।

२. बहुसंख्यक वर्ग (उत्पादक वर्ग) को संपत्ति का अधिकार प्रदान करके तथा अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक वर्ग (संरक्षक वर्ग) को उसका निषेध करके प्लेटो राज्य मे स्वत ही राज्यों का निर्माण कर देता है। क्या ऐसी स्थिति मे प्लेटो राज्य की एकता के उस आदर्श को प्राप्त कर सकेगा जो उसके न्याय सिद्धांत का लक्ष्य है।

३. संपत्ति की साम्यवादी व्यवस्था मे प्लेटो मानव प्रकृति की स्वाभाविक मनोवृत्ति की अवहेलना करता है। मनुष्य में व्यक्तिगत स्वामित्व की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है और इसीलिए व्यक्तिगत संपत्ति का निषेध न केवल अस्वाभाविक है वल्कि हानिकारक भी है। संपत्ति सभ्यता की देन है। इसकी अनुपस्थिति मे व्यक्ति अपनी प्रारम्भिक अवस्था में पहुँच जाएगा।

(ब) परिवार का साम्यवाद 'संपत्ति' के समान 'परिवार' में भी प्लेटो को गंभीर दोष दिखाई दिए थे जिनका एकमात्र निदान उसे इस संस्था की समाप्ति मे ही प्रतीत

हुआ संरक्षक वर्ग के लिए वह परिवार का निषेध करता है राजनीति के अनेक विद्वानों ने प्लेटो की परिवार संबंधी इस 'मान्यता' तथा परिवार विषयक साम्यवादी 'व्यवस्था' दोनों की निम्न आधारों पर आलोचना की है—

१. अपने आदर्श राज्य के संदर्भ में ही प्लेटो ने 'परिवार' का (एक संस्था के रूप में) निषेधात्मक रूप में ही अध्ययन किया था और इसीलिए उसे यह एक निकृष्टतम संस्था प्रतीत हुई। वह इस संस्था के उस सही स्वरूप का दर्शन न कर सका जिसके कारण अरस्तू जैसे विद्वानों ने इसे एक 'स्वाभाविक संस्था' तथा 'नागरिकता की प्रथम पाठशाला' कहा है। नैटिलशिप ने परिवार के इन दोनों ही पक्षों का चित्रण इन शब्दों में किया है : 'व्यक्ति की स्वार्थपरता अन्यत्र कहीं इतनी स्पष्ट नहीं होती जितनी कि परिवार से संबंधित मामलों में; किंतु उसकी त्यागवृत्ति भी इतनी स्पष्टता के साथ अन्यत्र कहीं प्रगट नहीं होती।'' अब तक की इन्हीं कतिपय श्रेष्ठतम चीजों को व्यक्ति तथा स्त्री के प्यार अथवा संतान के प्रति माता-पिता के स्नेह के साथ जोड़ा जा सकता है।

२. परिवार की वास्तविक प्रकृति को महत्त्व न दे सकने के कारण 'व्यक्तिगत परिवार' के स्थान पर 'राज्य परिवार' की जो रूपरेखा उसने प्रस्तुत की है वह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दोषपूर्ण तथा अव्यावहारिक है। यथा—

(क) स्त्री-पुरुष में प्लेटो केवल लिंग-भेद का ही अंतर मानता है जो सही नहीं है। लिंग-भेद के अतिरिक्त स्त्री और पुरुष प्रकृति की दो ऐसी भिन्न रचनाएँ हैं जो एक-दूसरे की पूरक है।

(ख) प्लेटो स्त्री और पुरुष के बीच केवल यौन संबंधों को ही महत्त्व दे सका है और वह भी केवल प्रजनन के संदर्भ में और इसलिए श्रेष्ठ संतान की उत्पत्ति हेतु स्त्री-पुरुषों के इन संबंधों को राज्य नियंत्रण में सीमित कर देने का सुझाव भी देता है। वह भूल जाता है कि यौन संबंधों की प्रकृति स्थायी-अस्थायी न होकर उसी प्रकार स्थायी है जैसे कि माँ और उसकी संतान के संबंधों की प्रकृति तथा यह मिलन मात्र शारीरिक मिलन न होकर आत्माओं का मिलन है जो आपस में मिलकर 'दो' से 'एक' हो जाती है।

३. यदि इस आशय को स्वीकार भी कर लिया जाए कि यौन संबंधों का लक्ष्य प्रजनन मात्र ही है तब भी प्लेटो द्वारा प्रस्तावित योजना दोषरहित नहीं है। उदाहरण के लिए—

(क) प्लेटो का कथन है कि श्रेष्ठ 'जोड़ों' का चयन किया जाएगा किंतु इस चयन की कोई व्यावहारिक योजना उसने नहीं सुझाई है। आलोचकों के अनुसार यह चयन उतना सरल नहीं होगा जितना कि प्लेटो इसे समझता है।

(ख) यह व्यवस्था अनाचार और अनैतिकता को जन्म देगी क्योंकि प्लेटो की व्यवस्था से पिता-पुत्री तथा भाई-बहन जैसे नैतिक संबंधों को न तो मान्यता दी गई है और न महत्त्व।

(ग) स्त्रियों को लेकर उठने वाले संभावित विवादों के प्रति जागरूक न होने के कारण उसने इनके समाधान की कोई व्यवस्था नहीं की है।

४. यदि प्लेटो की इस मान्यता को भी स्वीकार कर लिया जाए तो क्या यह आवश्यक है कि श्रेष्ठ 'जोड़ों' से श्रेष्ठ संतान ही उत्पन्न होगी ? इस संदर्भ में प्रकृति जगत से प्लेटो द्वारा दी गई समानताएँ हास्यास्पद प्रतीत होती हैं।

५. वह संरक्षक वर्ग के बच्चों के लालन-पालन का दायित्व राज्य को सौंपता है। इस व्यवस्था के अनुसार माता-पिता न तो अपने बच्चों से परिचित होंगे और न बच्चे अपने माता-पिता से। इस योजना का लक्ष्य योग्य एवं श्रेष्ठ (भावी) शासकों का निर्माण करना है जो संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठे हुए हों। हो सकता है इन बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए इतना ही पर्याप्त होगा ? आलोचकों का कथन है कि राज्य द्वारा परिवार की यह योजना बच्चों में उन मानवीय गुणों का विकास न कर सकेगी जिनका व्यक्तिगत परिवार में सहज एवं स्वाभाविक ढंग से विकास होता रहता है। उन्हें तो इस बात में भी संदेह है कि इन बच्चों को संरक्षक वर्ग का उतना संरक्षण, सुयोग्य एवं सौभाग्य मिल सकेगा जिसकी अपेक्षा प्लेटो ने की थी; संभव है 'सबकी' यह संतान 'किसी की भी' संतान न हो सके। समूची व्यवस्था अस्वाभाविक, अव्यावहारिक एवं त्रुटियों से परिपूर्ण है।

(स) कुछ आलोचकों ने समूची साम्यवादी व्यवस्था की भी आलोचना की है। यथा—

१. यह व्यवस्था केवल संरक्षक वर्ग के लिए है। बहुसंख्यक उत्पादक वर्ग इस व्यवस्था के बाहर है। इसलिए साम्यवादी व्यवस्था को अर्ध-साम्यवाद कहा गया है।

२. यह एक भौतिकवादी व्यवस्था है जो नैतिक सुधार के लिए निर्मित की गई है। प्रो० बार्कर ने लिखा है : "हम एक क्षण के लिए भी इस बात पर संदेह नहीं कर सकते कि साम्यवाद उस नैतिक सुधार का भौतिक एवं आर्थिक उपसाध्य मात्र है जिसे वह प्राप्त करना चाहता है।" आलोचकों का कथन है कि नैतिक सुधार के लिए किसी नैतिक व्यवस्था (उदाहरण के लिए शिक्षा व्यवस्था) पर ही बल दिया जाना चाहिए था। उन्हें संदेह है कि यह भौतिक व्यवस्था अपेक्षित नैतिक सुधार लाने में समर्थ हो सकेगी।

३. प्लेटो का साम्यवाद मानव स्वतंत्रता और मानव व्यक्तित्व का विरोधी है। "वह भ्रातृत्व के लिए मानव स्वतंत्रता तथा दक्षता के लिए मानव समानता का बलिदान कर देता है।" आलोचकों का कथन है कि "यदि हम चाहते है कि व्यक्ति के हित एवं भ्रातृत्वभाव संकीर्ण एवं संकुचित न होकर विस्तृत एवं व्यापक हों तो यह भी आवश्यक है कि उसकी जड़ें काफी गहरी हों।" प्लेटो का साम्यवाद इसका कोई निदान नहीं है।

प्लेटो का साम्यवाद और आधुनिक साम्यवाद—एक तुलना। क्या प्लेटो मार्क्सवादी कम्युनिस्ट है ? मैक्सी ने लिखा है : "समस्त समाजवादी तथा साम्यवादी चिंतन का मूल प्लेटो में है। यदि प्लेटो आज जीवित होता तो वह उत्कृष्टतम साम्यवादी सिद्ध होता।" इस रूप में **रिपब्लिक** को साम्यवाद का मूल कहा जा सकता है। किंतु इसके ठीक विपरीत टेलर का कथन है : "**रिपब्लिक** के समाजवाद और साम्यवाद के संबंध में बहुत-कुछ कहा जाने के बावजूद भी इस ग्रंथ मे वस्तुतः न तो समाजवाद पाया जाता है और न ही साम्यवाद- और इस रूप में **रिपब्लिक** का समाजवाद या साम्यवाद से कोई संबंध नहीं है अपने-अपने संदर्भ मे दोनों ही कथन सही हैं समाज के एक विशिष्ट व

के लिए व्यक्तिगत सपत्ति का निषध समस्त ी विचारधारा का प्रारंभिक सूत्र कहा जा सकता है, किंतु प्रकृति, उद्देश्य, क्षेत्र आदि के संदर्भ में दोनों विचारधाराओं (प्लेटो का साम्यवाद और आधुनिक साम्यवाद) मे अंतर टेलर के कथन के औचित्य को भी सिद्ध कर देता है। अधिक स्पष्टीकरण के लिए दोनों विचारधाराओं में समानताओं एव विभिन्नताओं का विवरण आवश्यक है—

समानताएँ—दोनों विचारधाराओं में निम्न समानताएँ देखी जा सकती हैं—

१. दोनों व्यक्तिवादी विचारधारा के कट्टर विरोधी है।

२. दोनो व्यक्ति को एक 'व्यक्ति' के रूप मे महत्त्व नही देते, उनके लिए व्यक्ति का समाज की एक अभिन्न इकाई के रूप में ही महत्त्व है।

३. दोनों ही राज्य को सर्वोपरि मानते हैं ; व्यक्तिहित राज्यहित की तुलना मे गौण है: राज्यहित मे व्यक्तिहित निहित है।

४. दोनों ही राज्य की एकता के प्रबल समर्थक हैं।

५. दोनो मानव प्रकृति के किन्हीं विशिष्ट तत्त्वों का न केवल विरोध करते हैं बल्कि उसे एक वांछित दिशा में मोड़ देने के लिए प्रयत्नशील भी हैं। व्यक्तिगत सपत्ति का विरोध एक ऐसा ही विरोध है।

असमानताएँ—किंतु यह समानताएँ केवल 'ऊपरी' समानताएँ ही है, अधिक गहराई मे जाने पर इन समानताओं में भी असमानताएँ दृष्टिगोचर होने लगती है। समग्र रूप में ये असमानताएँ निम्नलिखित है—

१. आधुनिक साम्यवाद न केवल समूचे राज्य के लिए है बल्कि यह समूचे विश्व के लिए है। यह सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीयता मे विश्वास करता है। अर्थात् यह सारे विश्व मे फैल जाना चाहता है। इसके विपरीत प्लेटो का साम्यवाद केवल 'संरक्षक वर्ग' के लिए ही है, जो समाज का अल्पसंख्यक वर्ग है : बहुसंख्यक उत्पादक वर्ग पर यह लागू नही होता, इसलिए प्लेटो के साम्यवाद को 'अर्ध-साम्यवाद' कहा गया है।

२. भूमि और संपत्ति पर सामाजिक स्वामित्व की स्थापना से आधुनिक साम्यवाद मूलतः आर्थिक है। इसके विपरीत प्लेटो का साम्यवाद मूलतः राजनीतिक (संरक्षक वर्ग को भ्रष्ट होने से बचाना) है।

३. आधुनिक साम्यवाद पूँजीवादी व्यवस्था का परिणाम है, जबकि प्लेटो का साम्यवाद स्वयं मे कोई साध्य नहीं; यह तो उसकी आदर्श राज्य व्यवस्था का एक अभिन्न अंग मात्र है।

४. प्लेटो का साम्यवाद संपत्ति के साम्यवाद के साथ-ही-साथ स्त्रियों के साम्यवाद की भी व्यवस्था करता है, आधुनिक साम्यवाद में स्त्रियों के संबंध में ऐसी कोई व्यवस्था नही है।

५. आधुनिक साम्यवाद एक राज्यविहीन तथा वर्गविहीन समाज की स्थापना का इच्छुक है ; प्लेटो की व्यवस्था में राज्य को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है तथा इस व्यवस्था का संबंध एक वर्ग विशेष—संरक्षक वर्ग—से ही है। इस प्रकार प्लेटो की आदर्श राज्य न तो राज्यविहीन है और न वर्गविहीन

६. दोनों ही व्यवस्थाएँ यद्यपि 'न्याय' की स्थापना की इच्छुक है, किंतु 'न्याय' से दोनों का 'आशय' अलग-अलग है। आधुनिक साम्यवादी संदर्भ में न्याय से तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के अनुसार प्राप्ति करे तथा अपनी योग्यतानुसार कार्य करे, जबकि प्लेटो की न्याय की अपेक्षा थी कि प्रत्येक व्यक्ति अपने निर्धारित कार्य को ही करे तथा दूसरे के कार्य मे हस्तक्षेप न करे।

७. आधुनिक साम्यवाद का लक्ष्य 'सर्वहारा वर्ग' को शासन सौंप देना है, जबकि प्लेटो के आदर्श राज्य मे साम्यवादी व्यवस्था का लक्ष्य श्रेष्ठ शासक को पथ-भ्रष्ट होने से बचाना था।

८. आधुनिक साम्यवादी व्यावहारिक है। इस व्यवस्था को विश्व के अनेकानेक छोटे-बड़े राज्यो द्वारा अपना लिया गया है। किन्तु प्लेटो की न केवल साम्यवादी व्यवस्था बल्कि सम्पूर्ण आदर्श राज्य व्यवस्था (साम्यवादी व्यवस्था जिसका एक अंग मात्र है) विचारों तक ही सीमित है; इसे कभी भी और कही भी लागू नही किया जा सकता है। अपने अंतिम दिनो में प्लेटो ने भी इसकी अव्यावहारिकता को स्वीकार कर लिया था।

उपरोक्त विभिन्नताओ से स्पष्ट है कि प्लेटो का साम्यवाद आधुनिक साम्यवाद से "मुश्किल से ही कहीं मेल खाता है।" कैटलिन ने बड़े ही सुदर शब्दों मे लिखा है "यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि प्लेटो मार्क्सवादी कम्युनिस्ट नहीं है। उसका साम्यवाद न तो सर्ववर्गीय है और न अंतर्राष्ट्रीय। इतिहास की वस्तुवादी व्याख्या की आधारशिला पर भी यह आधारित नहीं है। आर्थिक दृष्टि से, एक वर्गविहीन समाज ही इसकी परिणति है। परंतु निश्चय ही इसका उद्देश्य एक कार्यगत-अविभाज्य समाज की रचना नही है, और सबसे महत्त्वपूर्ण तो यह है कि यह वर्ग-संघर्ष के पूर्णत. विरोध में है तथा कहीं भी यह इस आशय की कल्पना तक नही करता कि सामाजिक न्याय की स्थापना की प्रथम आवश्यकता वर्ग-संघर्ष में विजयश्री प्राप्त करने में है।"

प्लेटो एक फॉसिस्ट

प्रथम महायुद्ध (१९१४-१९१९) के दौरान विलसन जैसे राष्ट्र नेताओं ने युद्ध की समाप्ति पर प्रजातंत्रवाद की स्थापना की घोषणा की थी। इस घोषणा को व्यावहारिक रूप प्रदान भी किया गया, किंतु प्रजातंत्र एक ऐसी व्यवस्था है जिसे ऊपर से थोपा नहीं जा सकता। परिणामस्वरूप, प्रजातंत्रवादी व्यवस्थाएँ असफल होती गई और उनके अवशेषो पर अधिनायकवादी शासनों की स्थापना हुई। इटली में मुसोलिनी के नेतृत्व मे जिस अधिनायकवाद को जन्म दिया गया उसे 'फॉसीवाद' के नाम से जाना जाता है। यह एक अधिनायकवादी विचारधारा है, जिसमे समूची शासन-सत्ता एक 'नेता' में निहित होती है, राष्ट्र सर्वोपरि होता है। राज्यहित व्यक्तिगत हित से श्रेष्ठ होता है तथा जो मानव-समानता का विरोधी है। प्लेटो की आदर्श राज्य व्यवस्था के कुछ तत्त्व फॉसीवादी व्यवस्था मे समानता रखते है। परिणामस्वरूप, प्लेटो को 'प्रथम फॉसीवादी' कहा गया है। यह समानताएँ, संक्षेप मे. निम्नलिखित हैं—

समानता (१) दोनों ही विचा[illegible]राए राज्य का सर्वोच्च मानती है।

(२) राज्यहित व्यक्तिहित से [illegible] है।

(३) दोनों ही [illegible] स्वतंत्र अस्तित्व के समर्थक नहीं ; व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में मान्यता न देकर समाज के एक अभिन्न अंग के रूप में ही मान्यता दी गई है।

(४) दोनों ही शासक की श्रेष्ठता के समर्थक है। **रिपब्लिक** का लक्ष्य वस्तुत. एक श्रेष्ठ शासक (दार्शनिक राजा) का निर्माण करना ही है।

(५) दोनों ही प्रकृति-प्रदत्त गुणों के आधार पर व्यक्तियों को असमान मानते हे। फॉसिस्टवादियों की यह एक मौलिक मान्यता है कि व्यक्ति प्रकृति से ही असमान है। प्लेटो की भी मान्यता है कि व्यक्ति में अलग-अलग गुणों की प्रधानता होती है—किसी मे विवेक की प्रधानता होती है तो किसी में उत्साह की, तो किसी मे क्षुधा की।

(६) दोनों ही प्रजातंत्रवाद के विरोधी है। फॉसीवाद प्रजातंत्रवाद की मौलिक मान्यताओं—स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व में आस्था नही रखता। प्लेटो भी प्रजातंत्रवाद का समर्थन नही कर सका है ; जनता के शासन से वह एक दार्शनिक के शासन को श्रेष्ठ समझता है। फॉसीवादी मुसोलिनी के शासन का गुणगान करते थे।

(७) दोनों ही राष्ट्र की एकता को हर कीमत पर बनाए रखना चाहते है। प्लेटो ने इसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु परिवार जैसी स्वाभाविक संस्था पर कुठाराघात किया है

इन समानताओं के होते हुए भी प्लेटो को फॉसीवादी कहना प्लेटो का गलत मूल्यांकन करना होगा। वस्तुतः यह समानताएँ मात्र प्रासंगिक ही हैं। वास्तविकता तो यह है कि दोनों में मौलिक विभिन्नताएँ है। यथा—

विभिन्नताएँ—(१) प्लेटो का दर्शन आदर्शवादी है, जबकि फॉसीवाद घोर यथार्थवादी है।

(२) प्लेटो का आदर्श नैतिकता पर आधारित है जिसे उसने 'न्याय' कहा है, जबकि फॉसीवाद मे नैतिकता के लिए कोई स्थान नहीं है।

(३) यह सही है कि प्लेटो शासक की 'श्रेष्ठता' का समर्थक है, किन्तु यह श्रेष्ठता शासक की शक्ति पर आधारित नहीं है (जैसा कि फॉसीवाद के साथ सही है) बल्कि यह वह श्रेष्ठता है जो उसके विवेक गुण की देन है तथा शिक्षा द्वारा जो अपने अधिकतम रूप मे विकसित एवं परिमार्जित है।

(४) प्लेटो की मान्यता थी कि यदि प्रत्येक व्यक्ति तथा समाज का प्रत्येक वर्ग अपने निर्धारित कार्य को ही करता है, दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता तथा किन्हीं भी प्रलोभन के प्रभाव से पदच्युत नहीं होता तो राज्य श्रेष्ठ होगा। इसके विपरीत फॉसीवाद की मान्यता है कि जो राज्य शक्तिशाली है वह श्रेष्ठ है; शक्ति से तात्पर्य है सैनिक शक्ति और जो देश सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली होता है वह स्वभावत युद्धवादी एव साम्राज्यवादी है; स्पष्ट है, फॉसीवादी सैन्यवादी, युद्धवादी तथा साम्राज्यवादी है; प्लेटो की आदर्श व्यवस्था का इन मान्यताओं से दूर का भी संबंध नहीं था।

(५) प्लेटो ने **रिपब्लिक** मे संरक्षक वर्ग के लिए साम्यवाद की व्यवस्था की है—सपत्ति का तथा परिवार का किन्तु फासीवाद न केवल साम्यवाद में

अनास्थावान् है बल्कि वह इसका घोर विरोधी भी है। सन् १९३६ में इटली, जर्मनी तथा जापान द्वारा की गई 'एन्टी-कामिटर्न' (कामिटर्न अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद को कहा गया है) संधि इसका एक ज्वलंत उदाहरण है।

उपरोक्त विवरण से यह पूर्णत: स्पष्ट है कि प्लेटो की व्यवस्था फॉसीवाद से मौलिक रूप से भिन्न है। दोनों में किन्हीं संदर्भित समानताओं के आधार पर प्लेटो को 'प्रथम फॉसिस्ट' नहीं माना जा सकता।

प्रमुख संशोधन

रिपब्लिक प्लेटो की न केवल सर्वश्रेष्ठ रचना है बल्कि इसे प्लेटो की प्रतिनिधि रचना भी कहा जा सकता है। बिलडुरों ने इसे प्लेटो का 'पुस्तकीकरण' कहा है। निर्विवाद रूप से प्लेटो की **रिपब्लिक** राजनीतिशास्त्र की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में से है। सेबाइन ने लिखा है : "**रिपब्लिक** सर्वकालिक रचना है क्योंकि इसके सिद्धांतों की 'सामान्यता' लगभग अनंत है।" जैसा कि उपरोक्त में वर्णित है, **रिपब्लिक** की रचना में प्लेटो का लक्ष्य तात्कालिक नगर-राज्यों के समक्ष एक ऐसी व्यवस्था प्रस्तुत करना था जो सभी दृष्टियों से श्रेष्ठ हो। किन्तु **रिपब्लिक** में यह श्रेष्ठता एक ऐसा 'आदर्श' बन गई है जो वास्तविक राज्यों की पहुँच के बाहर है। परिणामस्वरूप, **रिपब्लिक** में चित्रित व्यवस्था इन राज्यों का आधार न बन सकी। उसने स्वयं स्वीकार किया है : "वह नगर (आदर्श राज्य) शब्दों में ही चित्रित है, क्योंकि मेरे विचार से पृथ्वी पर यह कहीं भी नहीं है।"

किंतु यह दार्शनिक हताश होने वाला नहीं था। उसने वास्तविकताओं के संदर्भ में अपने विचारों को क्रमश: संशोधित किया। प्रो० बार्कर ने प्लेटो की इस मान्यता को इन शब्दों में व्यक्त किया है : "अगर वह एक दार्शनिक शासक का, कानून के बिना, कानून के स्थान पर शासन कर सकें, प्रशिक्षण नहीं कर सकता तो दार्शनिक स्वयं कानून ही क्यों न बनाए तथा एक ऐसी दार्शनिक-न्याय संहिता की उद्घोषणा क्यों न कर दे जिसे सभी राज्य मानकर चलें।" उसके अन्य दो ग्रंथ क्रमश: **स्टेट्समैन** तथा **लॉज** इन्हीं विचारों को संग्रहीत करते हैं।

स्टेट्समैन :

प्लेटो ने अपनी मान्यताओं में यकायक ही परिवर्तन नहीं कर डाला। उसे इस बात की जानकारी थी कि **रिपब्लिक** में चित्रित आदर्श राज्य में कानून का निषेध एक केंद्रीय कठिनाई है। किंतु उसने 'इसे' कभी भी 'व्यवस्था' का दोष नहीं माना। यही कारण है कि अपने इन बाद के ग्रंथों में प्लेटो का लक्ष्य एक ऐसे शासन की खोज करना था जो 'आदर्श' के समीप होने के साथ-ही-साथ व्यावहारिक भी हो। व्यावहारिकता की अपेक्षा थी कि वह 'कानून' को मान्यता दे। **स्टेट्समैन** में यह मान्यता दार्शनिक शासक को 'छूट' (रियायत) के रूप में दी गई है, जबकि **लॉज** में वह एक ऐसे 'उप-आदर्श राज्य' का चित्रण करता है जो कानून पर ही आधारित है।

सेबाइन ने लिखा है : "**रिपब्लिक** में यह पाया गया था कि राजनेता एक कलाकार है जिसे शासन करने का अधिकार इसलिए है कि केवल वही जानता है कि अच्छाई क्या है। **स्टेट्समैन** में इसी प्रश्न की विवेचना की गई है तथा **रिपब्लिक** की इस मान्यता को विस्तृत रूप से परिभाषित किया गया है।" उसने कहा है : "सरकार के प्रकारों में केवल वही सरकार सही तथा वास्तविक है जिसमें शासक सही अर्थों में 'ज्ञानी' हो, चाहे वे कानून के अनुसार शासन करें या बिना कानून के, चाहे जनता उन्हें चाहे या न चाहे।" स्पष्ट है, प्लेटो **स्टेट्समैन** में **रिपब्लिक** की अपनी इस मान्यता को पुनः दोहराता है कि न केवल विवेक का शासन ही सर्वश्रेष्ठ है बल्कि विवेक कानून से भी श्रेष्ठ है। यहाँ प्लेटो का एक मात्र संशोधन शासक या राजनेता को दी गई यह रियायत है कि वह यदि चाहे तो कानून का अनुसरण कर सकता है, किंतु कानून का अनुसरण करने के लिए न तो वह बाध्य है और न इसके लिए उसे बाध्य ही किया जा सकता है। यह पूर्णतः उसके 'विवेक' पर छोड़ दिया गया है कि वह कानून का अनुसरण 'कब' तथा 'किस सीमा तक' करे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि **स्टेट्समैन रिपब्लिक** और **लॉज** के बीच की स्थिति है, जिससे वह **लॉज** की अपेक्षा **रिपब्लिक** के अधिक नजदीक है। सेबाइन इस व्यवस्था को भी एक संशोधन मानता है, कि आदर्श राज्य को संभावित राज्यों के 'वर्ग' से अलग कर दिया गया है। **रिपब्लिक** संबंधी मान्यताओं में यह एक सैद्धांतिक संशोधन है।

स्टेट्समैन की एक अन्य विशिष्टता प्लेटो द्वारा किया गया राज्यों का वर्गीकरण है। यह वर्गीकरण वास्तविक राज्यों तक ही सीमित है क्योंकि आदर्श राज्य को **स्टेट्समैन** में एक ऐसा आदर्श मान लिया गया है जो 'अपूर्ण' मनुष्य की पहुँच के बाहर है; यह एक "ऐसा नमूना है जो अनुकरणीय तो है किंतु प्राप्य नहीं।" (सेबाइन) यहाँ भी प्लेटो **रिपब्लिक** की व्यवस्था से कुछ हटा हुआ है। **रिपब्लिक** के 'वर्गीकरण' तथा 'परिवर्तन चक्र' में आदर्श राज्य को प्रथम स्थान प्राप्त था, अन्य सभी शासनतंत्र (धनिकतंत्र, वर्गतंत्र, लोकतंत्र तथा अत्याचारतंत्र) विकृति मात्र थे। **स्टेट्समैन** में निहित वर्गीकरण में शासन के दो प्रकार हैं : (१) विधि-सम्मत शासन (२) विधि-विहीन शासन।

यदि शासन विधि-सम्मत है तो गुणानुक्रम के आधार पर सरकार के तीन प्रकार होंगे—राज्यतंत्र, कुलीनतंत्र तथा लोकतंत्र। यदि शासन विधि-विहीन है तो सरकार के निकृष्ट प्रकार क्रमशः इस प्रकार होंगे—निरंकुश तंत्र, कुलीनतंत्र, कुप्रजातंत्र।

शासन प्रणालियाँ

	एक व्यक्ति का शासन	कुछ व्यक्तियों का शासन	अनेक व्यक्तियों का शासन
विधि-सम्मत शासन :	राजतंत्र	कुलीनतंत्र	लोकतंत्र
विधि-विहीन शासन :	निरंकुश तंत्र	कुलीनतंत्र	कुप्रजातंत्र

इस वर्गीकरण को कालांतर में अरस्तू ने अपनी **पॉलिटिक्स** में स्थान दिया था।

अनास्थावान् है बल्कि वह इसका घोर विरोधी भी है। सन् १९३६ में इटली, जर्मनी तथा जापान द्वारा की गई 'एन्टी-कामिटर्न' (कामिटर्न अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद को कहा गया है) संधि इसका एक ज्वलंत उदाहरण है।

उपरोक्त विवरण से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि प्लेटो की व्यवस्था फाँसीवाद से मौलिक रूप से भिन्न है। दोनों में किन्हीं संदर्भित समानताओं के आधार पर प्लेटो को 'प्रथम फॉसिस्ट' नही माना जा सकता।

प्रमुख संशोधन

रिपब्लिक प्लेटो की न केवल सर्वश्रेष्ठ रचना है बल्कि इसे प्लेटो की प्रतिनिधि रचना भी कहा जा सकता है। बिलडुरों ने इसे प्लेटो का 'पुस्तकीकरण' कहा है। निर्विवाद रूप से प्लेटो की **रिपब्लिक** राजनीतिशास्त्र की सर्वश्रेष्ठ रचनाओ में से है। सेबाइन ने लिखा है : "**रिपब्लिक** सर्वकालिक रचना है क्योंकि इसके सिद्धांतों की 'सामान्यता' लगभग अनत है।" जैसा कि उपरोक्त में वर्णित है, **रिपब्लिक** की रचना में प्लेटो का लक्ष्य तात्कालिक नगर-राज्यों के समक्ष एक ऐसी व्यवस्था प्रस्तुत करना था जो सभी दृष्टियो से श्रेष्ठ हो। किन्तु **रिपब्लिक** में यह श्रेष्ठता एक ऐसा 'आदर्श' बन गई है जो वास्तविक राज्यों की पहुँच के बाहर है। परिणामस्वरूप, **रिपब्लिक** में चित्रित व्यवस्था इन राज्यो का आधार न बन सकी। उसने स्वयं स्वीकार किया है: "वह नगर (आदर्श राज्य) शब्दों में ही चित्रित है, क्योंकि मेरे विचार से पृथ्वी पर यह कहीं भी नहीं है।"

किंतु यह दार्शनिक हताश होने वाला नहीं था। उसने वास्तविकताओं के संदर्भ मे अपने विचारों को क्रमशः संशोधित किया। प्रो० बार्कर ने प्लेटो की इस मान्यता को इन शब्दों में व्यक्त किया है : "अगर वह एक दार्शनिक शासक का, कानून के बिना, कानून के स्थान पर शासन कर सके, प्रशिक्षण नहीं कर सकता तो दार्शनिक स्वय कानून ही क्यों न बनाए तथा एक ऐसी दार्शनिक-न्याय संहिता की उद्घोषणा क्यो न कर दे जिसे सभी राज्य मानकर चलें।" उसके अन्य दो ग्रंथ क्रमशः **स्टेट्स्मैन** तथा **लॉज** इन्हीं विचारों को संग्रहीत करते हैं।

स्टेट्स्मैन :

प्लेटो ने अपनी मान्यताओं मे यकायक ही परिवर्तन नहीं कर डाला। उसे इस बात की जानकारी थी कि **रिपब्लिक** में चित्रित आदर्श राज्य मे कानून का निषेध एक केंद्रीय कठिनाई है। किंतु उसने 'इसे' कभी भी 'व्यवस्था' का दोष नहीं माना। यही कारण है कि अपने इन बाद के ग्रंथों मे प्लेटो का लक्ष्य एक ऐसे शासन की खोज करना था जो 'आदर्श' के समीप होने के साथ-ही-साथ व्यावहारिक भी हो। व्यावहारिकता की अपेक्षा थी कि वह 'कानून' को मान्यता दे। **स्टेट्स्मैन** में यह मान्यता दार्शनिक शासक को 'छूट' (रियायत) के रूप में दी गई है, जबकि **लॉज** में वह एक ऐसे 'उप-आदर्श राज्य' का चित्रण करता है जो कानून पर ही आधारित है।

सेबाइन ने लिखा है **रिपब्लिक** मे यह पाया गया था "किराजनता एक कलाकार है जिमे शासन करने का अधिकार इसलिए है कि केवल वही जानता है कि अच्छाई क्या है। **स्टेट्स्मैन** में इसी प्रश्न की विवेचना की गई है तथा **रिपब्लिक** की इस मान्यता को विस्तृत रूप से परिभाषित किया गया है।" उसने कहा है: "सरकार के प्रकारों में केवल वही सरकार सही तथा वास्तविक है जिसमें शासक सही अर्थो में 'ज्ञानी' हो, चाहे वे कानून के अनुसार शासन करें या बिना कानून के, चाहे जनता उन्हे चाहे या न चाहे।" स्पष्ट है, प्लेटो **स्टेट्स्मैन** में **रिपब्लिक** की अपनी इस मान्यता को पुनः दोहराता है कि न केवल विवेक का शासन ही सर्वश्रेष्ठ है बल्कि विवेक कानून से भी श्रेष्ठ है। यहाँ प्लेटो का एक मात्र संशोधन शासक या राजनेता को दी गई यह रियायत है कि वह यदि चाहे तो कानून का अनुसरण कर सकता है, किंतु कानून का अनुसरण करने के लिए न तो वह बाध्य है और न इसके लिए उसे बाध्य ही किया जा सकता है। यह पूर्णतः उसके 'विवेक' पर छोड़ दिया गया है कि वह कानून का अनुसरण 'कब' तथा 'किस सीमा तक' करे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि **स्टेट्स्मैन रिपब्लिक** और **लॉज** के बीच की स्थिति है, जिससे वह **लॉज** की अपेक्षा **रिपब्लिक** के अधिक नजदीक है। सेबाइन इस व्यवस्था को भी एक संशोधन मानता है, कि आदर्श राज्य को संभावित राज्यो के 'वर्ग' से अलग कर दिया गया है। **रिपब्लिक** संबंधी मान्यताओं में यह एक सैद्धांतिक संशोधन है।

स्टेट्स्मैन की एक अन्य विशिष्टता प्लेटो द्वारा किया गया राज्यों का वर्गीकरण है। यह वर्गीकरण वास्तविक राज्यों तक ही सीमित है क्योंकि आदर्श राज्य को **स्टेट्स्मैन** में एक ऐसा आदर्श मान लिया गया है जो 'अपूर्ण' मनुष्य की पहुँच के बाहर है; यह एक "ऐसा नमूना है जो अनुकरणीय तो है किंतु प्राप्य नहीं।" (सेबाइन) यहाँ भी प्लेटो **रिपब्लिक** की व्यवस्था से कुछ हटा हुआ है। **रिपब्लिक** के 'वर्गीकरण' तथा 'परिवर्तन चक्र' में आदर्श राज्य को प्रथम स्थान प्राप्त था, अन्य सभी शासनतंत्र (धनिकतंत्र, वर्गतंत्र, लोकतंत्र तथा अत्याचारतंत्र) विकृति मात्र थे। **स्टेट्स्मैन** में निहित वर्गीकरण मे शासन के दो प्रकार हैं: (१) विधि-सम्मत शासन (२) विधि-विहीन शासन।

यदि शासन विधि-सम्मत है तो गुणानुक्रम के आधार पर सरकार के तीन प्रकार होंगे—राज्यतंत्र, कुलीनतंत्र तथा लोकतंत्र। यदि शासन विधि-विहीन है तो सरकार के निकृष्ट प्रकार क्रमशः इस प्रकार होंगे—निरंकुश तंत्र, कुलीनतत्र, कुप्रजातंत्र।

शासन प्रणालियाँ

	एक व्यक्ति का शासन	**कुछ व्यक्तियों का शासन**	**अनेक व्यक्तियों का शासन**
विधि-सम्मत शासन :	राजतंत्र	कुलीनतंत्र	लोकतंत्र
विधि-विहीन शासन :	निरंकुश तंत्र	कुलीनतंत्र	कुप्रजातंत्र

इस वर्गीकरण को कालांतर में **अरस्तू** ने अपनी **पॉलिटिक्स** में स्थान दिया था।

यह वर्गीकरण एक और महत्त्वपूर्ण संशोधन को स्पष्ट करता है : 'प्रजातंत्र' को **रिपब्लिक** की तुलना में कहीं अधिक विशिष्ट स्थान (**स्टेट्समैन में**) प्रदान किया गया है। प्लेटो ने इसे विधि-विहीन शासनों मे सर्वश्रेष्ठ शासन स्वीकार किया है, यद्यपि विधि-सम्मत राज्यों मे यह एक निकृष्टतम शासन है। कानून के संदर्भ में प्लेटो की इन अपेक्षाकृत संशोधित मान्यताओं ने **लॉज** मे एक निश्चित स्वरूप धारण कर लिया है जहाँ वह अपने 'उप-आदर्श राज्य' का चित्रण करता है

लॉज :

रिपब्लिक में प्लेटो का लक्ष्य 'आदर्श राज्य' था, तो **लॉज** मे उसका लक्ष्य 'वास्तविक राज्य' है। यहाँ समस्या का संबंध (इन) राज्यों के उत्कर्ष तथा विकर्ष और उनके वास्तविक कारणो से है। यह ध्यान मे रखना अति आवश्यक है कि प्लेटो अपनी आदर्श राज्य-विषयक धारणा में (जिसका चित्रण उसने **रिपब्लिक** में किया था) अभी भी आस्थावान् था। साथ ही, इस संबंध में भी वह पूर्ण विश्वस्त था कि ऐसा आदर्श प्राप्य नहीं, इसलिए वह अपने अंतिम (यह प्लेटो की मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ था) महत्त्वपूर्ण ग्रंथ **लॉज** में एक ऐसे राज्य का चित्रण करता है जो प्राप्त किया जा सकता है। प्लेटो स्वयं इसे 'उप-आदर्श राज्य' कहता है। इस राज्य में कानून को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। शासक तथा शासित दोनों ही कानून के ऊपर है, न कि कानून के परे।

कानूनों के संहिताकरण, उनके परिपालन तथा उनके उल्लंघन पर दण्ड आदि की विस्तृत चर्चा भी **लॉज** मे की गई है। किंतु प्लेटो का विश्वास था कि नागरिक स्वेच्छा से ही कानूनो का पालन करेंगे, क्योंकि कानून उसका 'विवेक' ही है जो उन्हे उन्हीं कार्यों के करने की प्रेरणा देगा जो कि अपेक्षित हैं। साथ ही, 'न्याय' के स्थान पर प्लेटो व्यक्तियों में जिस आत्मसंयम के गुण की प्रधानता मानता है, वह भी इस प्रेरणा को बल देगा। 'आत्मसंयम' से प्लेटो का तात्पर्य था, "कानून पालन का व्यवहार अथवा राज्य की संस्थाओं के प्रति सम्मान की भावना तथा उसकी कानूनी शक्तियों के समक्ष अधीनता की स्वीकारोक्ति।"

प्लेटो ने **लॉज** में राज्य तथा शासन के सभी सम्बद्ध पक्षों की विस्तृत चर्चा की है। उसका कथन था कि समुद्र से समीपता राज्य के लिए आवश्यक नहीं, क्योंकि विदेशी व्यापार राज्यों मे भ्रष्टाचार का कारण बन जाते हैं। राज्य की जनसंख्या इतनी हो कि राज्य आत्मनिर्भर हो सके। राज्य की जनसंख्या उसने ५०४० बतलाई है। यदि जनता की जाति एक हो, वह एक ही भाषा-भाषी हो, एक ही धर्म का पालन करने वाली हो तथा जिसकी वैधानिक मान्यताएँ समान हों तो अति उत्तम है। विभिन्नताएँ जितनी कम होंगी, राज्य की एकता उतनी ही दृढ़ एवं बलवती होगी।

उप-आदर्श राज्य व्यवस्था में प्लेटो शिक्षा को कम महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं प्रदान करता। **रिपब्लिक** मे शिक्षा का लक्ष्य श्रेष्ठ शासक का निर्माण था। अब लक्ष्य यह है, 'शासक तथा शासित दोनों वर्गों को अपने-अपने निर्धारित क्षेत्रों मे क्रमश शासक होने

तथा शासित होने की क्षमता प्रदान करना दूसरे शब्दों में लाज में शिक्षा का उद्देश्य आत्मसंयम के आधारभूत मौलिक लक्षण का विकास करना है। अतः यहां (लाज में) न तो शासक उपेक्षित है और न शासित। शिक्षा अभी भी राज्य नियंत्रण में है तथा पाठ्य-क्रम में 'तन' और 'मन' दोनों को ही समान महत्त्व दिया गया है। यही नहीं, स्त्रियों एवं पुरुषों में समानता के सिद्धांत को भी स्वीकार किया गया है।

रिपब्लिक की तुलना में **लॉज** में संरक्षक वर्ग ज्यादा सुखी एवं प्रसन्न है, क्योंकि व्यक्तिगत परिवार एवं व्यक्तिगत संपत्ति के अधिकार उन्हें प्राप्त है, यद्यपि 'परिवार' एवं 'संपत्ति' दोनों के ही संबंध में उसने कुछ नियंत्रण एवं सीमाएँ निर्धारित की हैं। उदाहरण के लिए, विवाह को उसने अनिवार्य कर दिया है, किंतु विवाह का लक्ष्य भोग-विलास न होकर राज्य की सेवा के लिए योग्य संतान की उत्पत्ति ही है। व्यक्तिगत संपत्ति का अधिकार प्रदान किया गया है, किंतु अधिकतम संपत्ति की सीमा भी निर्धारित है। इसका उद्देश्य राज्य में अत्यधिक आर्थिक विषमता को पनपने से रोकना था। संपत्ति के उपयोग पर भी अनेकानेक प्रतिबंधों की व्यवस्था है।

लॉज में शासनतंत्र का भी विस्तृत विवरण दिया गया है। शासनतंत्र की यह व्यवस्थाएँ लगभग वही है जिनसे यूनानी नागरिक परिचित थे। यह थी : नगर-राज्य-सभा काउंसिल तथा कानून के संरक्षक शासनतंत्र की इस समूची व्यवस्था का आधार। प्लेटो की यह मान्यता थी कि शासन व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो 'अति राज्यतंत्र' और 'अति लोकतंत्र' दोनों के ही दोषों से मुक्त हो। अत्याचारी शासक की शक्ति पर नियंत्रण होना चाहिए और साथ-ही-साथ इस बात का भी ध्यान रखा जाए कि लोकतंत्र की स्व-तंत्रता अराजकता का रूप धारण न कर ले। प्रत्येक नागरिक को शासन के काम में कुछ-न-कुछ भागीदारी दी जाए, किंतु उसके दायित्व का अनुपात उसकी योग्यता के आधार पर निश्चित किया जाए। गैटिल ने लिखा है : "**लॉज** में प्लेटो ने प्रशासन व्यवस्था के ब्यौरे का सविस्तार विवरण दिया है, जिसमें लोकतंत्रीय और अभिजाततंत्रीय तत्त्वों का समन्वय और नियंत्रण तथा संतुलन की विशद व्यवस्था है। आगे चलकर प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने संतुलित और सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था के इस सिद्धांत को ही अपने ग्रंथ **पॉलिटिक्स** की आधारशिला बनाया।"

अरस्तू

२

[ARISTOTLE]

[ई० पू० ३८४—३२२]

"राजनीतिक दर्शन के इतिहास में शब्दकोशीय रोचकता एवं परिपूर्णता मे अरस्तू से कोई अन्य बाजी नहीं मार पाया है।"

—विलियम ईवन्सटीन

अरस्तू : एक दृष्टि—

१. **सामान्य परिचय**—(i) स्थान : स्टेजिरा (यूनानी उपनिवेशीय नगर), मेसीडोनिया तट पर, (ii) जन्म : ई० पू० ३८४, (iii) मृत्यु : ई० पू० ३२२।

२. **प्रमुख रचनाएँ**—गणित को छोड़कर लगभग सभी विषयों पर साधिकार लिखा; ग्रंथों की संख्या लगभग ४००; राजनीतिक दर्शन पर दो प्रमुख ग्रंथ : (i) **पॉलिटिक्स**, (ii) **कॉन्स्टीट्यूशन्स**।

"कानून की सर्वोच्चता एवं संवैधानिक शासन की वांछनीयता में विश्वास अरस्तू की उन अभिधारणाओं में से एक है जिसके लिए उसे सबसे अधिक याद किया जाता है और जिसके लिए बाद की पीढ़ियाँ उसकी सबसे अधिक ऋणी हैं।"

—*प्रो० आर० जी० गैटिल*

सामान्य परिचय—राजनीतिक दर्शन के इतिहास में यूनान को केंद्रीय महत्त्व प्राप्त है। यूनान ने विश्व को सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तू के रूप में तीन महान् चिंतक एवं दार्शनिक दिए हैं। इनके चिंतन का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है। मानव जीवन एवं प्रकृति विज्ञान का शायद ही कोई ऐसा पक्ष बचा हो जो इस चिंतन की परिधि से बाहर हो। मैक्सी इन्हें 'यूनानी दर्शन के दिग्गज' कहता है। प्लेटो की चर्चा हम कर चुके हैं। जहाँ तक उसके शिष्य अरस्तू का प्रश्न है वह अपने महान् गुरु से किसी भी रूप में कम नहीं। राजनीतिक दर्शन के लेखकों ने अरस्तू को 'प्रथम राजनीतिक वैज्ञानिक'

(First Political Scientist) तथा 'जानकारों में प्रमुख' (Master of them that know) आदि की संज्ञा दी है। फॉस्टर ने तो यहाँ तक कहा है कि "मानव इतिहास में बौद्धिक सिद्धि के विस्तार अथवा बाद में प्रभाव की सीमा में संभवतः उसका कोई अन्य समकक्ष नहीं है।"

अरस्तू का जन्म थ्रेस के स्टेजिरा (Stagira) नामक नगर में ई० पू० ३८४ में हुआ था। यह मैसीडोनियन तट पर यूनान का एक औपनिवेशक नगर था जो एथेन्स के लगभग २०० मील उत्तर मे स्थित था। स्पष्ट है, अरस्तू एथेन्स का मूल निवासी नहीं था। अरस्तू के पिता का नाम निकोमॉकस (Nichomachus) था। उसकी माँ फीसिस (Phoesis) चालसिस (Chalcis) की मूल निवासी थी। अरस्तू का विवाह अतार्नेयस (Atarneus) के शासक हॅरमियास (Hermeias) की भांजी एवं दत्तक पुत्री पीथियास (Pythias) के साथ हुआ था।

ई० पू० ३६७ से पहले (अर्थात् उसके जीवन के प्रथम १७ वर्ष) की गतिविधियों की जानकारी उपलब्ध नहीं है। प्रो० गैंटिल ने लिखा है कि "उसके यौवन के संबंध में निश्चित रूप से बहुत कम जानकारी उपलब्ध है।" १७ वर्ष की आयु में अरस्तू ने प्लेटो की 'अकादमी' (जो निर्विवाद रूप से यूनान में उच्चतर शिक्षा एवं ज्ञान का एकमात्र केंद्र था) मे प्रवेश लिया और ई० पू० ३४७ तक (अर्थात् २० वर्ष तक) वहाँ रहा। संभव है अरस्तू अकादमी को न छोड़ता यदि इसी वर्ष (ई० पू० ३४७) प्लेटो की मृत्यु न हो गई होती। साथ ही, अरस्तू प्लेटो के उत्तराधिकारी के रूप में अकादमी का अधिष्ठाता[1] बनना चाहता था। बीस लंबे वर्षों तक अकादमी का सदस्य रहने और प्लेटो का सबसे प्रिय एवं प्रतिभावान शिष्य होने के कारण अरस्तू की यह धारणा अस्वाभाविक नहीं थी। किंतु यह सम्मान प्लेटो के भतीजे स्पेउसिप्पस (Speusipus) को प्राप्त हुआ। अरस्तू को एथेन्स छोड़ देना पड़ा।

ई० पू० ३४७ से ई० पू० ३३५ का काल अरस्तू के जीवन का कम महत्त्वपूर्ण काल नहीं रहा। इस अवधि में उसने अनेक देशों का भ्रमण किया और किसी-न-किसी रूप में संबद्ध होकर इन देशों की राजनीतिक संस्थाओं का समीप से अध्ययन किया। ई० पू० ३४२ तक वह अतार्नेयस के अत्याचारी शासक हॅरमियास के यहाँ चिकित्सक एवं शिक्षक के रूप मे रहा। यहीं अरस्तू का विवाह हुआ। हॅरमियस की मृत्यु के उपरांत वह मेसीडॉन के सम्राट् फिलिप के पुत्र एलेक्जेंडर का व्यक्तिगत शिक्षक नियुक्त हुआ। अरस्तू के इसी शिष्य को कालांतर में विश्व ने 'सिकंदर महान' के रूप में जाना। इस पद पर अरस्तू ई० पू० ३४३ से ई० पू० ३४० तक रहा।[2]

ई० पू० ३३५ में अरस्तू पुनः एथेन्स आया और लीसियम (Lyceum) नामक अपनी विद्यापीठ की स्थापना की। यहाँ अरस्तू लगभग २० वर्ष रहा और अनेक महत्त्व-पूर्ण ग्रंथों का निर्माण किया। ई० पू० ३२३ में सिकंदर महान् की मृत्यु के उपरांत एथेन्स का वातावरण इस महान् सम्राट् के सभी हितैषियों के खिलाफ कटुता का बन गया

---

१. सी० सी० मैक्सी : पोलिटीकल फिलॉसफीज; पृ० ५८
२. टी० ए० सिंक्लेयर : यूनानी राजनीतिक विचारधारा; पृ० २८०

२

अरस्तू

[ARISTOTLE]

[ई० पू० ३८४—३२२]

"राजनीतिक दर्शन के इतिहास में शब्दकोशीय रोचकता एवं परिपूर्णता में अरस्तू से कोई अन्य बाजी नही मार पाया है।"

—विलियम ईवन्सटीन

अरस्तू : एक दृष्टि—

१. **सामान्य परिचय**—(i) स्थान : स्टेजिरा (यूनानी उपनिवेशीय नगर), मैसीडोनियन तट पर, (ii) जन्म : ई० पू० ३८४, (iii) मृत्यु : ई० पू० ३२२।

२. **प्रमुख रचनाएँ**—गणित को छोडकर लगभग सभी विषयों पर साधिकार लिखा; ग्रंथों की संख्या लगभग ४००; राजनीतिक दर्शन पर दो प्रमुख ग्रंथ : (i) **पॉलिटिक्स**, (ii) **कॉन्स्टीट्यूशन्स**।

"कानून की सर्वोच्चता एवं संवैधानिक शासन की वांछनीयता में विश्वास अरस्तू की उन अभिधारणाओं में से एक है जिसके लिए उसे सबसे अधिक याद किया जाता है और जिसके लिए बाद की पीढ़ियाँ उसकी सबसे अधिक ऋणी हैं।"

—*प्रो० आर० जी० गैटिल*

सामान्य परिचय—राजनीतिक दर्शन के इतिहास में यूनान को केंद्रीय महत्त्व प्राप्त है। यूनान ने विश्व को सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तू के रूप में तीन महान् चिंतक एवं दार्शनिक दिए है। इनके चिंतन का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है। मानव जीवन एवं प्रकृति विज्ञान का शायद ही कोई ऐसा पक्ष बचा हो जो इस चिंतन की परिधि से बाहर हो। मैक्सी इन्हें 'यूनानी दर्शन के दिग्गज' कहता है। प्लेटो की चर्चा हम कर चुके हैं। जहाँ तक उसके शिष्य अरस्तू का प्रश्न है वह अपने महान् गुरू से किसी भी रूप में कम नहीं दर्शन के लेखकों ने अरस्तू को प्रथम वैज्ञानिक

(First Political Scientist) तथा 'जानकारों में प्रमुख' (Master of them that know) आदि की संज्ञा दी है। फॉस्टर ने तो यहाँ तक कहा है कि "मानव इतिहास मे बौद्धिक सिद्धि के विस्तार अथवा बाद मे प्रभाव की सीमा में संभवतः उसका कोई अन्य समकक्ष नहीं है।"

अरस्तू का जन्म थ्रेस के स्टेजिरा (Stagira) नामक नगर मे ई० पू० ३८४ मे हुआ था। यह मैसीडोनियन तट पर यूनान का एक औपनिवेशक नगर था जो एथेन्स के लगभग २०० मील उत्तर मे स्थित था। स्पष्ट है, अरस्तू एथेन्स का मूल निवासी नहीं था। अरस्तू के पिता का नाम निकोमॉकस (Nichomachus) था। उसकी माँ फीसिस (Phoesis) चालसिस (Chalcis) की मूल निवासी थी। अरस्तू का विवाह अतार्नेयस (Atarneus) के शासक हॅरमियास (Hermeias) की भांजी एवं दत्तक पुत्री पीथियास (Pythias) के साथ हुआ था।

ई० पू० ३६७ से पहले (अर्थात् उसके जीवन के प्रथम १७ वर्ष) की गतिविधियो की जानकारी उपलब्ध नहीं है। प्रो० गैटिल ने लिखा है कि "उसके यौवन के संबंध मे निश्चित रूप से बहुत कम जानकारी उपलब्ध है।" १७ वर्ष की आयु में अरस्तू ने प्लेटो की 'अकादमी' (जो निर्विवाद रूप से यूनान में उच्चतर शिक्षा एवं ज्ञान का एकमात्र केंद्र था) में प्रवेश लिया और ई० पू० ३४७ तक (अर्थात् २० वर्ष तक) वहाँ रहा। संभव है अरस्तू अकादमी को न छोड़ता यदि इसी वर्ष (ई० पू० ३४७) प्लेटो की मृत्यु न हो गई होती। साथ ही, अरस्तू प्लेटो के उत्तराधिकारी के रूप में अकादमी का अधिष्ठाता[1] बनना चाहता था। बीस लंबे वर्षों तक अकादमी का सदस्य रहने और प्लेटो का सबसे प्रिय एवं प्रतिभावान शिष्य होने के कारण अरस्तू की यह धारणा अस्वाभाविक नहीं थी। किंतु यह सम्मान प्लेटो के भतीजे स्पेउसिप्पस (Speusipus) को प्राप्त हुआ। अरस्तू को एथेन्स छोड़ देना पड़ा।

ई० पू० ३४७ से ई० पू० ३३५ का काल अरस्तू के जीवन का कम महत्त्वपूर्ण काल नही रहा। इस अवधि में उसने अनेक देशों का भ्रमण किया और किसी-न-किसी रूप में संबद्ध होकर इन देशों की राजनीतिक संस्थाओं का समीप से अध्ययन किया। ई० पू० ३४२ तक वह अतार्नेयस के अत्याचारी शासक हॅरमियास के यहाँ चिकित्सक एव शिक्षक के रूप में रहा। यहीं अरस्तू का विवाह हुआ। हॅरमियस की मृत्यु के उपरात वह मेसीडॉन के सम्राट् फिलिप के पुत्र एलेक्जेंडर का व्यक्तिगत शिक्षक नियुक्त हुआ। अरस्तू के इसी शिष्य को कालांतर मे विश्व ने 'सिकंदर महान' के रूप में जाना। इस पद पर अरस्तू ई० पू० ३४३ से ई० पू० ३४० तक रहा।[2]

ई० पू० ३३५ में अरस्तू पुनः एथेन्स आया और लीसियम (Lyceum) नामक अपनी विद्यापीठ की स्थापना की। यहाँ अरस्तू लगभग २० वर्ष रहा और अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का निर्माण किया। ई० पू० ३२३ में सिकंदर महान् की मृत्यु के उपरांत एथेन्स का वातावरण इस महान् सम्राट् के सभी हितैषियों के खिलाफ कटुता का बन गया

१. सी० सी० मैक्सी : पोलिटीकल फिलॉसफीज; पृ० ५८
२ टी० ए० सिक्लेयर यूनानी पृ० २८०

और अरस्तू इनमें एक था। परिणामस्वरूप अरस्तू को एथेन्स छोड़ देना पड़ा और यूबोआ (Euboea) द्वीप के चालसिस (Chalcis) नगर में (अरस्तू की माँ इसी राज्य की मूल निवासी थी) शरण ली, जहाँ अगले ही वर्ष (ई० पू० ३२२ में) ६२ वर्ष की आयु में इस महान् दार्शनिक की मृत्यु हो गई।

प्रमुख रचनाएँ- –प्रोफेसर फॉस्टर ने लिखा है : "अरस्तू की महानता उसके जीवन में नहीं बल्कि उसकी रचनाओं मे प्रदर्शित होती है। गणित को छोड़कर ज्ञान के लगभग प्रत्येक क्षेत्र का वह एकछत्र स्वामी था।" उसके ज्ञान के विस्तार को देखकर ऐसा लगता है कि उसके मस्तिष्क की विशालता का मुकाबला शायद कोई कभी नहीं कर पाया है। शताब्दियों तक तर्कशास्त्र, भौतिकी, मनोविज्ञान, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, कला कविता, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि में अरस्तू 'अंतिम शब्द' माना जाता रहा है। उसकी जानकारी इतनी गहन, विस्तृत एवं परिपूर्ण थी, उसकी दृष्टि इतनी पैनी एवं गहरी थी उसके निष्कर्ष इतने तार्किक थे कि वह लगभग 'सर्वज्ञाता' बन गया था।

अरस्तू की रचनाएँ 'सैकड़ों' में हैं। कुछ लेखकों के अनुसार इनकी संख्या ४०० के लगभग है। कृतियों की संख्या और विषयो की विविधता के संदर्भ में यह अपने-आप में एक पुस्तकालय से कम नहीं। प्रस्तुत संदर्भ में हमारा सबंध उसकी राजनीति विज्ञान तथा राजनीतिक दर्शन की कृतियों से ही है। कुछ टिप्पणीकारों का मत है कि यही कृतियाँ अरस्तू की श्रेष्ठतम कृतियाँ हैं। संभव है इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति हो, किंतु यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि इन कृतियों ने उसे 'राजनीतिकशास्त्र का जनक' बना दिया है। प्रमुखतः यह कृतियाँ है—

१. **कॉन्स्टीट्यूशन्स** (Constitutions)
२. **पॉलिटिक्स** (Politics)

कॉन्स्टीट्यूशन्स अरस्तू के लगभग १५० संविधानों के अध्ययन एवं सूक्ष्म परीक्षण का निचोड़ है। यह पुस्तक आज अप्राप्य है। इससे स्पष्ट है कि अरस्तू ने शासनों का अध्ययन ऐतिहासिक एवं समकालीन कार्यविधि दोनों के ही संदर्भों में किया था। किंतु **पॉलिटिक्स** निश्चित रूप से अरस्तू की श्रेष्ठतम कृति मानी जाती है। जैगर ने इसे "प्राचीन युग से प्राप्त समृद्धतम निधि" कहा है। इस ग्रंथ की रचना मे अरस्तू ने **कॉन्स्टीट्यूशन्स** से बहुत-कुछ लिया है। यह ग्रंथ (**पॉलिटिक्स**) आठ पुस्तकों में विभक्त है। इस ग्रंथ को लगभग १५ वर्षों में पूरा किया गया था। बर्नर जैगर जैसे विद्वानों की धारणा है कि इस ग्रंथ को दो बार मे लिखा गया है : प्रथम में वह अपने महान् गुरु प्लेटो के दर्शन से प्रभावित था और उसके **स्टेट्समैन** तथा **लॉज** के विचारों के आधारों पर आदर्श राज्य का चित्रण करना चाहता था। यहाँ उसकी मान्यता है कि श्रेष्ठ व्यक्ति तथा श्रेष्ठ नागरिक एक ही चीज है। अतः राज्य का उद्देश्य श्रेष्ठ नागरिकों का निर्माण करना है। अरस्तू के विचार **पॉलिटिक्स** की पुस्तक दो, तीन, सात और आठ मे निहित हैं। जैगर के अनुसार इन पुस्तकों की रचना प्लेटो की मृत्यु के उपरांत अरस्तू द्वारा एथेन्स छोड़ने के लगभग उपरात की है। दूसरे में पूर्णतः व्यावहारिक बनकर अरस्तू ने वास्तविक राज्यों की समस्याओं पर विचार किया है विभिन्न

सिद्धांतों का व्यावहारिक रूप किस प्रकार तथा क्यों बनता है ? विभिन्न शासनों में क्रांतियों के क्या कारण है ? क्रांतियों का निराकरण किस प्रकार किया जा सकता है ? किन उपायों द्वारा प्रजातंत्र तथा कुलीनतंत्र शासन स्थायी आधार पर गठित किए जा सकते हैं ? इन तथा ऐसी ही अन्य समस्याओं पर पुस्तक ४, ५, तथा ६ में तटस्थ दृष्टि से विचार किया गया है। यहाँ अरस्तू एक वैज्ञानिक की भाँति किसी नए दर्शन का प्रतिपादक न होकर केवल पूर्व से ही निवर्तमान ज्ञान का क्रमबद्ध ढंग से विवेचन एवं विश्लेषण करता है। उसकी विचार पद्धति तार्किक एवं वैज्ञानिक है, जिसका आधार वास्तविक तथ्य हैं जिन्हें उसने अनेकानेक स्रोतों से एकत्रित किया था। यह कथन पूर्णतया सही प्रतीत होता है कि "जहाँ प्लेटो एथेन्स की व्यावहारिक राजनीति से परेशान होकर आदर्श राज्य का निर्माण करता है वहाँ अरस्तू प्लेटो के आदर्श राज्य की धारणाओं से परेशान होकर पुनः व्यावहारिक राजनीति की ओर मुड़ता है, जिसकी पद्धति प्रायोगिक है।" जैगर के अनुसार इन पुस्तकों का रचनाकाल 'लीसियम' (विद्यापीठ) की स्थापना के उपरांत का है ; पुस्तक प्रथम की रचना सबसे अंत में की गई प्रतीत होती है।

प्रोफेसर आर० जी० गैटिल ने लिखा है : "यह सत्य है कि अरस्तू इस धारणा से पूर्ण मुक्ति न पा सका कि निरपेक्ष विज्ञान के रूप में राजनीति का लक्ष्य व्यक्ति का परम कल्याण है। **पॉलिटिक्स** की पुस्तक २, ३, ७, और ८ में इस मत की पुष्टि होती है, किंतु जैसे-जैसे उसकी आयु बढ़ती गई और वह प्लेटो के विचारों से दूर होता गया वैसे-वैसे वह इस प्रकार के अध्ययन को छोड़कर वास्तविक राज्यों के कार्यों तथा उनको अनुप्राणित करने वाली शक्तियों के विश्लेषण में अधिक दिलचस्पी लेने लगा। इसी में उसकी प्रतिभा का असली रूप प्रकट हुआ।"

रचना शैली एवं पद्धति—अरस्तू ने प्लेटो के समान ही 'प्रश्नोत्तर' प्रणाली या 'कथोपकथन' प्रणाली का सहारा लिया है। वह स्वयं प्रश्न करता है और स्वयं ही उसका उत्तर देता है। इस प्रणाली को अपनाने का एकमात्र कारण अरस्तू की (प्लेटो के समान ही) यह मान्यता थी कि दार्शनिक के प्रधान लक्ष्य, सत्य की खोज, के लिए एकमात्र यही प्रणाली उपयुक्त है। मैन्टर ने इस आशय की पुष्टि में लिखा है : "वाद-विवाद के रूप में लिखे गए संवाद दर्शन सत्य के निरंतर अन्वेषण से परिपूर्ण है और बौद्धिक उधेड़-बुन के संचलित अभिनय है।" प्लेटो के समान ही अरस्तू राज्य तथा समाज के संबंध में सावयवी (organic) दृष्टिकोण लेकर चलता है। वह व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में मान्यता नहीं देता। वह उसे समाज और राज्य का एक अभिन्न अंग मानता है। उसके लिए राज्य अथवा समाज से पृथक् व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं था।

राजनीतिशास्त्र के लिए अरस्तू की सबसे महत्त्वपूर्ण एवं मौलिक देन यह है कि अपने अध्ययन में उसने 'आगमन पद्धति' या 'वैज्ञानिक पद्धति' को अपनाया है। समस्याओं के वैज्ञानिक विश्लेषण के प्रति झुकाव का मूल कारण उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि ही थी। प्रोफेसर बार्कर ने इस पद्धति की मीमांसा करते हुए लिखा है : "इस अध्ययन विधि का सार था निरीक्षण करना तथा संबंधित सभी आंकड़े एकत्रित करना और इस अध्ययन का उद्देश्य था प्रत्येक विषय में किसी सामान्य सिद्धांत को खोज निकालना।" संविधान

और अरस्तू इनमे एक था। परिणामस्वरूप अरस्तू को एथेन्स छोड़ देना पड़ा और यूबोआ (Euboea) द्वीप के चालसिस (Chalcis) नगर में (अरस्तू की माँ इसी राज्य की मूल निवासी थी) शरण ली, जहाँ अगले ही वर्ष (ई० पू० ३२२ में) ६२ वर्ष की आयु में इस महान् दार्शनिक की मृत्यु हो गई।

प्रमुख रचनाएँ- --प्रोफेसर फॉस्टर ने लिखा है : "अरस्तू की महानता उसके जीवन में नहीं बल्कि उसकी रचनाओं मे प्रदर्शित होती है। गणित को छोड़कर ज्ञान के लगभग प्रत्येक क्षेत्र का वह एकछत्र स्वामी था।" उसके ज्ञान के विस्तार को देखकर ऐसा लगता है कि उसके मस्तिष्क की विशालता का मुकाबला शायद कोई कभी नहीं कर पाया है। शताब्दियों तक तर्कशास्त्र, भौतिकी, मनोविज्ञान, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, कला, कविता, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि में अरस्तू 'अंतिम शब्द' माना जाता रहा है। उसकी जानकारी इतनी गहन, विस्तृत एवं परिपूर्ण थी, उसकी दृष्टि इतनी पैनी एवं गहरी थी, उसके निष्कर्ष इतने तार्किक थे कि वह लगभग 'सर्वज्ञाता' बन गया था।

अरस्तू की रचनाएँ 'सैकड़ो' मे हैं। कुछ लेखकों के अनुसार इनकी संख्या ४०० के लगभग है। कृतियों की संख्या और विषयों की विविधता के संदर्भ में यह अपने-आप-में एक पुस्तकालय से कम नहीं। प्रस्तुत संदर्भ में हमारा संबंध उसकी राजनीति विज्ञान तथा राजनीतिक दर्शन की कृतियों से ही है। कुछ टिप्पणीकारों का मत है कि यही कृतियाँ अरस्तू की श्रेष्ठतम कृतियाँ हैं। संभव है इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति हो, किंतु यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि इन कृतियों ने उसे 'राजनीतिकशास्त्र का जनक' बना दिया है। प्रमुखतः यह कृतियाँ हैं—

१. **कॉन्स्टीट्यूशन्स** (Constitutions)
२. **पॉलिटिक्स** (Politics)

कॉन्स्टीट्यूशन्स अरस्तू के लगभग १५० संविधानों के अध्ययन एवं सूक्ष्म परीक्षण का निचोड़ है। यह पुस्तक आज अप्राप्य है। इससे स्पष्ट है कि अरस्तू ने शासनों का अध्ययन ऐतिहासिक एवं समकालीन कार्यविधि दोनों के ही संदर्भों में किया था। किंतु **पॉलिटिक्स** निश्चित रूप से अरस्तू की श्रेष्ठतम कृति मानी जाती है। जैगर ने इसे "प्राचीन युग से प्राप्त समृद्धतम निधि" कहा है। इस ग्रंथ की रचना में अरस्तू ने **कॉन्स्टीट्यूशन्स** से बहुत-कुछ लिया है। यह ग्रंथ (**पॉलिटिक्स**) आठ पुस्तकों में विभक्त है। इस ग्रंथ को लगभग १५ वर्षों में पूरा किया गया था। वर्नर जैगर जैसे विद्वानों की धारणा है कि इस ग्रंथ को दो बार में लिखा गया है : प्रथम में वह अपने महान् गुरु प्लेटो के दर्शन से प्रभावित था और उसके **स्टेट्समैन** तथा **लॉज** के विचारों के आधारों पर आदर्श राज्य का चित्रण करना चाहता था। यहाँ उसकी मान्यता है कि श्रेष्ठ व्यक्ति तथा श्रेष्ठ नागरिक एक ही चीज है। अतः राज्य का उद्देश्य श्रेष्ठ नागरिकों का निर्माण करना है। अरस्तू के विचार **पॉलिटिक्स** की पुस्तक दो, तीन, सात और आठ मे निहित है। जैगर के अनुसार इन पुस्तकों की रचना प्लेटो की मृत्यु के उपरांत अरस्तू द्वारा एथेन्स छोड़ने के लगभग उपरांत की है। दूसरे में पूर्णतः व्यावहारिक बनकर अरस्तू ने वास्तविक राज्यों की समस्याओं पर विचार किया है। विभिन्न

सिद्धांतों का व्यावहारिक रूप किस प्रकार तथा क्या बनता है ? विभिन्न शासनों में क्रांतियों के क्या कारण हैं ? क्रांतियों का निराकरण किस प्रकार किया जा सकता है ? किन उपायों द्वारा प्रजातंत्र तथा कुलीनतंत्र शासन स्थायी आधार पर गठित किए जा सकते हैं ? इन तथा ऐसी ही अन्य समस्याओं पर पुस्तक ४, ५, तथा ६ में तटस्थ दृष्टि से विचार किया गया है। यहाँ अरस्तू एक वैज्ञानिक की भाँति किसी नए दर्शन का प्रतिपादक न होकर केवल पूर्व से ही विद्यमान ज्ञान का क्रमबद्ध ढंग से विवेचन एवं विश्लेषण करता है। उसकी विचार पद्धति तार्किक एवं वैज्ञानिक है, जिसका आधार वास्तविक तथ्य है जिन्हें उसने अनेकानेक स्रोतों से एकत्रित किया था। यह कथन पूर्णतया सही प्रतीत होता है कि "जहाँ प्लेटो एथेन्स की व्यावहारिक राजनीति से परेशान होकर आदर्श राज्य का निर्माण करता है वहाँ अरस्तू प्लेटो के आदर्श राज्य की धारणाओं से परेशान होकर पुनः व्यावहारिक राजनीति की ओर मुड़ता है, जिसकी पद्धति प्रायोगिक है।" जैगर के अनुसार इन पुस्तकों का रचनाकाल 'लीसियम' (विद्यापीठ) की स्थापना के उपरांत का है; पुस्तक प्रथम की रचना सबसे अंत में की गई प्रतीत होती है।

प्रोफेसर आर० जी० गैटिल ने लिखा है : "यह सत्य है कि अरस्तू इस धारणा से पूर्ण मुक्ति न पा सका कि निरपेक्ष विज्ञान के रूप में राजनीति का लक्ष्य व्यक्ति का परम कल्याण है। **पॉलिटिक्स** की पुस्तक २, ३, ७, और ८ में इस मत की पुष्टि होती है, किंतु जैसे-जैसे उसकी आयु बढ़ती गई और वह प्लेटो के विचारों से दूर होता गया वैसे-वैसे वह इस प्रकार के अध्ययन को छोड़कर वास्तविक राज्यों के कार्यों तथा उनको अनुप्राणित करने वाली शक्तियों के विश्लेषण में अधिक दिलचस्पी लेने लगा। इसी में उसकी प्रतिभा का असली रूप प्रकट हुआ।"

रचना शैली एवं पद्धति—अरस्तू ने प्लेटो के समान ही 'प्रश्नोत्तर' प्रणाली या 'कथोपकथन' प्रणाली का सहारा लिया है। वह स्वयं प्रश्न करता है और स्वयं ही उसका उत्तर देता है। इस प्रणाली को अपनाने का एकमात्र कारण अरस्तू की (प्लेटो के समान ही) यह मान्यता थी कि दार्शनिक के प्रधान लक्ष्य, सत्य की खोज, के लिए एकमात्र यही प्रणाली उपयुक्त है। मैनूटर ने इस आशय की पुष्टि में लिखा है : "वाद-विवाद के रूप में लिखे गए संवाद दर्शन सत्य के निरंतर अन्वेषण से परिपूर्ण हैं और बौद्धिक उधेड़-बुन के संचलित अभिनय हैं।" प्लेटो के समान ही अरस्तू राज्य तथा समाज के संबंध में सावयवी (organic) दृष्टिकोण लेकर चलता है। वह व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में मान्यता नहीं देता। वह उसे समाज और राज्य का एक अभिन्न अंग मानता है। उसके लिए राज्य अथवा समाज से पृथक् व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं था।

राजनीतिशास्त्र के लिए अरस्तू की सबसे महत्त्वपूर्ण एवं मौलिक देन यह है कि अपने अध्ययन में उसने 'आगमन पद्धति' या 'वैज्ञानिक पद्धति' को अपनाया है। समस्याओं के वैज्ञानिक विश्लेषण के प्रति झुकाव का मूल कारण उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि ही थी। प्रोफेसर बार्कर ने इस पद्धति की मीमांसा करते हुए लिखा है : "इस अध्ययन विधि का सार था निरीक्षण करना तथा संबंधित सभी आंकड़े एकत्रित करना और इस अध्ययन का उद्देश्य था प्रत्येक विषय में किसी सामान्य सिद्धांत को खोज निकालना।" संविधान

और अरस्तू इनमे एक था। परिणामस्वरूप अरस्तू को एथेन्स छोड़ देना पड़ा और यूबोग्रा (Euboea) द्वीप के चालसिस (Chalcis) नगर में (अरस्तू की माँ इसी राज्य की मूल निवासी थी) शरण ली, जहां अगले ही वर्ष (ई० पू० ३२२ में) ६२ वर्ष की आयु मे इस महान् दार्शनिक की मृत्यु हो गई।

प्रमुख रचनाएँ——प्रोफेसर फॉस्टर ने लिखा है : "अरस्तू की महानता उसके जीवन में नही बल्कि उसकी रचनाओं में प्रदर्शित होती है। गणित को छोड़कर ज्ञान के लगभग प्रत्येक क्षेत्र का वह एकछत्र स्वामी था।" उसके ज्ञान के विस्तार को देखकर ऐसा लगता है कि उसके मस्तिष्क की विशालता का मुकाबला शायद कोई कभी नही कर पाया है। शताब्दियों तक तर्कशास्त्र, भौतिकी, मनोविज्ञान, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, कला, कविता, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि में अरस्तू 'अंतिम शब्द' माना जाता रहा है। उसकी जानकारी इतनी गहन, विस्तृत एवं परिपूर्ण थी, उसकी दृष्टि इतनी पैनी एवं गहरी थी, उसके निष्कर्ष इतने तार्किक थे कि वह लगभग 'सर्वज्ञाता' बन गया था।

अरस्तू की रचनाएँ 'सैकड़ों' में है। कुछ लेखकों के अनुसार इनकी संख्या ४०० के लगभग है। कृतियों की संख्या और विषयों की विविधता के संदर्भ मे यह अपने-आप-मे एक पुस्तकालय से कम नहीं। प्रस्तुत संदर्भ में हमारा संबंध उसकी राजनीति विज्ञान तथा राजनीतिक दर्शन की कृतियों से ही है। कुछ टिप्पणीकारों का मत है कि यही कृतियाँ अरस्तू की श्रेष्ठतम कृतियाँ है। संभव है इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति हो, किंतु यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि इन कृतियों ने उसे 'राजनीतिकशास्त्र का जनक' बना दिया है। प्रमुखतः यह कृतियाँ है——

१. **कॉन्स्टीट्यूशन्स** (Constitutions)
२. **पॉलिटिक्स** (Politics)

कॉन्स्टीट्यूशन्स अरस्तू के लगभग १५० संविधानों के अध्ययन एवं सूक्ष्म परीक्षण का निचोड़ है। यह पुस्तक आज अप्राप्य है। इससे स्पष्ट है कि अरस्तू ने शासनों का अध्ययन ऐतिहासिक एवं समकालीन कार्यविधि दोनों के ही संदर्भो में किया था। किंतु **पॉलिटिक्स** निश्चित रूप से अरस्तू की श्रेष्ठतम कृति मानी जाती है। जैगर ने इसे "प्राचीन युग से प्राप्त समृद्धतम निधि" कहा है। इस ग्रंथ की रचना में अरस्तू ने **कॉन्स्टीट्यूशन्स** से बहुत-कुछ लिया है। यह ग्रंथ (**पॉलिटिक्स**) आठ पुस्तकों में विभक्त है। इस ग्रंथ को लगभग १५ वर्षों में पूरा किया गया था। बर्नर जैगर जैसे विद्वानों की धारणा है कि इस ग्रंथ को दो बार में लिखा गया है : प्रथम में वह अपने महान् गुरु प्लेटो के दर्शन से प्रभावित था और उसके **स्टेट्समैन** तथा **लॉज** के विचारों के आधारों पर आदर्श राज्य का चित्रण करना चाहता था। यहाँ उसकी मान्यता है कि श्रेष्ठ व्यक्ति तथा श्रेष्ठ नागरिक एक ही चीज है। अतः राज्य का उद्देश्य श्रेष्ठ नागरिकों का निर्माण करना है। अरस्तू के विचार **पॉलिटिक्स** की पुस्तक दो, तीन, सात और आठ मे निहित हैं। जैगर के अनुसार इन पुस्तकों की रचना प्लेटो की मृत्यु के उपरात अरस्तू द्वारा एथेन्स छोड़ने के लगभग उपरात की है। दूसरे में पूर्णतः व्यावहारिक बनकर अरस्तू ने वास्तविक राज्यों की समस्याओं पर विचार किया है। विभिन्न

सिद्धांतो का व्यावहारिक रूप किस प्रकार तथा क्यों बनता है ? विभिन्न शासनों में क्रांतियों के क्या कारण हैं ? क्रांतियों का निराकरण किस प्रकार किया जा सकता है ? किन उपायों द्वारा प्रजातंत्र तथा कुलीनतंत्र शासन स्थायी आधार पर गठित किए जा सकते हैं ? इन तथा ऐसी ही अन्य समस्याओं पर पुस्तक ४, ५, तथा ६ में तटस्थ दृष्टि से विचार किया गया है। यहाँ अरस्तू एक वैज्ञानिक की भांति किसी नए दर्शन का प्रतिपादक न होकर केवल पूर्व से ही विद्यमान ज्ञान का क्रमबद्ध ढंग से विवेचन एवं विश्लेषण करता है। उसकी विचार पद्धति तार्किक एवं वैज्ञानिक है, जिसका आधार वास्तविक तथ्य हैं जिन्हें उसने अनेकानेक स्रोतों से एकत्रित किया था। यह कथन पूर्णतया सही प्रतीत होता है कि "जहाँ प्लेटो एथेन्स की व्यावहारिक राजनीति से परेशान होकर आदर्श राज्य का निर्माण करता है वहाँ अरस्तू प्लेटो के आदर्श राज्य की धारणाओं से परेशान होकर पुनः व्यावहारिक राजनीति की ओर मुड़ता है, जिसकी पद्धति प्रायोगिक है।" जैगर के अनुसार इन पुस्तकों का रचनाकाल 'लीसियम' (विद्यापीठ) की स्थापना के उपरांत का है ; पुस्तक प्रथम की रचना सबसे अंत में की गई प्रतीत होती है।

प्रोफेसर आर० जी० गैटिल ने लिखा है : "यह सत्य है कि अरस्तू इस धारणा से पूर्ण मुक्ति न पा सका कि निरपेक्ष विज्ञान के रूप में राजनीति का लक्ष्य व्यक्ति का परम कल्याण है। **पॉलिटिक्स** की पुस्तक २, ३, ७, और ८ में इस मत की पुष्टि होती है, किंतु जैसे-जैसे उसकी आयु बढ़ती गई और वह प्लेटो के विचारों से दूर होता गया वैसे-वैसे वह इस प्रकार के अध्ययन को छोड़कर वास्तविक राज्यों के कार्यों तथा उनको अनुप्राणित करने वाली शक्तियों के विश्लेषण में अधिक दिलचस्पी लेने लगा। इसी में उसकी प्रतिभा का असली रूप प्रकट हुआ।"

रचना शैली एवं पद्धति—अरस्तू ने प्लेटो के समान ही 'प्रश्नोत्तर' प्रणाली या 'कथोपकथन' प्रणाली का सहारा लिया है। वह स्वयं प्रश्न करता है और स्वयं ही उसका उत्तर देता है। इस प्रणाली को अपनाने का एकमात्र कारण अरस्तू की (प्लेटो के समान ही) यह मान्यता थी कि दार्शनिक के प्रधान लक्ष्य, सत्य की खोज, के लिए एकमात्र यही प्रणाली उपयुक्त है। सैन्टर ने इस आशय की पुष्टि में लिखा है : "वाद-विवाद के रूप से लिखे गए संवाद दर्शन सत्य के निरंतर अन्वेषण से परिपूर्ण हैं और बौद्धिक उधेड़-बुन के संचलित अभिनय हैं।" प्लेटो के समान ही अरस्तू राज्य तथा समाज के संबंध में सावयवी (organic) दृष्टिकोण लेकर चलता है। वह व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में मान्यता नहीं देता। वह उसे समाज और राज्य का एक अभिन्न अंग मानता है। उसके लिए राज्य अथवा समाज से पृथक् व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं था।

राजनीतिशास्त्र के लिए अरस्तू की सबसे महत्त्वपूर्ण एवं मौलिक देन यह है कि अपने अध्ययन में उसने 'आगमन पद्धति' या 'वैज्ञानिक पद्धति' को अपनाया है। समस्याओं के वैज्ञानिक विश्लेषण के प्रति झुकाव का मूल कारण उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि ही थी। प्रोफेसर बार्कर ने इस पद्धति की मीमांसा करते हुए लिखा है : "इस अध्ययन विधि का सार था निरीक्षण करना तथा संबंधित सभी आंकड़े एकत्रित करना और इस अध्ययन का उद्देश्य था प्रत्येक विषय में किसी सामान्य सिद्धांत को खोज निकालना।" संविधान

की श्रेष्ठता के संदर्भ में वह स्वयं लिखता है : "सर्वप्रथम हमें अपने से पहले के लेखकों की रचनाओं का सर्वेक्षण करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि इस विषय पर उन्होंने कौन-सी अच्छी बातें कही हैं, यद्यपि इसकी ओर आंशिक ध्यान ही दिया है। इसके पश्चात् सभी संकलित संविधानों का अध्ययन करके नगरों तथा उनके संविधानों के सुरक्षित रखने वाले तथा नष्ट करने वाले तत्त्वों की सूची बनानी चाहिए और यह जानने का प्रयास करना चाहिए कि क्या कारण हैं कि कुछ नगरों का शासन अच्छा है और कुछ का बुरा। इतना कर लेने के बाद हम यह निर्णय कर सकेंगे कि कौनसा संविधान सबसे अच्छा है, इसमें शक्तियों का विभाजन किस प्रकार किया गया है तथा किन नैतिक और विधि संबंधी आधारों पर यह स्थित है।"

अरस्तू की यह मान्यता थी कि प्रत्येक वस्तु अथवा कार्य में सत्य अंतर्निहित होता है जिसे उस वस्तु अथवा कार्य के निरीक्षण एवं परीक्षण से जाना जा सकता है तथा जिनके आधार पर किसी सामान्य सिद्धांत का निरूपण किया जा सकता है। राजनीतिक समस्याओं के संदर्भ में नियमों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन करने के लिए अरस्तू ने लगभग १५० संविधानों का अध्ययन किया था; तात्कालिक महानतम राजनेताओं तथा सम्राटों के सम्पर्क में आने से उसे राज्यों की अनेकानेक समस्याओं के ऐतिहासिक संदर्भ में अध्ययन करने के सुअवसर का भी उसने भरपूर लाभ उठाया था।[1] **लीसियम** में १२ वर्षों तक अपने शिष्यों के साथ अनुसंधान के अनुभव के परिणामस्वरूप उसने अपने ग्रंथ **पॉलिटिक्स** की विषय-वस्तु को ऐसा रूप प्रदान किया जो अनेक तथ्यों से युक्त, दृष्टान्तों से परिपूर्ण तथा प्रभावशाली ढंग से प्रामाणिक है, तथापि वह आज तक निरंतर राजनीति विज्ञान की सर्वोत्तम रचना सिद्ध हुई है।"[2]

आगमन पद्धति को अपनाए जाने का यह परिणाम है कि उसके विवेचन स्पष्ट और निश्चित हैं तथा काव्यात्मक सजावट से अपेक्षाकृत मुक्त है। उसकी यह मान्य धारणा थी कि शासन का कोई एक ऐसा स्वरूप नहीं है (और न हो सकता है) जो सभी परिस्थितियों में श्रेष्ठतम सिद्ध हो सके (जैसा कि प्लेटो का विश्वास था) बल्कि संविधानों को प्रत्येक जाति की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला जाना चाहिए।

एक बात और आगमन पद्धति में वस्तुओं का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया जाता है। प्रो० अर्नेस्ट बार्कर ने लिखा है : "चूँकि अरस्तू को आगमन पद्धति से सोचने की आदत थी इसलिए उसे वस्तुओं को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखना भी स्वाभाविक हो गया था। परिणामस्वरूप वह परंपराओं का सम्मान करता और सामान्य

---

१. मैक्सी ने लिखा है : "That Aristotle did not neglect these incomparable opportunities is amply evident from his writings. On their very face they bear proof of the fact that behind them lay an accumulation of fact material such as the world had never seen and was not to see again for many centuries." —पोलिटीकल फिलॉसफीज; पृ० ६२

२. "The result was a treatise bristling with citations and replete with illustrative detail;...but so impressively authentic that it stands to-day as it has through the intervening centuries, as a masterpiece of political science." —मैक्सी वही पृ० ७२

लोगों के निर्णयों को भी स्वीकार करने के लिए तैयार रहता था।" अरस्तू ने प्लेटो के संदर्भ में स्वयं ही लिखा है : "हमें याद रखना चाहिए कि युग-युग के अनुभव की उपेक्षा करना हमारे लिए हितकर नहीं हो सकता। यदि यह चीजें (प्लेटो के नये विचार) अच्छी होतीं तो पिछली अगणित शताब्दियों में वे अज्ञात न रही होतीं।" राजनीतिक चिंतन मे ऐतिहासिकता का सहारा संभवतः सर्वप्रथम अरस्तू ने ही लिया है।

प्रमुख प्रभाव—कोई भी दार्शनिक अपने दर्शन का निर्माण शून्य में नहीं करता। उसका दर्शन स्वाभाविक रूप से अनेकानेक 'प्रभावों' से प्रभावित होता है। अरस्तू पर पड़ने वाले प्रभाव के अधिक स्पष्टीकरण के लिए उसे निम्न शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है—

(अ) यूनान की तात्कालिक परिस्थितियों का प्रभाव; (ब) प्लेटो (विशेषकर उसकी बाद की विचारधाराएँ) का प्रभाव; (स) स्वयं की पैतृक पृष्ठभूमि का प्रभाव; (द) अन्य प्रभाव।

यूनान की तात्कालिक परिस्थितियों का प्रभाव—अरस्तू पर यह प्रभाव कई रूपों मे देखा जा सकता है। अरस्तू का युग यूनानी नगर राज्यों एवं यूनानी सभ्यता के पराभव का काल था। हर जगह राजनीतिक अस्थिरता का साम्राज्य व्याप्त था। ई० पू० ५वीं शताब्दी की समाप्ति से ही यह आवश्यक हो गया था कि परिस्थितियों का परीक्षण किया जाए और उन समस्याओं का समाधान जुटाया जाए जिन्होंने तत्कालीन समाज की नीव को ही हिलाकर रख दिया था। समूची यूनानी सभ्यता खतरे में थी। कोई भी दार्शनिक अपने युग की परिस्थितियों एवं विशेषताओं के प्रभाव से सामान्यतया अछूता नहीं बच सकता। फिर ऐसी विषम एवं विकट परिस्थितियों का प्रभाव तो और भी प्रखर हो जाता है जिसमें अरस्तू के जीवन के ६२ वर्ष व्यतीत हुए थे। उसने नगर-राज्यों की समाप्ति और उनके अवशेषों पर रोम के विराट् साम्राज्य के उभरते स्वरूप को देखा था। स्वाभाविक था कि अरस्तू एक दार्शनिक होने के नाते इस पतन एवं पराभव के कारणों को खोज निकाले और उनका उचित समाधान प्रस्तुत करे।

दूसरे, नगर-राज्य-व्यवस्था के प्रति लगाव में अरस्तू प्लेटो से पीछे नहीं है। यह लगाव इस बात से और भी स्पष्ट हो जाता है कि उसने नगर-राज्य-व्यवस्था को छिन्न-भिन्न होकर समाप्त होते स्वयं देखा; मैसीडोनिया के उभरते साम्राज्य से वह अपरिचित भी नहीं था। फिर भी उसने नगर-राज्य को अपने दार्शनिक चिंतन का केन्द्र बनाया। फॉस्टर ने बड़े ही सुंदर शब्दों में लिखा है : "यहाँ वह अपने समय की गतिविधियों से पूर्णतः अप्रभावित है और समकालीन घटनाओं से अलग। वह नगर-राज्यों का राजनीतिक दर्शन इस रूप मे लिखता है मानो वह शाश्वत है, न कि उस युग की कोई विशिष्ट घटना जो अब बीत चुका है।"[1]

तीसरे, यूनान और यूनानी सभ्यता के प्रति उसका बेहद लगाव था। दास प्रथा का समर्थन इसी लगाव का द्योतक है; जातीय श्रेष्ठता की यूनानी मान्यता को भी अरस्तू

---

१ फॉस्टर मास्टर्स ऑफ पॉलिटिकल थॉट पृ० १२२

नही छोड पाया है । इनके समर्थन मे उसने जो तर्क दिए है वे एक वैज्ञानिक के तर्क न होकर एक विशुद्ध यूनानी के तर्क है जो घटनाओं की जान-बूझकर अनदेखी कर रहा था अरस्तू के राजनीतिक दर्शन की सबसे कमजोर कड़ी भी यही है ।

प्लेटो (विशेषकर उसकी बाद की विचारधाराएँ) का प्रभाव—अरस्तू के दर्शन पर सबसे अधिक यदि किसी अन्य पूर्वगामी दार्शनिक का प्रभाव प्रतिलक्षित होता है तो वह है प्लेटो जिसके सामीप्य में अरस्तू के जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण क्षण व्यतीत हुए थे। फॉस्टर ने लिखा है : "अरस्तू के जीवन का एक ऐसा तथ्य है जो उसके दर्शन को समझने के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, उदाहरण के लिए, यह (तथ्य) कि अपने जीवन—१७ वर्ष की आयु से ३६ वर्ष की आयु तक—के लगभग २० वर्षों तक वह प्लेटो की अकादमी का सदस्य था। अरस्तू के विचारों के निर्माण में इस लंबे और नजदीकी संबंधों के प्रभाव को सहज ही नजरंदाज नही किया जा सकता। वह प्लेटोवाद से इस सीमा तक प्रभावित है जहाँ उसके (अरस्तू) अलावा कोई अन्य बड़ा दार्शनिक शायद ही किसी अन्य के विचारों से प्रभावित रहा हो ।" विलडूराँ ने लिखा है : "अरस्तू मे प्लेटो की अत्यंत अधिकता है ।" यह प्रभाव **पॉलिटिक्स** के किसी भी भाग में खोजा जा सकता है किंतु (**पॉलिटिक्स** की) ७वीं तथा ८वीं पुस्तकों मे तो वह प्लेटो से पूर्णत: प्रभावित दिखाई देता है। **पॉलिटिक्स** का यही वह भाग है जहाँ अरस्तू अपने आदर्श राज्य की चर्चा करता है। सेबाइन ने लिखा है : "अरस्तू जिसे आदर्श राज्य कहता है वह प्लेटो का उप-आदर्श राज्य ही है ;" प्लेटो के **लॉज** की समाप्ति ही **पॉलिटिक्स** का प्रारंभ है।

किंतु इससे यह तात्पर्य निकालना सत्य से परे चले जाना होगा कि अरस्तू प्लेटो के विचारों से बहुत अधिक सहमत था। वास्तविकता तो यह है कि अरस्तू **पॉलिटिक्स** में प्लेटो की अनूठी विचारधाराओ की कटु आलोचना करता है तथा मौलिक विचारधाराओं को अमान्य करता है। उदाहरण के लिए, **पॉलिटिक्स** की दूसरी पुस्तक में अरस्तू प्लेटो की साम्यवादी विचारधारा के आधारभूत तर्कों की आलोचना करता है तथा तीसरी पुस्तक में वह प्लेटो की धारणा को अमान्य कर देता है कि दार्शनिकों को राजा बनाया जाना चाहिए। टी० ए० सिक्लेयर ने लिखा है : "अरस्तू की रचनाओं मे इस प्रकार की आलोचना बहुधा मिलती है जो कुछ स्थलों पर तो महत्त्वपूर्ण और कुछ स्थलों पर महत्त्व-हीन एवं क्षुद्र है ।"

पैतृक पृष्ठभूमि का प्रभाव—अरस्तू के विचारों, विशेषकर राजनीतिक विचारों, के निर्माण में उसकी पैतृक पृष्ठभूमि के प्रभाव से भी इंकार नही किया जा सकता। उसका जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था जिसमें पीढ़ियों से चिकित्सा का पेशा होता आया था। उसका पिता स्वयं ही एक चिकित्सक था। इस प्रकार वैज्ञानिक दृष्टिकोण उसे जन्म से ही प्राप्त हुआ था और इसके लिए वह अपने परिवार का ऋणी था। गैटिल ने लिखा है : "यह कहना गलत नहीं होगा कि अपने परवर्ती जीवन में उसने जीव-विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति में जो अभिरुचि दिखाई उसके लिए वह अरस्तू अपने

पारिवारिक वातावरण का ही ऋणी था।"[1] प्रो० बार्कर ने भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है।

इस संदर्भ में इस बात का भी अपना महत्व है कि अरस्तू का लालन-पालन-पोषण एवं आरंभिक शिक्षा एक कुलीन घराने तथा वैभवशाली वातावरण में हुई थी। मैक्सी ने लिखा है : "अपने अध्ययन मे वैज्ञानिक प्रणाली के प्रयोग के लिए उसे समकालीन अथवा पिछली शताब्दी में किसी भी समय मे किसी भी व्यक्ति की तुलना में अधिक सुविधाएँ एवं विस्तृत साधन प्राप्त थे। शिक्षक, पुस्तकें एवं अध्ययन के अन्य साधनों के रूप में पैसा एवं शक्ति से जो भी प्राप्त किया जा सकता था वह सब चिकित्सा-विज्ञान के इस तरुण छात्र को प्राप्त थे। हॅरमियास में शासन के सभी प्रसाधन उसके लिए उपलब्ध थे··· मैसीडोनिया में शोध एवं बौद्धिक प्रयासों में वह सभी सहायता उसे प्राप्त थी जो मैसीडोनिया की उस युग की सर्वसत्तावान राजनीतिक शक्ति उसे प्रदान करती थी··· 'लीसियम' की स्थापना के समय अरस्तू विश्व के सबसे अधिक शक्तिशाली सम्राट् (सिकंदर महान्) की मित्रता एवं संरक्षण की असामान्य स्थिति में था।" **पॉलिटिक्स** इस बात का प्रमाण है कि अरस्तू ने इन अतुलनीय अवसरों का भरपूर लाभ उठाया था। 'लीसियम' के लिए वांछित साधन जुटाने में अरस्तू को अपने इन संपर्कों से विशेष मदद मिली। गैटिल ने लिखा है : " 'लीसियम' की खूब प्रगति हुई। विद्यापीठ का अनुसंधान कार्य जितना आगे बढ़ा उतना पहले कभी संभव नहीं हो सका था। पूर्वी देशों के विजय-अभियान मे सिकंदर के साथ जो अनेक वैज्ञानिक एवं दार्शनिक गए थे उनके द्वारा अनेक विषयों पर ऐसी जानकारी उपलब्ध हुई जिसका पहले नितांत अभाव था।"[2]

किन्तु सिक्लेयर जैसे विद्वानों को इसका विस्मय अवश्य है कि "वह अपनी बाद की रचनाओं में अपने इस महान् शिष्य (सिकंदर महान्) की जीवन घटनाओं तथा प्रगति की चर्चा क्यों नहीं करता।"[3] किन्तु गैटिल इस संदर्भ में निकाले गए अपने निष्कर्षों में अधिक स्पष्ट है, जब वह लिखता है कि "इतिहास के उन दो अत्यधिक विख्यात नायकों (अरस्तू और सिकंदर) का यह संबंध ६ वर्ष तक रहा किन्तु उनका एक-दूसरे पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा। इसका कारण यह था कि अरस्तू अपने चिंतन में नगर-राज्य की सीमाओं को लाघने में असमर्थ था अथवा ऐसा करना नहीं चाहता था। इसके विपरीत सिकंदर को एक साम्राज्य बनाने की धुन थी इसलिए अपने गुरु की सलाह पर उसने कभी ध्यान नहीं दिया।"[4]

प्रमुख समस्या—प्लेटो के समान अरस्तू भी यूनान का प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक माना जाता है। इसकी रचनाओं में यूनान की मौलिक चेतना अपनी पूर्णता मे दार्शनिक अभिव्यक्ति पाती है। यूनान का जो रूप इन रचनाओं में अभिव्यक्त है वह

---

१. गैटिल : राजनीतिक चिंतन का इतिहास; पृ० ७४
२. वही, पृ० ७५
३ टी० ए० सिक्लेयर : यूनानी राजनीतिक विचारधारा: पृ० २८१
४. गैटिल : राजनीतिक चिंतन का इतिहास; पृ० ७४; सेबाइन भी गैटिल के इस निष्कर्ष की पुष्टि करता है। देखिए उसकी पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी' ; पृ० ८७

यूनान का वह आदर्श युग था जो उसके जन्म के पूर्व ही बीत चुका था। अपने जीवनकाल में उसने इन यूनानी नगर राज्यों की स्वतन्त्रता को समाप्त होते अवश्य ही देखा था। यूनान-विरोधी राजनीतिक आदर्शों का क्षेत्र बन गया था। विद्रोह, विश्वासघात और विरोध प्रत्येक नगर-राज्य के आंतरिक राजनीतिक जीवन की सामान्य विशेषताएँ बन गए थे। परिणामस्वरूप हर तरफ राजनीतिक अस्थिरता का साम्राज्य व्याप्त था। दूसरी तरफ रोम का साम्राज्य विस्तार ले रहा था। नगर-राज्यों के अस्तित्व को ही खतरा उत्पन्न हो गया था। यूनानी नागरिकों की स्वतंत्रता तथा जीवन की श्रेष्ठता ही नहीं वरन् समूची यूनानी सभ्यता पराभव के गर्त्त में गिरती जा रही थी। सामान्य व्यक्ति की तरह एक दार्शनिक इस विकट घटनाक्रम का मूक द्रष्टा बना नहीं रह सकता था; प्लेटो के समान अरस्तू भी यूनान के अस्थिर राजनीतिक जीवन तथा नैतिक अव्यवस्था से चिंतित था।

अपने राजनीतिक दर्शन के निर्माण में उसने इन समस्याओं की क्रमबद्ध विवेचना की। समस्या थी—राज्य के जीवन को नियंत्रित एवं निर्देशित करने वाले नियमों (यदि कोई हैं तो) की खोज करना; समस्या थी—राजनीतिक जीवन में उस श्रेष्ठता का निर्धारण करना जो ऐसी विनाशकारी एवं विघटनकारी प्रवृत्तियों को समाप्त करके सुखमय जीवन के आधार का निर्माण कर सके; समस्या थी—संघर्षरत इन विभिन्न वर्गों में सामंजस्य स्थापित करके राज्य की एकता के निर्माण की ठोस पृष्ठभूमि का निर्माण करना। एक वैज्ञानिक की तरह अरस्तू ने इन सभी समस्याओं का गहराई से अध्ययन किया; अनुभव, अध्ययन एवं अनुसंधान द्वारा संग्रहीत तथ्यों का विश्लेषण करके जो समाधान प्रस्तुत किए वह उसकी अनन्यतम कृति **पॉलिटिक्स** में निहित हैं। मैक्सी ने लिखा है: "**पॉलिटिक्स** की रचना बहुत ही व्यावहारिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए की गई थी।"[1]

प्रमुख समाधान—नगर-राज्यों के इन दोषों के निराकरण के रूप में प्लेटो का समाधान था: "दार्शनिकों को राजा होना चाहिए।" अरस्तू प्लेटो के इस समाधान से सहमत नहीं है। उसकी अपनी मान्यता है कि राजनेता के लिए प्रमुख योग्यता दर्शन न होकर 'व्यावहारिक विवेक' है जिसे अध्ययन के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है; उसकी मान्यता है कि सभी राज्यों की समस्याओं के लिए कोई एक समाधान न तो संभव है और न आवश्यक है।

अरस्तू की **पॉलिटिक्स** इसी व्यावहारिक विवेक का ग्रंथ है। मैक्सी ने तुलनात्मक ढंग से लिखा है: "प्लेटो एक ऐसे सर्वश्रेष्ठ मानव की तलाश में है जो एक ऐसे राज्य का निर्माण करे जिसे सर्वोत्तम होना चाहिए किंतु अरस्तू ऐसे विज्ञान की तलाश करता है जो ऐसे राज्य का निर्माण करे जो कि सर्वोत्तम हो सकता है।"[2] पॉलिटिक्स ही वह विज्ञान है जो वास्तविक तथ्यों के वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा प्रतिपादित है। इस प्रतिपादन में वह वास्तविक राज्यों की समस्याओं के प्रति पूर्णतः जागरूक है। इन सामान्य समस्याओं के जो सामान्य समाधान अरस्तू ने प्रस्तुत किए हैं वह बहुत-कुछ रूप में २५०० वर्षों के

१. सी० सी० मैक्सी: पोलिटीकल फिलॉसफीज़: पृ० ६२

२. मैक्सी: पोलिटीकल फिलॉसफीज़ पृ० ६८

उपरांत भी आज मान्य है। उदाहरण के लिए, व्यक्ति के शासन के स्थान पर अरस्तू ने विधि (कानून) के शासन का प्रतिपादन किया है। आज का संवैधानिक शासन वस्तुतः विधि का शासन ही है। गैटिल ने लिखा है : "कानून की सर्वोच्चता और संवैधानिक शासन की वाञ्छनीयता में यह विश्वास अरस्तू की उन अभिधारणाओं में से एक है जिसके लिए उसे सबसे अधिक याद किया जाता है।"

'राज्य एक प्राकृतिक संस्था है', 'व्यक्ति प्रकृतिशः एक राजनीतिक प्राणी है', 'व्यक्ति का लक्ष्य सुखमय जीवन की प्राप्ति करना है'—अरस्तू की इन घोषणाओं ने उसके पूर्वगामी विचारकों एवं दार्शनिकों के उन मनगढंत निष्कर्षों को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया है जो वह राज्य के उद्‌भव, उसकी प्रकृति एवं उसके लक्ष्य के संदर्भ में प्रतिपादित करते चले आ रहे थे।

राज्य द्वारा अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में शासन के स्थायित्व का निर्णायक महत्त्व है। अरस्तू अपने युग के शासनों की अस्थिरता से विकल था। उसने विस्तारपूर्वक इस विषय का प्रतिपादन **पॉलिटिक्स** में किया है। उसकी मान्यता है कि किसी भी राज्य में दो शक्तियाँ होती हैं—एक को वह 'योग्यता' (Quality) और दूसरी को 'संख्या' (Quantity) कहता है : प्रथम शक्ति का संपत्ति, पैतृकता, स्थिति एवं शिक्षा से जन्म होता है और दूसरी 'संख्या' की अपनी ही शक्ति है। स्थिरता बनाए रखने के लिए आवश्यक है, इन दोनों शक्तियों में संतुलन बनाए रखा जाए। सेबाइन ने लिखा है : "उस राज्य ने स्थिर एवं व्यवस्थित शासन की प्रमुख समस्याओं का समाधान ढूँढ लिया है, जो इन शक्तियों को सम्मिलित कर सका है।"[1]

अरस्तू ही राजनीतिक दर्शन का वह प्रथम विचारक था जिसने राज्य तथा शासन संबंधी समस्याओं का क्रमबद्ध अध्ययन करके राजनीतिशास्त्र को वैधानिक स्वरूप प्रदान किया। राज्य की व्याख्या के उपरांत वह उसकी (राज्य की) उत्पत्ति, स्वरूप, प्रकृति एवं उद्देश्यों की विवेचना करता है। नागरिकता, राज्यसभा, विधि, न्याय आदि धारणाओं के अध्ययन के उपरांत वह राज्य एवं शासनों के वर्गीकरण द्वारा राज्य तथा शासन के राजनीतिक संगठनों की व्याख्या करता है। वास्तविक राज्यों की समस्याओं (क्रांतियाँ आदि) के विवरण के उपरांत अपने आदर्श (श्रेष्ठ) राज्य की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। इन सभी संबद्ध विषयों पर अरस्तू के विचारों की स्पष्ट जानकारी के लिए आवश्यक है कि इन्हें किन्हीं निश्चित आधारों पर व्यवस्थित किया जाए।

प्रमुख आधार—**पॉलिटिक्स** में अरस्तू ने राजनीतिक दर्शन के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर अपने विचार प्रतिपादित किए हैं ; इन्हें निम्न शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता है—

(१) राज्य विषयक विचार; (२) राजसत्ता एवं विधि विषयक विचार; (३) दास प्रथा विषयक विचार; (४) शिक्षा संबंधी विचार; (५) नागरिकता विषयक विचार (६) संविधान एवं शासनों के प्रकार विषयक विचार; (७) श्रेष्ठ राज्य

---

1. सेबाइन : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी; पृ० १०८

विषयक धारणा; (८) क्रांतियाँ विषयक विचार; (९) सर्वोच्च सत्ता एवं न्याय विषयक विचार; (१०) प्लेटो एवं अरस्तू—एक समीक्षा; (११) अरस्तू द्वारा की गई प्लेटो की आलोचना; (१२) अरस्तू में यूनानी एवं शाश्वत तत्त्व।

अरस्तू के राज्य विषयक विचार—**पॉलिटिक्स** की प्रथम पुस्तक में अरस्तू राज्य विषयक चर्चा करता है। अपने गुरु प्लेटो के समान राज्य के संबंध में प्रचलित इस 'सोफिस्ट मान्यता' का खंडन करता है कि राज्य एक परंपराजन्य संस्था है। इसके विपरीत अरस्तू घोषणा करता है कि राज्य एक प्राकृतिक संस्था है। वह प्लेटो की इस धारणा का भी समर्थन नहीं करता कि "राज्य व्यक्ति का ही बृहत्तर स्वरूप है।" उसने घोषणा की है कि राज्य एक समुदाय—राजनीतिक समुदाय—है जो यद्यपि अन्य (परिवार तथा ग्राम जैसे) निम्नस्तरीय समुदायों से मिलकर बना है किंतु फिर भी उनसे पूर्णतः भिन्न है।

संक्षेप में, राज्य मनुष्यों की प्राकृतिक शक्तियों के विकास और स्वाभाविक आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति के लिए एक प्राकृतिक तथा आवश्यक संस्था है; राज्य का स्वाभाविक रूप से एवं क्रमिक ढंग से विकास हुआ है। विकास की प्रक्रिया इस प्रकार है—

राज्य का उद्भव—विकास प्रक्रिया का आरंभिक स्तर परिवार है; कालांतर में चलकर परिवारों के मेल से ग्रामों का निर्माण हुआ और ग्रामों से राज्य का। इस प्रक्रिया का प्रारंभ उनके संयोग से होता है जो एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकते। उदाहरण के लिए स्त्री और पुरुष का संयोग तथा शासक एवं शासित का संयोग सार्वभौमिक है क्योंकि यह पशुओं और पौधों में भी पाया जाता है। मानव जाति को कायम रखने के लिए स्त्री और पुरुष का तथा जीवन निर्वाह की सामग्री के उत्पादन के लिए स्वामी और दास का जो संयोग हुआ उसी ने परिवार को जन्म दिया।

परिवार की स्थापना प्रकृति ने व्यक्तियों की दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की है; मानव प्रकृति की उच्चतर आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार में नहीं हो सकती, सामुदायिकता की स्वाभाविक वृत्ति भी उससे अपेक्षा करती है कि वह अपने दायरे को विस्तृत करे और जब अनेक परिवारों से मिलकर एक ऐसा प्राथमिक समाज बनता है जो दिन-प्रतिदिन अथवा अल्पकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि अधिक व्यापक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है तो उसे गाँव कहते हैं। गाँव का भी सबसे अधिक स्वाभाविक स्वरूप वह है जो एक ही परिवार के उपनिवेश या समूह के रूप में हो तथा जिसके सदस्यों में खून का संबंध हो।

जब तक लोग जीवित रहने तथा अपनी अत्यंत प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति में संतुष्ट रहे तब तक परिवार से काम चलता रहा; जब तक वह अपेक्षाकृत अधिक व्यापक आवश्यकताओं की पूर्ति से संतुष्ट रहे तब तक गाँव से काम चलता रहा किंतु जब उनमें पहले से पूर्ण एवं समृद्ध सामाजिक जीवन बिताने की आकांक्षा उत्पन्न हुई तो परिवारों को मिलाकर ऐसे आकार-प्रकार के राज्यों का निर्माण कर लिया गया जो हर दृष्टि से स्वावलंबी और आत्मनिर्भर हो सकते थे। यह राज्य ही मानव संबंधों का पूर्णतया विकसित स्वरूप है मानव प्रकृति राज्य में ही पूर्णता की प्राप्ति करती है क्रमिक

विकास की इस अनिवार्य शृंखला की अंतिम परिणति राज्य में ही होती है। अरस्तू ने स्वयं लिखा है—"मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निर्मित मानव संगठनों का दायरा बढ़ते-बढ़ते राज्य की परिधि छूने लगता है।" जोवेट (Jowett) ने इस समूची व्यवस्था को इन शब्दों में स्पष्ट किया है : "परिवार प्रकृति द्वारा स्थापित मनुष्य की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली संस्था है। जब यह परिवार इकट्ठे हो जाते हैं और इस संगठन का उद्देश्य दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति से कुछ अधिक होता है तब तक एक ग्राम अस्तित्व में आता है। जब कई गाँव एक समाज में एकत्रित और सगठित हो जाते है तो वे इतने बड़े हो जाते है कि वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर लेते है तब नगर या राज्य अस्तित्व मे आता है।"

इस प्रकार अरस्तू का निष्कर्ष है कि राज्य एक प्राकृतिक, अनिवार्य एवं प्राथमिक किन्तु सर्वोच्च संस्था है। अरस्तू राज्य की 'आत्मनिर्भरता' पर विशेष बल देता है, वह घोषित करता है : "राज्य का निर्माण जीवन के लिए हुआ है और उसका निरंतर अस्तित्व श्रेष्ठ जीवन के लिए ही है।"[1] उपरोक्त विवरण के आधार पर अरस्तू राज्य की परिभाषा इस प्रकार देता है : राज्य परिवारों तथा ग्रामों का समूह है जिसका उद्देश्य एक पूर्ण तथा श्रेष्ठ जीवन प्राप्त कराना है।"[2]

परिवार से राज्य की भिन्नता—यह सही है कि राज्य का उद्भव परिवार से हुआ है। इस क्रमिक विकास में परिवार प्रथम सीढ़ी है और राज्य अंतिम। किंतु इससे यह निष्कर्ष निकालना कि राज्य परिवार का ही विकसित स्वरूप है, सत्य से परे चले जाना है। दोनों में अंतर है, अरस्तू ने इस अंतर को भी पूर्णत स्पष्ट किया है। उसका कथन है कि परिवार में व्यक्ति को अपनी पत्नी, बच्चे और संपत्ति (जिसमें दास भी सम्मिलत है—अरस्तू दासों को भी जीवित संपत्ति मानता है) पर आधिपत्य प्राप्त है। किंतु इन तीनों के साथ उसके संबंध एक जैसे नहीं हैं। उदाहरण के लिए पत्नी पर उसका आधिपत्य एक सवैधानिक परामर्शदाता जैसा ही है; बच्चों पर वह एक ऐसे शासक की तरह शासन करता है जो उनके (बच्चों के) हितो के प्रति अधिक जागरूक एवं सचेष्ट है; किंतु संपत्ति पर (दासों सहित) उसका पूर्ण अधिकार है; संपत्ति का उपयोग वह अपने लिए करता है। किंतु राज्य मे शासक का सभी नागरिकों से एक जैसा ही संबंध है। यही नहीं, परिवार का लक्ष्य जीवन की भौतिक आवश्यकताओं को पुरा करना है, जबकि राज्य का लक्ष्य उच्चतर नैतिक एवं बौद्धिक आवश्यकताओं को पूरा करना है।

राज्य समुदाय है : एक सर्वोच्च समुदाय—परिवार, ग्राम तथा राज्य सभी मनुष्यो के समुदाय[3] हैं। परिवारों एवं ग्रामों द्वारा निर्मित होने के कारण राज्य को 'समुदायों का समुदाय' भी कहा जा सकता है। किंतु यह (राज्य) अन्य समुदायों से विस्तार, सत्ता एवं लक्ष्य सभी दृष्टियों से श्रेष्ठ है, परिवार तथा ग्राम विस्तार की दृष्टि से

---

१. अरस्तू।

२. अरस्तू।

३. यह समुदाय मधुमक्खियों या अन्य पशुओं के समुदायो से भिन्न है, क्योंकि यह उन प्राणियों के समुदाय हैं जिनमें अच्छाई-बुराई, न्याय-अन्याय को समझने की पूर्ण क्षमता होती है।

अपेक्षाकृत छोटे समुदाय हैं, इन समुदायों से निर्मित समुदाय (राज्य) निश्चित ही एक विस्तृत समुदाय है; अन्य सभी समुदाय उसकी परिधि के भीतर है। सत्ता की दृष्टि से राज्य एक सर्वोच्च समुदाय है, क्योंकि वह अन्य समुदायों से ऊपर है तथा अधिक सत्ताशाली है। जहाँ तक लक्ष्य का प्रश्न है, प्रत्येक मानव समुदाय की स्थापना किसी-न-किसी प्रकार की अच्छाई प्राप्त करना है। परिवार, ग्राम तथा राज्य तीनों का लक्ष्य सुखमय जीवन को प्राप्त करना है किन्तु परिवार तथा गाँवों की अपनी सीमाएँ हैं। यह व्यक्ति की भौतिक तथा अपेक्षाकृत प्राणीगत (जैविक) आवश्यकताओं की पूर्ति करके सुखमय जीवन की प्राप्ति में अपना प्रारंभिक योगदान देते है। अरस्तू के अनुसार राज्य का उद्देश्य केवल यह नहीं है कि नागरिक किसी प्रकार से अपना जीवन बिता लें बल्कि श्रेष्ठ जीवन है, ऐसा जीवन जो वास्तव में जीने योग्य है। इसलिए अरस्तू की मान्यता है, राज्य एक ऐसा समुदाय है जो 'आत्मनिर्भर' है। आत्मनिर्भरता एक ऐसा गुण है जिसके द्वारा जीवन स्वतः वांछनीय बन जाता है और उसमें कोई अभाव नहीं रह जाता।

राज्य का विकास—राज्य की उत्पत्ति में अरस्तू विकासवादी सिद्धांत का अनुसरण करता है। उसकी यह निश्चित मान्यता है कि सभ्यता का विकास प्रकृति की विकास प्रक्रिया का अंग है, इसका विरोधी नहीं। हम कह सकते है कि सभ्यता का विकास हुआ है और परिवार, वंश, ग्राम और राज्य इस प्रक्रिया की क्रमिक अवस्थाएँ हैं; जो प्रक्रिया परिवार में प्रारंभ होती है उसी की अंतिम परिणति राज्य में होती है। फिलिस डायल (Phyllis Doyle) ने लिखा है: "परिवार राजनीतिक जीवन का प्रारंभ था"[1] विकास की प्रक्रिया अंतर्निहित परिवर्तनों का परिणाम है और परिवर्तन निरुद्देश्य नहीं होते। परिवारों से ग्राम और ग्रामों से राज्य—इन परिवर्तनों के पीछे पूर्णता की प्राप्ति ही प्रमुख कारण है। व्यक्ति अपूर्ण है और वह पूर्णता की प्राप्ति करना चाहता है। इसमें परिवार और गाँव प्रक्रिया के भिन्न-भिन्न स्तरों पर उसकी स्वाभाविक रूप से मदद करते है किंतु पूर्णता की प्राप्ति व्यक्ति अंततः राज्य में ही करता है। इस संदर्भ में अरस्तू ने परिवर्तनों के कारणों की भी चर्चा की है। संक्षेप में, अरस्तू के अनुसार परिवर्तन के चार कारण होते हैं—

१. पदार्थिक कारण (Material Cause), २. क्रियात्मक कारण (Efficient Cause), ३. औपचारिक कारण (Formal Cause), ४. अंतिम कारण (Final Cause)।

परिवर्तन के लिए इन चारों कारणों का होना अति आवश्यक है—चाहे परिवर्तन स्वाभाविक हो अथवा कृत्रिम। दो उदाहरणों द्वारा इस समूची व्यवस्था को इस प्रकार समझाया जा सकता है—बीज से वृक्ष का बनना और लकड़ी से मेज का बनना। दोनों ही स्थितियों में परिवर्तन होता है और दोनों ही परिवर्तनों में उपरोक्त चारों कारण सक्रिय हैं।

बीज से वृक्ष बनने में बीज पदार्थिक और लकड़ी से मेज बनने में लकड़ी पदार्थिक कारण है। बीज को अंकुरित करने वाली प्रकृति तथा लकड़ी को काट-छीलकर मेज का

१. स्पस्त ए हिस्ट्री ऑफ ... पाट पृ० ३१

रूप देने वाला बढ़ई क्रियात्मक कारण है अंकुर को जीवन देने वाली हवा पानी एवं सूर्य की रोशनी तथा दूसरे उदाहरण में औजार (आरा कुल्हाडी आदि) औपचारिक कारण है तथा प्रथम उदाहरण में पूर्ण विकसित वृक्ष और द्वितीय उदाहरण में निर्मित मेज अंतिम कारण हैं। दोनों ही उदाहरणों में परिवर्तन हुआ है लेकिन जहाँ बीज से वृक्ष बन जाना स्वाभाविक परिवर्तन है वहाँ लकड़ी से मेज का बनना कृत्रिम, क्योंकि जहाँ पहले उदाहरण में क्रियात्मक कारण स्वयं प्रकृति है, वहाँ दूसरे में क्रियात्मक कारण व्यक्ति है। चूँकि राज्य की उत्पत्ति का क्रियात्मक कारण व्यक्ति की प्रकृति है इसलिए राज्य एक प्राकृतिक संस्था है। राज्य के अंतर्गत जीवन व्यतीत करना मानव स्वभाव के अनुसार है। प्रोफेसर सिक्लेयर ने लिखा है : "राज्य की उत्पत्ति का कारण भौतिक आवश्यकताएँ नहीं हैं।"[1]

राज्य एक प्राकृतिक संस्था है—अरस्तू राज्य को एक प्रकृतिजन्य संस्था मानता है और व्यक्ति को प्रकृतिश. एक राजनीतिक प्राणी। उसका तर्क था कि व्यक्ति स्वभाव से ही राजनीतिक जीवन बिताने के लिए उत्पन्न हुआ है, अतः यह कहना सर्वथा उचित है कि राज्य मनुष्यों की प्राकृतिक शक्तियों के विकास और स्वाभाविक आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति के लिए एक प्राकृतिक एवं आवश्यक संस्था है और वही राज्य सर्वोत्तम है जिसमें सभी नागरिकों के लिए यथासंभव पूर्ण राजनीतिक जीवन बिताना संभव हो सके। इस निष्कर्ष के समर्थन में अरस्तू द्वारा दिए गए तर्कों को इस प्रकार रखा जा सकता है—

१. यह मानव स्वभाव की अपेक्षा है कि वह राज्य में निवास करे। मनुष्य का यही स्वभाव उसे पशुओं से भिन्नता प्रदान करता है। सिक्लेयर ने लिखा है : "पशुओं में परिश्रम करने अथवा समूह में रहने की कितनी ही प्रवृत्ति क्यों न हो उन्हें 'राजनीतिक प्राणी' की संज्ञा नही दी जा सकती क्योंकि मनुष्य के समान 'राज्य' का जीवन व्यतीत करने की प्रवृत्ति उनमें नहीं होती।"

२. परिवार एक प्राकृतिक संस्था है। फॉस्टर ने लिखा है : "कोई भी व्यक्ति परिवार के संबंध में यह नहीं कहता कि वह प्राकृतिक नहीं है।"[2] परिवार व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति है। व्यक्ति की 'अपूर्णता' ही परिवार को व्यक्ति के लिए स्वाभाविक बना देती है। पूर्णता की इस प्राप्ति में परिवार अपना सीमित योग-दान ही दे पाता है; इसकी प्राप्ति राज्य में ही संभव है। अरस्तू ने घोषणा की है कि "जो व्यक्ति समाज में रहने में असमर्थ है अथवा जिसे आत्मनिर्भर होने के लिए समाज की आवश्यकता नही है, वह या तो पशु होना चाहिए अन्यथा देवता।"

३. **पॉलिटिक्स** में अभिव्यक्त मान्यता के अनुसार राज्य इसलिए भी स्वाभाविक है कि वह व्यक्ति की उच्चतर प्रकृति के विकास का वातावरण प्रदान करता है जो अन्य निम्नतर संस्थाओं की क्षमता के बाहर है। मनुष्य की यही उच्चतर प्रकृति उसे पशुओं से भिन्नता प्रदान करती है और यह उच्चतर प्रकृति है 'विवेक।' राज्य विवेक की अभिव्यक्ति

---

१. टी० ए० सिक्लेयर : यूनानी राजनीतिक विचारधारा, पृ० २८६
२. फॉस्टर : मास्टर्स ऑफ पोलिटीकल थॉट; पृ० १२८

के लिए विस्तार प्रदान करता है। यह केवल राजनीतिक समाज (राज्य) में ही संभव मात्र आर्थिक समाज (परिवार अथवा गाँव) में नहीं।

४. अरस्तू राज्य को इसलिए भी प्राकृतिक मानता है कि राज्य में वह स संस्थाएँ अपनी परिणति (पूर्णता) प्राप्त करती हैं जिन्हें हम प्राकृतिक संस्थाओं के रू से जानते हैं, जैसे परिवार, गाँव आदि। परिवार और गाँव नितांत आवश्यक होने कारण स्वाभाविक है। इसी अर्थ में राज्य व्यक्ति के लिए एक नितांत आवश्यक समुद है और इसीलिए यह प्राकृतिक है।

५. राज्य ही मानव संबंधों का पूर्णतः विकसित स्वरूप है और मनुष्य, स्वभाव से ही राजनीतिक एवं सामाजिक प्राणी है, राज्य में रहकर ही अपने जीवन परमोद्देश्य को प्राप्त कर सकता है। यह परमोद्देश्य है सुखमय जीवन की प्राप्ति सिक्लेयर ने लिखा है : "राज्य का उद्देश्य येन-केन-प्रकारेण जीवन व्यतीत करना न अपितु श्रेष्ठ जीवन है, ऐसा जीवन जो वास्तव में जीने योग्य है।" इस स्वाभाविक लक्ष्य को प्राप्त कराने वाली संस्था (राज्य) भी निश्चित रूप से स्वाभाविक होगी।

राज्य व्यक्ति का पूर्वगामी है—अरस्तू की मान्यता है कि राज्य प्रकृतितः स्पष्ट रूप से व्यक्ति का पूर्वगामी है; व्यक्ति से पहले का है। अरस्तू के इस कथन का आशय ऐतिहासिक संदर्भ में नहीं लिया जाना चाहिए क्योंकि यह एक सामान्य धारणा है कि निर्माण के क्रम में व्यक्ति प्रथम है और राज्य अंतिम। अरस्तू अपनी इस मान्यता को निम्न दो आधारों पर स्पष्ट करता है—

प्रथम, दार्शनिक दृष्टि से—एक धारणा के रूप में—राज्य व्यक्ति से पहले का है। जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है अरस्तू की अन्य यूनानी दार्शनिकों के समान ही मान्यता है कि व्यक्ति अपूर्ण है; वह राज्य में पूर्णता की प्राप्ति करता है। तर्क की यह मान्यता है कि संपूर्ण वस्तु आवश्यक रूप से अपने अंग से पूर्व की होती है। राज्य व्यक्ति से पूर्व का है, इस बात का प्रमाण यह है कि व्यक्ति राज्य से अलग रहने पर आत्मनिर्भर नहीं होता और इसीलिए उसकी स्थिति संपूर्ण की तुलना में एक अंग जैसी ही है। अरस्तू ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है कि जो व्यक्ति समाज से अलग है—चाहे इसलिए कि उसमें सामाजिक जीवन में भागीदार बनने की क्षमता नहीं है अथवा इस कारण कि पूर्णतया आत्म निर्भर होने से उसको समाज की आवश्यकता ही नहीं है—वह या तो पशु है या फिर देवता। अरस्तू ने यह घोषणा अपने मूल कथन की पुष्टि में ही की है कि राज्य व्यक्ति का पूर्वगामी है।

दूसरे, सावयवी दृष्टि से भी राज्य व्यक्ति से पूर्व का है। राज्य एक सावयव है, गाँव, परिवार एवं व्यक्ति उसके अंग-प्रत्यंग। प्रकृति के क्रम में सावयव अंग-प्रत्यंग से अनिवार्यतः पहले होता है। व्यक्ति के अंग-प्रत्यंग (हाथ, पैर, नाक, कान आदि) का महत्त्व उसके शरीर के कारण है, न कि शरीर का उसके अंग-प्रत्यंग के कारण। व्यक्ति का हाथ कट जाने पर शरीर समाप्त नहीं होता किन्तु शरीर के समाप्त हो जाने पर उसके अंग-प्रत्यंग जीवित नहीं रह सकते। राज्य शरीर है; गाँव, परिवार व्यक्ति अंग प्रत्यंग

राज्य को व्यक्ति का पूर्वगामी घोषित करने के पीछे अरस्तू की एकमात्र धारणा व्यक्ति की तुलना में राज्य की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करना है। **पालिटिक्स** में यह धारणा सर्वत्र ही व्याप्त है। कहना नही होगा, व्यक्ति के संदर्भ में राज्य की श्रेष्ठता का प्रतिपादन, प्लेटो के समान ही, अरस्तू के राजनीतिक चिंतन का लक्ष्य था।

मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है—अरस्तू मनुष्य को प्रकृतिश. एक राजनीतिक प्राणी मानता है। राज्य एक राजनीतिक संस्था है। और चूंकि राज्य में निवास करना मनुष्य का स्वभाव है, इसलिए अरस्तू का यह निष्कर्ष पूर्णतः तार्किक है कि मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है।

राज्य के अंतर्गत जीवन व्यतीत करना मानव स्वभाव के अनुरूप है। यह मानव प्रकृति की अपेक्षा है कि वह राज्य में निवास करे। मनुष्य का यही स्वभाव उसे अन्य पशुओ से पृथक् करता है। पशुओं में परिश्रम करने अथवा समूह मे रहने की कितनी ही प्रवृत्ति क्यो न हो, उन्हे 'राजनीतिक प्राणी' की संज्ञा नही दी जा सकती क्योंकि मनुष्य की भांति 'राज्य' का जीवन व्यतीत करने की प्रवृत्ति उनमे नहीं होती। उनमे सामाजिकता की प्रवृत्ति तो होती है, राजनीतिकता की नहीं। उसने इसी संदर्भ में घोषणा की है कि "जो व्यक्ति समाज में रहना नही चाहता अथवा जिसे समाज या राज्य की इसलिए आवश्यकता नहीं है कि वह अपने को आत्मनिर्भर तथा पूर्ण समझता है, वह या तो देवता हो सकता है या फिर पशु।"

अपने इस निष्कर्ष की पुष्टि मे कि 'मनुष्य एक राजनीतिक जीवन जीता है' अरस्तू मनुष्य तथा मधुमक्खी की प्रवृत्ति की तुलना करता है। वह कहता है व्यक्ति के समान ही एक मधुमक्खी भी अपने कानूनों द्वारा नियंत्रित है किंतु फिर भी मधुमक्खियाँ राजनीतिक जीवन व्यतीत नहीं करती, क्योंकि वह उन कानूनों को नही समझतीं जो उन्हें नियन्त्रित करते है। यह मनुष्यों के राजनीतिक जीवन का एक अनिवार्य पक्ष है कि वह उन कानूनों के संबंध में आपस में बौद्धिक चर्चा करें जिनके द्वारा वह नियंत्रित होते हैं। इसकी एक आवश्यक शर्त यह है कि शासन अपने आदेशों की बौद्धिक दृष्टि से पुष्टि करे और प्रजा को इस बात के लिए राजी करे कि वह उन्हें मान ले।

सभी मनुष्यों में सामाजिक जीवन के प्रति यह एक स्वाभाविक आसक्ति है। राज्य मे मनुष्यों के आपसी संबंधों के नियंत्रण की आवश्यकता होती है। यह न्यायिक कार्य है और इसीलिए स्वभावतः राजनीतिक है। इसका संबंध दूसरों से है। राज्य का मुख्य आधार यही न्याय है।

राज्य का उद्देश्य एवं कार्य—अरस्तू राज्य के सीमित कार्य-क्षेत्र का पक्षपाती नहीं था। उसके राज्य विषयक विचारों से स्पष्ट है कि वह राज्य द्वारा अधिकाधिक कार्य किए जाने का समर्थन करता है। अरस्तू की राज्य-कार्य विषयक धारणा आज के लोक कल्याणकारी राज्य में राज्यों की कार्य विषयक धारणा के अधिक समीप है। आज की मान्यता है कि राज्य वह सभी कार्य करे जिनका लोक-कल्याण से संबंध है। अरस्तू की मान्यता थी कि राज्य का उद्देश्य व्यक्ति को सुखमय जीवन की प्राप्ति कराना है। उसी के शब्दों मे—'सद्गुणयुक्त जीवन की प्राप्ति में राज्य एक भागीदार है।" राज्य का अस्तित्व मात्र

जीवन के लिए न होकर 'अच्छे जीवन' के लिए है। फॉस्टर ने लिखा है : "यदि (राज्य का) मात्र 'जीवन' लक्ष्य होता तो दास और अन्य जंगली पशु भी राज्य का गठन कर लेते। परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि उनकी 'अच्छाई' अथवा 'स्वतन्त्र जीवन' में कोई भागीदारी नहीं और न राज्य का अस्तित्व संविदाओं और अन्याय से सुरक्षा अथवा विनिमय और आपसी लेन-देन के लिए है।"[1]

'अच्छे जीवन' की प्राप्ति के लिए आर्थिक प्रसाधनों की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता इसलिए इन साधनों को जुटाना या उपलब्ध कराना राज्य का आधारभूत कार्य है। किंतु हमें ध्यान रखना चाहिए कि अरस्तू के अनुसार "राज्य की उत्पत्ति का कारण ये भौतिक आवश्यकताएँ नहीं हैं।"[2] व्यक्ति का लक्ष्य अपना नैतिक, बौद्धिक एवं आत्मिक विकास करना है; राज्य का उद्देश्य व्यक्ति को इसी लक्ष्य की प्राप्ति कराना है। आवश्यकताओं की पूर्ति कर देने और कार्यों के अनुकूल उचित वितरण कर देने मात्र से इन लक्ष्य की प्राप्ति संभव नहीं। इसके लिए आवश्यक है सदस्यों में परस्पर एक-दूसरे के लिए और संपूर्ण समुदाय के लिए मैत्री और प्रेम की भावना हो; मित्रता और प्रेम के अभाव में श्रेष्ठ जीवन संभव नहीं हो सकता। राज्य में एकता स्थापित करने की दृष्टि से भी मैत्री और प्रेम आवश्यक है।

अरस्तू की मान्यता थी कि इन सद्‌गुणों के पूर्ण विकास में शिक्षा को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। वह नागरिकों को शिक्षित करना राज्य का प्रथम कर्त्तव्य मानता है। प्लेटो के समान ही, अरस्तू शिक्षा को श्रेष्ठ जीवन की आधार-शिला मानता है। कानूनों के उल्लंघन करने वालों को दंड देना तथा उनका सुधार करना राज्य का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है।

अरस्तू ने 'अच्छे जीवन' की प्राप्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में सहायता अथवा बाधा पहुँचाने वाले गुणों एवं दोषों की विस्तृत विवेचना अपनी नीति-विषयक रचनाओं में की है। प्रस्तुत संदर्भ में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अरस्तू ने राज्य के उद्देश्यों की ही विस्तृत चर्चा की है, कार्यों की सूची का निर्धारण नहीं किया है, यद्यपि किन्हीं महत्त्वपूर्ण कार्यों का उसने उल्लेख अवश्य ही किया है।

अरस्तू के दासता विषयक विचार—पॉलिटिक्स की प्रथम पुस्तक में अरस्तू दास प्रथा की चर्चा करता है। अरस्तू को यूनानी जीवन और सभ्यता से बेहद लगाव था और इसके लिए आवश्यक था कि वह दास प्रथा और उसके औचित्य का समर्थन करे जो इस यूनानी सभ्यता का आधार-स्तंभ बनी हुई थी। इस प्रथा की समाप्ति का अर्थ था यूनानी

---

१. फॉस्टर : "If life only were the object, slaves and brute animals might form a State but they cannot, for they have no share in happiness in a life of free choice. Nor does a State exist for the sake of alliance and security from injustice nor yet for the sake of exchange and mutual intercourse; for them the Tyrrhenians and the Carthaginians and all who have commercial treaties with one-another would be the citizens of one State."—मास्टर्स ऑफ पोलिटीकल थॉट; पृ० १२९-१३०

२ सिंक्लेयर यूनानी पृ० २८६

सभ्यता के आर्थिक सामाजिक और परिणामस्वरूप राजनीतिक ढाचे म आमूल परिवतन इसक लिए अरस्तू तयार नहा था।

उसके अपने ही युग मे दास प्रथा के खिलाफ अभियान प्रारंभ हो चुका था। सोफिस्ट मानवीय समानता के सिद्धांत का प्रचार करके दास प्रथा को समाप्त कर देना चाहते थे; वह इसे अप्राकृतिक एवं अनुचित ही नहीं बल्कि अनैतिक संस्था भी मानते थे। अस्तु अरस्तू के लिए यह अनिवार्य हो गया था कि वह दास प्रथा और उसके औचित्य को ठोस बौद्धिक आधारों पर प्रतिष्ठित करके यह घोषित करे कि दास प्रथा प्राकृतिक है।

दास प्रथा आवश्यक है—अरस्तू ने दास प्रथा को आवश्यक, प्राकृतिक एवं स्वामी तथा दास दोनों के लिए उपयोगी बतलाया है। अरस्तू के अनुसार संपत्ति परिवार का एक अभिन्न अंग है। जीवित रहने के लिए आवश्यकताओं की पूर्ति अति आवश्यक है और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संपत्ति आवश्यक है। संपत्ति के दो भाग हैं—

(१) निर्जीव संपत्ति (घर, जमीन, सामान आदि), (२) सजीव संपत्ति (दास),

यदि संपत्ति के यह निर्जीव उपकरण अपने मालिक की आज्ञा मानकर या उसकी इच्छा जानकर स्वतः ही कार्य के संपादन में सक्षम होते तो सजीव संपत्ति की आवश्यकता ही न थी। उदाहरण के लिए यदि पतवार स्वतः ही नाव को खे ले जाती या करघे की नली स्वयं ही बुनाई कर लेती या मिजराब स्वतः ही सितार को स्पर्श कर लिया करता तो प्रमुख कारीगर को नौकरों की और मालिक को दासों की आवश्यकता न होती। सजीव उपकरणों की इसलिए आवश्यकता है कि निर्जीव उपकरण स्वतः ही क्रियाशील नहीं; सजीव उपकरण के सहारे ही संपत्ति के निर्जीव उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। इन उपकरणों में अरस्तू एक अन्तर और करता है—

(१) उत्पादन के उपकरण।

(२) कार्य संपादन के उपकरण।

उपरोक्त उदाहरणों मे करघे की नली आदि उत्पादन के कारण हैं, क्योंकि यह उपकरण उत्पादन मे सहयोग देते हैं और दास कार्य संपादन के उपकरण हैं, इसलिए कि "जीवन कार्य है (उत्पादन नहीं) और दास (जीवन के उद्देश्य की सिद्धि का उपकरण होने के कारण) कार्यार्थ उपयोग में आने वाला उपकरण है।" अर्थात् दास के श्रम से किसी वस्तु का उत्पादन नहीं होता। वह तो (नागरिक के) जीवन को सुखमय बनाने एवं जीवन की विभिन्न क्रियाओं के संपादन में सहायक के रूप में उपयोगी है।

उपरोक्त विवरण से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि दास (नागरिक) जीवन का एक 'आवश्यक अंग' है किंतु नागरिक और दास तथा पशु और दास में क्या अंतर है? आदि संबद्ध प्रश्नों का समाधान अरस्तू ने निम्न प्रकार से किया है—

दास की परिभाषा—अरस्तू दास प्रथा को प्राकृतिक मानता है। उसकी मान्यता है कि प्रकृति ने व्यक्ति को दास बनाया है; दास प्रकृतिशः दास है। कुछ व्यक्ति प्रकृति से ही दूसरों की संपत्ति बनने के योग्य होते है। अरस्तू ने इसी संदर्भ मे दास की परिभाषा इस प्रकार दी है—"जो मनुष्य होकर भी संपत्ति की वस्तु है वह किसी अन्य व्यक्ति का है;" "जो प्रकृतिशः अपना स्वयं का न होकर किसी अन्य का है वह प्रकृतिशः

दास है" तथा यह कि चूकि "संपत्ति की वस्तु क्रिया के लिए चाहा गया उपकरण (औजार) है, उसे उसके स्वामी अथवा मालिक से अलग किया जा सकता है।"

दास प्रथा प्राकृतिक है—जैसा कि 'दास' की परिभाषा से ही स्पष्ट है, अरस्तू दास तथा स्वामी में अन्तर मानता है। यह अन्तर मनुष्यकृत न होकर प्रकृति जन्य है, कुछ व्यक्ति प्रकृति से ही स्वामी होते है और कुछ दास। अरस्तू ने इस संदर्भ में स्वामी और दास तथा दास और पशु मे अंतर स्पष्ट किया है।

एक स्वतंत्र नागरिक इसलिए स्वामी है कि वह प्रकृति की उन सभी उपलब्धियो से विभूषित है जिनसे वह उच्चतर जीवन की प्राप्ति के लिए सक्रिय है, जो विवेकी होने के कारण जीवन की श्रेष्ठतर गतिविधियों मे भागीदार है। दूसरी ओर (कोई) व्यक्ति प्रकृतिश: इसलिए दास है कि उसमे स्वय के विवेक का अभाव है और इसीलिए वह स्वतंत्र नागरिक जीवन की उन उच्चतर गतिविधियों में भाग लेने में पूर्णत: असमर्थ है।

स्वामी तथा दास में प्रकृति ने शारीरिक अंतर भी किया है। दास की शारीरिक क्षमता एवं शारीरिक गठन इस ढंग का है कि वह शारीरिक श्रम का सपादन वांछित ढग मे कर सके। इसके विपरीत स्वामी का शारीरिक गठन सामान्यत: इस ढंग का नही होता। किंतु इसके अपवाद से भी अरस्तू इंकार नही करता। स्पष्ट है, शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही दृष्टियों से स्वामी तथा दास मे अंतर है। कुछ व्यक्ति (स्वामी) प्रकृति से ही आदेश देने एवं निर्देशन करने की क्षमता रखते है तथा कुछ (दास) की क्षमता, प्रकृति से ही, आज्ञा पालन तक ही सीमित होती है।

उसने लिखा है—"दास जिस उपयोग में लिया जाता है वह पालतू पशुओ से लिए जाने वाले उपयोग से किंचित् मात्र भी भिन्न नहीं है। वह (दास) तथा वे (पशु) अपने स्वामी को उसकी दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ति मे शारीरिक सहायता प्रदान करते हैं।" किन्तु (दोनों में) क्षमताओं के एक विशेष अंतर को उसने स्वीकार किया है। वह अंतर यह है कि जहाँ पशु मे तर्क को समझने की बिलकुल ही क्षमता नहीं होती। वह अपनी मूल प्रवृत्तियों के वशीभूत होकर ही कार्य करते हैं, वहाँ, इसके विपरीत, दास मे स्वयं में तर्क का अभाव तो होता है किंतु उसमे अन्य (स्वामी) के विवेक को समझने की क्षमता होती है।

अरस्तू के अनुसार उपरोक्त विभिन्नताएँ प्राकृतिक है; स्वामी, दास तथा पशु प्रकृतिश: क्रमश: स्वामी, दास तथा पशु हैं। स्वामी तथा दास के संबंध शासक तथा शासित के संबंध हैं। इन संबंधों को भी अरस्तू ने प्राकृतिक कहा है। अरस्तू की मान्यता है कि प्रकृति सर्वत्र ही उच्चतर एवं निम्नतर की भिन्नता द्वारा शासित है; व्यक्ति पशुओ से श्रेष्ठ है, पुरुष स्त्री से, आत्मा शरीर से तथा विवेक तृष्णा से श्रेष्ठ है। इन सभी वर्गों मे यह सर्वथा ही उचित है कि श्रेष्ठतर निम्नतर पर शासन करे और ऐसा शासन दोनो के ही लिए हितकारी है। मनुष्यों में कुछ ऐसे होते हैं जिनका कार्य अपने शरीर का उपयोग करना है और जो इससे कुछ अच्छा नहीं कर सकते। यही व्यक्ति प्रकृतिश: दास हैं।

दासता के प्रकार—अरस्तू के अनुसार दासता दो प्रकार की है—

१ प्रकृति जन्य दासता

1 कानून जन्य दासता

प्रकृति जन्य दासता की चर्चा की जा चुका है। कानून जन्य दासता का संबंध युद्ध-बंदियों से था। अरस्तू का कथन था कि ऐसे बंदी—यूनानियों को दास न कहा जाए। यूनानी यूनानी को दास कहना पसंद नहीं करते; यह संज्ञा केवल बर्बर व्यक्तियों के लिए ही है;" क्योंकि "कुछ सर्वत्र ही दास हैं, कुछ कहीं भी नहीं;" बर्बर सर्वत्र ही दास हैं, यूनानी कहीं भी नहीं।

किंतु यह अंतर एक 'तथ्य' न होकर अरस्तू की अपेक्षा मात्र ही कही जायगी, क्योंकि यूनानी एक-दूसरे को दास बनाते थे तथा दासों में अनेकों ऐसे थे जो प्रकृति से ही नहीं बल्कि जन्म से भी स्वतंत्र थे। ईबिसटीन (Ebenstein) ने लिखा है : "अरस्तू ने दासता विषयक अपने सामान्य सिद्धांत में—जो कि नैतिक तथा बौद्धिक श्रेष्ठता पर आधारित था तथा अपने समय की दासता में जो कि शक्ति, परिपाटी तथा उपयोगिता पर आधारित थी तथा जिसका नैतिक श्रेष्ठता से कोई संबंध नहीं था—निहित समस्या का समाधान नहीं किया"।[1]

स्वामी तथा दास के संबंध—दासता विषयक विवरण में अरस्तू स्वामी तथा दास के संबंधों पर भी चर्चा करता है। दास संपत्ति है—सजीव संपत्ति अत: वह पूर्णत: अपने स्वामी का है। वह स्वामी का केवल दास ही नहीं है बल्कि पूर्णत: उसी के स्वत्वाधीन होता है। संपत्ति होने के कारण उसे स्वामी से पृथक् भी किया जा सकता है (दासों के क्रय-विक्रय का आधार यही मान्यता है)। अरस्तू ने स्वयं लिखा है. "संपत्ति की वस्तु क्रिया के लिए चाहा गया औजार है और उसे स्वामी से अलग किया जा सकता है।"

दास पूर्णत: अपने स्वामी के अधीन है और उसका एक मात्र लक्ष्य स्वामी की इच्छाओं के अनुरूप कार्य करना है। उसकी स्थिति संपत्ति के उपकरण जैसी ही है इसलिए अरस्तू लिखता है कि "स्वामी दास पर निरंकुश की भाँति शासन करे।" किंतु उसकी यह भी मान्यता है कि स्वामी तथा दासों में मैत्रीपूर्ण संबंध होना चाहिए तथा पारस्परिक हित की भावना का होना दोनों के हित में है। दासों के कारण स्वामी को भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा अन्य निम्न कार्यों की चिंता से छुटकारा मिल जाता है। इस अवकाशमय जीवन का सदुपयोग वह जीवन की उच्चतर उपलब्धियों की प्राप्ति में करते हैं। दूसरी तरफ दासों को यह अवसर प्राप्त होता है कि वह (अपने स्वामी के) उच्चतर विवेक के संपर्क में आकर अपना विकास कर सकते हैं। स्वामी से अपेक्षा की गई है कि वह दासों का उपयोग शक्ति अथवा संपत्ति की प्राप्ति के लिए न करके मानवीय श्रेष्ठता की प्राप्ति के लिए ही करे। फॉस्टर ने लिखा है : "यदि वह ऐसा नहीं करता तो दास दासता द्वारा उपलब्ध एकमात्र लाभ से वंचित रह जाता है, उदाहरणार्थ अपने से उच्चतर गुण द्वारा अपने जीवन का निर्देशन और परिणामत: (स्वामी तथा दास के) संबंध पारस्परिक लाभ के लिए नहीं रह जाते।"[2]

१. ईबिसटीन . ग्रेट पोलिटीकल थिंकर्स; पृ० ७३

२. फॉस्टर : मास्टर्स ऑफ पोलिटीकल थॉट; पृ० १३८

अरस्तू का मत है कि स्वामी तथा दास दोनों को प्रशिक्षण की आवश्यकता है— दासों को सेवा संबंधी कार्यों का तथा स्वामियों को दासों के समुचित उपयोग करने का प्रशिक्षण।

दास प्रथा की आलोचना—अरस्तू के राजनीतिक दर्शन की सबसे कमजोर कड़ी उसके दासता विषयक विचार ही हैं और इसलिए इन विचारों की अनेकानेक आधारों पर आलोचना की गई है। इन विचारों में असंगतियाँ तो है ही, इनका आधार ही गलत है जैसा कि निम्न से स्पष्ट है—

(१) यूनानी जाति को वह श्रेष्ठतम जाति मानता है। "विदेशियों को यूनानियों की परिचर्या करने दो ; वे दास है ; हम स्वतंत्र है।"

(२) अरस्तू के दासता विषयक विचार मानव समानता और स्वतंत्रता के सिद्धांतों पर कुठाराघात करते हैं। उसकी मान्यता है कि व्यक्ति प्रकृतिशः असमान है। कुछ जन्म से शासक है और कुछ जन्म से दास। स्वतंत्रता का अधिकार केवल यूनानियों को प्राप्त है। वही स्वतंत्र हैं, अन्य नहीं।

(३) अरस्तू की मान्यता है कि दास इसलिए दास है कि स्वतंत्र नागरिक का प्रमुख लक्षण—विवेक—उसे प्रकृति से प्राप्त नहीं है। किंतु वह उसे पूर्णतः विवेकशून्य भी नहीं मानता (पशु से दास की भिन्नता का आधार यही है) ; उसमें मात्र इतना विवेक होता है कि वह दूसरे व्यक्ति में तर्क के दर्शन कर सकता है, यद्यपि उसमें स्वयं तर्क का अभाव होता है। स्पष्ट है, अरस्तू दास में उतने ही विवेक की उपस्थिति को स्वीकार करता है जितने विवेक की उसके सिद्धांत में गुंजाइश है; न अधिक, न कम। अरस्तू के दर्शन में इससे अधिक तर्कहीन मान्यता दूसरी नहीं।

(४) यदि इसे स्वीकार कर लिया जाय (कि स्वामी विवेकयुक्त होता है और दास विवेकहीन) तब भी यह समस्या बनी ही रहती है कि इस बात का निर्धारण कैसे हो कि 'स्वामित्व' का अधिकारी कौन है और 'दासत्व' का अधिकारी कौन। अरस्तू कोई ऐसा मापदंड हमें नहीं बतलाता। स्पष्ट है, अरस्तू के दासता विषयक विचार व्यावहारिकता की इस कसौटी पर खरे नहीं उतरते।

(५) अरस्तू के दासता विषयक विचारों में अनेक स्थलों पर विरोधाभास स्पष्ट दिखाई देता है। दो उदाहरणों से इसे स्पष्ट किया जा सकता है—

(अ) एक स्थान पर वह लिखता है : "स्वामी दास पर निरंकुश की भांति शासन करे।" एक अन्य स्थान पर वह लिखता है कि दास के साथ 'मैत्रीपूर्ण व्यवहार' किया जाय। 'निरंकुश शासन' और 'मैत्रीपूर्ण व्यवहार' में तादात्म्य स्थापित करना संभव प्रतीत नहीं होता।

(ब) अरस्तू ने घोषणा की है : "दास प्रकृतिशः दास है।" किंतु एक अन्य स्थान पर वह लिखता है कि दासों को स्वामी के साथ अच्छे आचरण के लिए स्वतंत्र कर दिए जाने का प्रलोभन देना चाहिए। क्या उन लोगों को नियति से छुटकारा दिया जा सकता है जिन्हें प्रकृति ने ही दास पैदा किया है ?

अरस्तू जैसे वैज्ञानिक दार्शनिक द्वारा दास प्रथा जैसी मूलत अवैज्ञानिक संस्था के समर्थन में ईबिंसटीन का यह कथन पूर्णत प्रासंगिक है . अरस्तू द्वारा दास प्रथा का स्वीकार किया जाना यह बतलाता है कि उस जैसा महान् और बुद्धिमान दार्शनिक भी अपने समय की संस्थाओं तथा उन्हें तर्कसंगत सिद्ध करने वाले पूर्वाग्रहों का बंदी है।"[1]

अरस्तू के नागरिकता विषयक विचार : पॉलिटिक्स की तीसरी पुस्तक में अरस्तू नागरिकता पर विस्तार से चर्चा करता है—

अरस्तू की मान्यता है कि नागरिकता की कोई ऐसी परिभाषा नहीं दी जा सकती जो सभी राज्यों पर समान रूप से लागू होती हो क्योंकि भिन्न-भिन्न राज्यों की प्रकृति अथवा स्वरूप के अनुसार नागरिकता के लिए आवश्यक गुण भी भिन्न-भिन्न होते हैं। जन्म, जन्म-स्थान, वंश, निवास, आयु आदि से संबंधित विचार केवल नागरिकता विषयक व्यावहारिक नियमों के निर्धारण में सहायता दे सकते है; इसके आधार पर नागरिकता की परिभाषा नहीं दी जा सकती। अपनी इस मान्यता को उसने उदाहरणों द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया है—

(१) किसी स्थान विशेष मे निवास करने मात्र से नागरिकता प्राप्त नहीं हो जाती, क्योंकि विदेशी और दास भी तो स्थान विशेष में निवास करते है, किंतु वह नागरिक नहीं होते।

(२) उन व्यक्तियों को भी नागरिक नहीं माना जा सकता, जिन्हें सार्वजनिक कानूनों के अंतर्गत दूसरों पर अभियोग चलाने या स्वयं अभियोगी बनने का अधिकार प्राप्त है, क्योंकि पारस्परिक राज्यों के बीच संधियों द्वारा विदेशियों को भी ऐसा अधिकार प्राप्त हो जाता है।

(३) नागरिक माता-पिता की संतान होने मात्र से भी नागरिकता का निश्चय नहीं किया जा सकता। अरस्तू यह स्वीकार करता है कि यह तत्त्व उपरोक्त अन्य दो तत्त्वों की तुलना में नागरिकता निश्चय करने का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। किंतु इसमें यही कठिनाई तब पैदा हो जाती है जब हम इन नागरिक माता-पिता या उनके पूर्वजों की नागरिकता निश्चय करने का प्रयास करते है।

अरस्तू की नागरिकता विषयक धारणा 'क्रियाशीलता' पर आधारित है। अतः इस संदर्भ में वह उन दो वर्गों की भी चर्चा करता है जो नागरिकता के अधिकार से वंचित है। यथा—

(१) मताधिकार से वंचित अथवा राज्य से निष्कासित व्यक्ति नागरिक नहीं है।

(२) अल्पवयस्क बालकों को तथा अतिवयस्क वृद्धों को भी वह सही अर्थों में नागरिक नहीं मानता। वह इस तथ्य को स्वीकार करता है कि यह दोनों ही नागरिकता की परिभाषा के अधिक निकट है किंतु इन्हें नागरिक इसलिए नहीं माना जा सकता कि अल्पवयस्क बालक अपनी शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक अपरिपक्वता तथा वृद्ध अपनी शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक दुर्बलता के कारण नागरिक कर्त्तव्यों के परिपालन मे वांछित भागीदारी में असमर्थ होते हैं।

---

१ ईबिंसटीन · ग्रेट पोलिटीकल थॉट · पृ० ७३

इस प्रकार जिस नागरिक (अथवा नागरिकता) की परिभाषा अरस्तू देना चाहता है वह सही अर्थों मे नागरिक है, जिसके संबंध में कोई भी अर्हवाद नही है और जिसकी प्रमुख विशिष्टता यह है कि वह 'न्यायिक प्रशासन' एवं 'राजकीय सेवा' में हाथ बटाता है।

अरस्तू ने नागरिकता की परिभाषा इस प्रकार दी है—

"नागरिक वह व्यक्ति है जो न्यायालयों के निर्णय में भाग ले सकता है और जिसकी नियुक्ति सार्वजनिक पदों पर हो सकती है।"

उपरोक्त परिभाषा से यही पूर्णत स्पष्ट है कि अरस्तू 'क्रियाशीलता' से अधिक सम्बद्ध है; उद्भव आदि मे उसकी विशेष अभिरुचि नहीं है। गैटिल ने लिखा है : "चूँकि अरस्तू के विचार यूनानी जीवन के वास्तविक तथ्यों पर आधारित थे इसलिए उसका विश्वास था कि नागरिकता का अर्थ है सभाओं तथा जूरियों के काम में भाग लेना अथवा राजनीतिक अधिकारों का सक्रिय प्रयोग करना। वह उसी व्यक्ति को नागरिकता का अधिकारी मानता है जिसमे शासन करने और शासित होने की योग्यता विद्यमान हो।"[१] 'शासन करने' एवं 'शासित होने' के नागरिक-गुणों के संबंध में अरस्तू पूर्णत: स्पष्ट है। दोनों ही गुण एक-दूसरे से संबद्ध है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं। उचित ही कहा गया है : "वह जिसने आज्ञा पालन नहीं सीखा, अच्छा कमांडर नही बन सकता।" उसका विश्वास था कि "नागरिकता की परिभाषा देना संभव है और यह कहना मूर्खता-पूर्ण है कि किसी भी व्यक्ति को नागरिकता की संज्ञा देकर नागरिक बनाया जा सकता है। यदि नागरिक की श्रेष्ठता अथवा नागरिक के गुण नाम की कोई वस्तु है तो केवल वही लोग नागरिक हो सकते है जिन्होने इस गुण को अर्जित किया है।"

यह निष्कर्ष भी अरस्तू की इसी मान्यता का सीधा परिणाम है कि श्रमिक वर्ग को नागरिकता के अधिकार नहीं दिए जाने चाहिए क्योंकि उसको दूसरों के आदेशों पर इतना अधिक निर्भर रहना पड़ता है कि उसमें शासन करने की योग्यता का विकास ही नही हो पाता। उसका तो यह भी विश्वास है कि ऐसे व्यक्तियों को (जो केवल लाभार्थ और तुच्छ कार्यों में लगे हुए है) शासन करने की योग्यता के गुण का अर्जन करना भी संभव नही है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि इनके कार्य न केवल उपयोगी हैं बल्कि लाभप्रद भी होते हैं तथा राज्य को ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। राज्य के अस्तित्व के लिए उनकी आवश्यकता है, किंतु इससे ही वे नागरिक नहीं बन जाते। ऐसे सभी व्यक्ति (चाहे वे अमीर हों अथवा गरीब, चतुर हों अथवा मूर्ख, जो निरंतर किसी वृत्ति का अनुसरण करने मे लगे रहते हैं और उससे धनोपार्जन करते हैं) केवल 'पेशेवर' हो सकते है और इसीलिए नागरिक नहीं हो सकते। सिक्लेयर ने लिखा है : "अपने इस विश्वास को त्यागने को अरस्तू कदापि तैयार नही है।"[२] इस विश्वास ने उसकी नागरिकता की परिभाषा को और भी संकुचित बना दिया है।

---

१. गैटिल : राजनीतिक चिंतन का इतिहास, पृ० ७७

२ सिक्लेयर यूनानी पृ० २१२

नागरिकता की परिभाषा के अध्ययन हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा देता है कि यह परिभाषा केवल लोकतंत्रीय राज्यों के लिए थी, क्योंकि लोकतंत्रीय राज्यों में ही नागरिक न्यायिक प्रशासन एवं राजकीय सेवा में हाथ बंटाता है। अन्य राज्यों में यह भागीदारी इस रूप में नहीं। स्पष्ट है, अलग-अलग राज्यों में नागरिकों का स्वरूप भिन्न-भिन्न होगा। उदाहरण के लिए, किन्हीं राज्यों में श्रमिक वर्ग नागरिक होगा। किंतु अरस्तू यह घोषित करने से पीछे नहीं रहता कि कोई भी श्रेष्ठ राज्य इन्हें नागरिकता प्रदान नहीं करेगा और यदि इन्हें नागरिकता प्राप्त हो जाती है तो "नागरिकता की गुण विषयक परिभाषा प्रत्येक नागरिक पर लागू नहीं होगी।"

अरस्तू द्वारा दिया गया 'अच्छे नागरिक' और 'अच्छे व्यक्ति' का अंतर भी उसकी नागरिकता विषयक धारणा को और स्पष्ट करता है। यहाँ अरस्तू उन गुणों को ढूढ़ने का प्रयास करता है जिनका एक अच्छे नागरिक में होना वांछनीय है। नागरिक का गुण आवश्यक रूप में सापेक्ष होगा। स्पष्ट है, यदि संविधानों के अनेक प्रकार हैं तो अच्छे नागरिक का भी कोई एक ऐसा विशिष्ट लक्षण नहीं होगा जिसे श्रेष्ठ लक्षण कहा जा सके। किंतु इसके विपरीत हम कहते है कि वही व्यक्ति अच्छा है जो श्रेष्ठ है; अच्छे व्यक्ति के गुण (लक्षण) सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक होते हैं। अरस्तू ने स्वयं लिखा है: "इस विचार-विमर्श से यह स्पष्ट हो गया है कि अच्छे नागरिक एवं अच्छे व्यक्ति की श्रेष्ठता सभी मामलों मे समान नही।"

आलोचना—अरस्तू की नागरिकता विषयक धारणा मूलतः यूनानी मान्यताओं पर आधारित है और इस संदर्भ में उसने जिन समस्याओं पर विचार किया है वह तात्कालिक नगर-राज्यों की ही समस्याएँ थी। यही कारण है कि उसकी नागरिकता विषयक अवधारणा आधुनिक अवधारणा से बहुत अधिक भिन्न है और आलोचना का प्रमुख कारण भी यही है। अरस्तू की नागरिकता विषयक धारणा में निम्न दोष बतलाए गए है —

(१) उसकी नागरिकता विषयक धारणा बहुत ही संकुचित है। वह राज्य के बहुत ही कम व्यक्तियों को नागरिकता का अधिकार प्रदान करता है।

(२) आज के प्रतिनिधि प्रजातंत्र अथवा परोक्ष प्रजातंत्र के युग में अरस्तू की नागरिकता विषयक धारणा को लागू नही किया जा सकता। अरस्तू की नागरिकता की धारणा का आधार प्रतिनिधि सरकार नही है। आज के नागरिक की अपने प्रतिनिधियों के निर्वाचन में प्रत्यक्ष भागीदारी है; न्यायाधिकरण में भागीदारी के अवसर आज सभी को प्राप्त नही होते।

अरस्तू के संविधान एवं शासनों के प्रकार :

'संविधान' को अरस्तू के दर्शन मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जिस अर्थ मे आज हम 'संविधान' शब्द का प्रयोग करते हैं उस अर्थ में अरस्तू ने 'संविधान' शब्द का प्रयोग नही किया है। आज हम नियमों के उस समूह को संविधान कहते हैं जिनके द्वारा किसी देश की शासन व्यवस्था संचालित होती है। हमारे लिए 'संविधान' और 'सरकार'

अलग-अलग शब्द हैं जो अलग-अलग अर्थों को स्पष्ट करते हैं। अरस्तू संविधान को सरकार का पर्याय मानता है।[1] इबिसटीन ने लिखा है : "संविधान और सरकार के एक ही अर्थ है।"[2] वह आगे लिखता है, "जब नागरिक सामान्य हित के लिए राज्य का प्रशासन चलाते हैं तब सरकार को हम संविधान के सामान्य नाम से पुकारते हैं।" अरस्तू ने लिखा है : "शासनारूढ़ नागरिक जनसमूह ही नगर-व्यवस्था (संविधान) है।" यही प्रशासनिक संस्था या दूसरे शब्दों में, प्रशासनकर्त्ता वर्ग ही संविधान को स्वरूप प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, जहाँ जनता ही शासक है वहाँ संविधान प्रजातंत्रात्मक है और जहाँ कुछ का शासन है वहाँ सामंत तंत्र (Oligarchy)। संविधान शासक वर्ग के विशिष्ट जीवन की अभिव्यक्ति करता है; संविधान के परिवर्तन का अर्थ होता है पुरानी जीवन-व्यवस्था में परिवर्तन; नया संविधान नई जीवन-व्यवस्था का निर्धारण करता है। सेबाइन ने लिखा है : "संविधान···जीवन की एक विधि है जो न्यूनाधिक रूप में राज्य के बाहरी संगठन का आभास देती है।"[3] इस प्रकार संविधान राज्य का 'सार' है और संविधान के परिवर्तन के साथ-ही-साथ राज्य के स्वरूप में भी परिवर्तन आ जाता है।

परिभाषा—अरस्तू ने 'संविधान' शब्द के अर्थ को अनेक दृष्टियों से स्पष्ट करने का प्रयास किया है। **पॉलिटिक्स** की तीसरी पुस्तक में वह लिखता है : "संविधान की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि संविधान सामान्य रूप से नगर के शासन-पदों का, और विशेषतया सबसे उच्च प्रभुपद का, संगठन है।" **पॉलिटिक्स** की चौथी पुस्तक में संविधान तथा कानून का अंतर स्पष्ट करते हुए अरस्तू संविधान की परिभाषा इस प्रकार देता है : "संविधान किसी राष्ट्र के अंतर्गत शासक पदों की व्यवस्था है, जिसके द्वारा उन पदों का वितरण निर्धारित किया जाता है, यह निर्णय लिया जाता है कि राष्ट्र में सर्वोच्च सत्ता कौन होगी और यह निश्चित किया जाता है कि प्रत्येक समाज द्वारा स्वीकृत लक्ष्य क्या होना चाहिए।" यह दूसरी परिभाषा पहली परिभाषा की अधिक स्पष्ट व्याख्या करती है। इन परिभाषाओं के आधार पर संविधान के निम्न लक्षण गिनाए जा सकते हैं—

(१) संविधान नगर (राज्य) का संघटक है। संविधान द्वारा ही राज्य की सामान्य रूपरेखा का निर्धारण होता है।

(२) संविधान शासन-व्यवस्था (शासकीय पदों की व्यवस्था) का निर्धारण करता है अर्थात् शासन के विभिन्न अंग, उसके कार्यक्षेत्र, आदि संविधान द्वारा ही निश्चित होते हैं।

(३) संविधान इस बात का भी स्पष्टीकरण करता है कि सर्वोच्च सत्ता कहाँ निहित होगी। सर्वोच्च सत्ता विषयक यही धारणा राज्य को 'स्वरूप' प्रदान करती है। यथा—यदि सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित है तो राज्य का स्वरूप प्रजातांत्रिक होगा, आदि।

---

१. फॉस्टर ने लिखा है : "The Constitution is in fact the government." मास्टर्स ऑफ पोलिटीकल थॉट; पृ० १५३

२. ईबिसटीन : ग्रेट पोलिटीकल थिंकर्स; पृ० ६३

३. सेबाईन : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी पृ० १०३

४) संविधान उस लक्ष्य के स्वरूप को भी स्पष्ट करता है जिसकी प्राप्ति राज्य का उद्देश्य है यह लक्ष्य हम इस बात का आभास देता है कि राज्य अच्छा है या बुरा [१] यथा—यदि लक्ष्य शासितों का हित है तो राज्य अच्छा होगा और यदि शासकों का हित है तो राज्य बुरा होगा।

इस प्रकार अरस्तू के लिए संविधान राज्य का बाह्य आवरण मात्र न होकर राज्य का 'सार' था; [२] भावात्मक रूप में संविधान ही राज्य था।

सरकारों का वर्गीकरण :

सरकारों का वर्गीकरण अरस्तू का अपना मौलिक प्रयास नहीं है। अरस्तू से पहले अनेक व्यक्ति सरकारों के वर्गीकरण का प्रयास कर चुके थे। गैटिल ने लिखा है : "एक व्यक्ति, कुछ व्यक्तियों तथा अनेक व्यक्तियों के शासन में जो अंतर होता है उसको पिंडर, हिरोडोटस, थ्यूसीडाइड्स और प्लेटो ने भली-भाँति समझ लिया था।"[३] यही नहीं, अरस्तू के बहुत समय पहले ही, एक, कुछ तथा अनेक व्यक्तियों के हाथों में शासन-सत्ता के निहित होने के आधार पर संविधान को तीन प्रकारों में विभाजित करने की प्रथा में भी संशोधन हो चुका था और प्रत्येक प्रकार के अंतर्गत अच्छे और बुरे संविधान की कल्पना भी की जाने लगी थी।[४] अरस्तू का वर्गीकरण इन्ही पूर्वगामी दार्शनिकों के विचारों पर ही आधारित है, किंतु जैसाकि गैटिल ने लिखा है : "इनकी तुलना में अरस्तू का वर्गीकरण अधिक सही और स्पष्ट है और इसीलिए बिना किसी तात्त्विक परिवर्तन के आज तक चला आ रहा है।"[५] इस प्रकार अरस्तू राज्यों के वर्गीकरण में मौलिकता के लिए नहीं बल्कि उसकी स्पष्टता एवं व्यवस्था के लिए जाना जाता है।

अरस्तू ने सरकारों के वर्गीकरण के दो आधार बतलाए हैं—

(१) शासन-सत्ता कितने व्यक्तियों के हाथों में है ?

(२) शासन किसके हित में चलाया जा रहा है ?

इन आधारों पर सरकारों को तीन प्रकारों में विभाजित किया गया है। यदि सत्ता एक व्यक्ति में निहित है तथा वह शासन का संचालन जनहित में करता है तो ऐसी सरकार को अरस्तू 'राजतंत्र' (Monarchy) कहता है; यदि सत्ता कुछ व्यक्तियों के हाथों में है और वह सर्वसाधारण के हित में शासन चलाते हैं तो ऐसे शासन को वह 'कुलीनतंत्र' (Aristocracy) कहता है; यदि सत्ता की बागडोर जन-साधारण के हाथों में है और

---

१. फिलिस डॉयले ने लिखा है : "The nature of a city was determined by it's end. All things were determined by their end as only in their end could their perfect form be perceived. Cities were bad or good according to the end they set themselves."—ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थॉट; पृ० ३५

२. डनिंग : "The essence of the State is the constitution." ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरीज; पृ० ६५

३. गैटिल : राजनीतिक चिंतन का इतिहास , पृ० ७८

४. टी० ए० सिंक्लेयर : यूनानी राजनीतिक विचारधारा; पृ० २६२

५. गैटिल : राजनीतिक चिंतन का इतिहास; पृ० ७८

जनता सभी के कल्याण की भावना से शासन का सचालन करती है, तो ऐसी शासन व्यवस्था को अरस्तू 'पॉलिटी' (Polity) नाम देता है। इन तीनों व्यवस्थाओं में चूंकि शासन का लक्ष्य जन-कल्याण है अत: यह शासन के 'विशुद्ध' रूप है।

किंतु शासक जब जन-कल्याण के अपने आदर्श से च्युत हो जाता है तथा शासन का संचालन शासक अपने ही हित मे करने लगते है और शासितों की उपेक्षा करने लगते है तो ऐसे स्वरूप को अरस्तू 'विकृत स्वरूप' कहता है। जब 'एक व्यक्ति का शासन' (राजतंत्र) विकृत हो जाता है तो उसे 'अत्याचारतंत्र' (Tyranny) कहा जाता है। जब 'कुछ व्यक्तियों का शासन' (कुलीनतंत्र) पथभ्रष्ट हो जाता है तो उसे 'वर्गतंत्र' (Oligarchy) कहते है तथा जब 'अनेक व्यक्तियों का शासन' (पॉलिटी) पतित हो जाता है तो अरस्तू उसे 'प्रजातंत्र' (Democracy) कहता है।

इस प्रकार अरस्तू सरकारों को प्रमुख छह वर्गों मे विभाजित करता है। इनमे तीन 'शुद्ध' रूप हैं और तीन 'विकृत' रूप। सरकारों के इस वर्गीकरण को निम्न तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है—
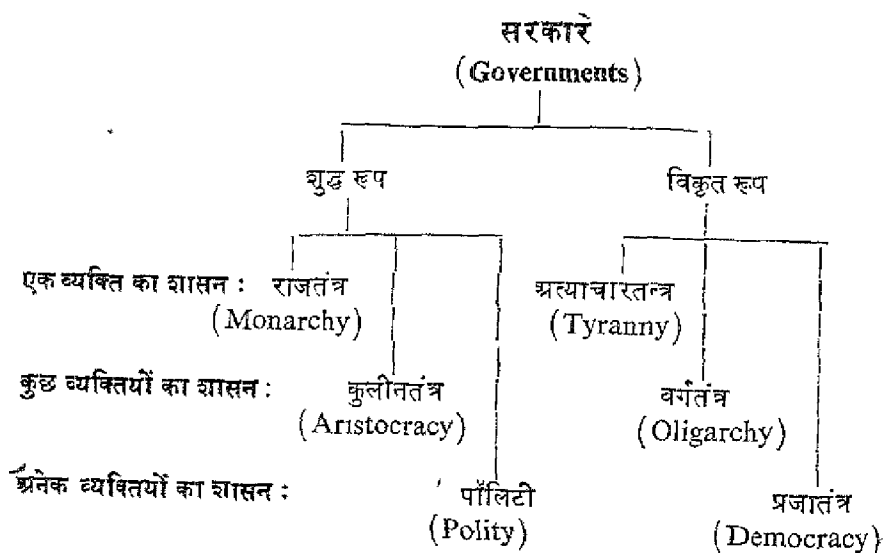
यह एक मान्यता है (इसे राजनीति विज्ञान का आदर्श भी कहा जा सकता है) कि शासन का संचालन जनता के हित में हो। वह सरकार जो जनता के हित मे शासन का सञ्चालन करती है उसे हम 'अच्छी' सरकार कहते हैं और जो सरकार जनता के हितों का ध्यान नहीं रखती तथा जो अपने स्वयं के हितों का ही ध्यान रखती है उसे हम 'खराब' सरकार कहते हैं। अरस्तू के उपरोक्त वर्गीकरण के संदर्भ मे प्रो० डनिंग ने लिखा है : "यह देखा जा सकता है कि शुद्ध स्वरूप उस आदर्श पर आधारित है जो अपने विस्तृत एवं भावशून्य अर्थ में राजनीति विज्ञान का विषय है, जबकि विकृत (क्योंकि वह आदर्श से हटकर है) स्वरूप अपने व्यावहारिक एवं स्वतंत्र रूप में पूर्णत: राजनीति के क्षेत्र मे आता है।"

अरस्तू के वर्गीकरण के संदर्भ में तीन बातों का स्पष्टीकरण आवश्यक है : **प्रथम**, संख्या के आधार पर वह सरकारों का वर्गीकरण तो करता है किंतु वह संख्या को बहुत अधिक महत्त्व नहीं देता, 'संख्या' के स्थान पर वह 'अमीर' और 'गरीब' के अन्तर को कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण समझता है; सामंततंत्र (कुलीनतंत्र) तथा प्रजातंत्र शासनों के संबंध में उसने स्वयं लिखा है "...यह संख्या का तत्त्व—अर्थात् सामंततंत्र (अल्पतंत्र) में सर्वोच्च शासनाधिकारियों का अल्पसंख्यक होना और प्रजातंत्र में (सर्वोच्च शासनाधिकारियों का) बहुसंख्यक होना—एक आकस्मिक घटना है जो इस तथ्य पर आधारित है कि संपन्न लोग सामान्यत: सर्वत्र ही संख्या में कम और विपन्न लोग (गरीब) सामान्यतया (सर्वत्र ही) संख्या में अधिक होते हैं और इसलिए (इन सरकारों के विभेद के) जो कारण (शासकों का संख्या में कम अथवा अधिक होना) मूलत: बतलाए गए हैं वह उनके अंतर के वास्तविक कारण नहीं हैं, अल्पतंत्र (सामंततंत्र) और प्रजातंत्र में एक-दूसरे को अलग करने वाला तत्त्व तो सम्पन्नता और निर्धनता है और यह एक अनिवार्य तथ्य है कि जहाँ-कहीं व्यक्ति अपनी संपत्ति के कारण शासक बनते हैं—चाहे उनकी संख्या अपेक्षाकृत कम हो चाहे अधिक—वहाँ शासन-व्यवस्था अल्पतंत्र (सामंततंत्र) होगी और जहाँ-कहीं निर्धनों का शासन होगा वहाँ प्रजातंत्र व्यवस्था होगी।"

दूसरे, अरस्तू ने लगभग १५० संविधानों का अध्ययन किया था, साथ ही, उसे तात्कालिक शासन-विधानों को समीप से देखने और समझने का भरपूर मौका मिला था। उसके अपने इसी अध्ययन, अनुभव एवं परीक्षणों पर सरकारों का वर्गीकरण आधारित है। सिद्धांतत: अरस्तू की राजतंत्र तथा अल्पतंत्र विषयक मान्यताएँ प्लेटो की मान्यताओं से कम आदर्शवादी नहीं। राजतंत्र (एक) श्रेष्ठतम व्यक्ति का शासन है और अल्पतंत्र (कुछ) श्रेष्ठतम व्यक्तियों का। प्रो० डनिंग ने लिखा है : "यदि अरस्तू ने इन विभिन्न संविधानों की व्याख्या में केवल भावशून्य और आदर्शवादी तरीका अपनाया होता तो उसकी रचनाएँ प्लेटो से बहुत ही कम रूप में भिन्न होतीं।"[1] किंतु उसका यथार्थवादी दृष्टिकोण इसे संभाव्य मानने को तैयार नहीं था उसने शासनाधिकारियों की प्रकृति एवं लक्ष्य, राज्यपदों की वितरण व्यवस्था तथा शासितों के लक्षणों के आधार पर उपरोक्त तीनों सरकारों (विकृत रूपों सहित ६ सरकारों) के उपप्रकारों की भी विस्तार से चर्चा की है। उदाहरण के लिए, उसने राजतंत्र के ५, प्रजातंत्र के ५ तथा वर्गतंत्र के ४ प्रकार बतलाए हैं। इस प्रकार—जैसा कि सिक्लेयर ने भी लिखा है : "संविधान के केवल तीन ही प्रकार न होकर अनेकानेक प्रकार हैं जो परस्पर एक-दूसरे का रंग पकड़ते रहते हैं।"[2]

और **तीसरे**, सरकारों के वर्गीकरण का यह तार्किक परिणाम था कि अरस्तू श्रेष्ठतम सरकार पर भी अपने विचार व्यक्त करता है (इस विषय पर विस्तारपूर्वक चर्चा अलग से अगले पृष्ठों में की गई है)। प्रस्तुत संदर्भ में इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि अरस्तू श्रेष्ठतम सरकार की व्याख्या तीन आधारों पर करता है—

---

१. डनिंग . ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटीकल थ्योरीज; Vol. I ; पृ० ७२
२. सिक्लेयर : यूनानी राजनीतिक विचारधारा; पृ० ३००

(१) ऐसी श्रेष्ठतम सरकार जो सिद्धांतत. श्रेष्ठ है।

(२) ऐसी श्रेष्ठतम सरकार जिसे मनुष्य सामान्यत: प्राप्त कर सकते हैं।

(३) दी हुई परिस्थितियों में श्रेष्ठतम सरकार।

जहाँ तक प्रथम का प्रश्न है, अरस्तू का कथन है कि श्रेष्ठतम का शासन ही श्रेष्ठतम शासन है, चाहे वह एक (श्रेष्ठ) व्यक्ति का हो (शासन का स्वरूप राजतंत्र होगा), चाहे कुछ (श्रेष्ठ) व्यक्तियों का (शासन का स्वरूप सामंततंत्र अथवा कुलीनतंत्र होगा)।

जहाँ तक दूसरे का प्रश्न है अरस्तू 'विशुद्ध पॉलिटी' को श्रेष्ठतम शासन मानता है।[1] इसे वह वैधानिक सरकार कहता है, इसलिए कि सभी दृष्टियों से यह 'मध्यमार्गी' सरकार है।

जहाँ तक तीसरे का प्रश्न है 'स्थायित्व' श्रेष्ठतम शासन का प्रमुख आधार है, उसके अनुसार वही सरकार श्रेष्ठतम होगी जो अपेक्षाकृत अधिक स्थायी हो सके। इस रूप में, परिस्थितियों के अनुसार, प्रजातंत्र, सामंततंत्र अथवा पॉलिटी श्रेष्ठतम सरकार सिद्ध हो सकती है।[2]

सरकारों के वर्गीकरण की आलोचना—अरस्तू जिसे राज्यों का वर्गीकरण कहता है वह वस्तुत. सरकारों का ही वर्गीकरण है; राज्यों का वर्गीकरण संभव नही है, असहमति के लिए आलोचकों को इस वर्गीकरण मे कुछ आधार मिल गए है जो निम्नलिखित हैं—

(१) अरस्तू के वर्गीकरण में मौलिकता नही है। उसके पूर्व के विचारकों ने भी सरकारों के वर्गीकरण का प्रयास किया था। यह वर्गीकरण इन पूर्वगामी विचारों पर ही आधारित है। इस संबंध मे उसने स्वयं ही मौलिकता का दावा नही किया है।

(२) अरस्तू का वर्गीकरण आज के राज्यों पर पूर्णत: लागू नहीं होता। संसदात्मक सरकार, संघीय सरकार, एकात्मक सरकार जैसी सरकारों को इस वर्गीकरण में कोई स्थान प्राप्त नहीं है; इन सरकारों के वर्गीकरण के आधार ही अलग है।

(३) अरस्तू ने स्वयं ही सरकारों के जिन प्रकारों का उल्लेख किया है उन्हें इस वर्गीकरण में स्थान दिया जाना कठिन ही प्रतीत होता है।

(४) कुछ आलोचकों का कथन है कि अरस्तू ने अपने वर्गीकरण में कुछ ऐसे राज्यों का उल्लेख किया है जिनका आज अस्तित्व ही नहीं है, जैसे कुलीनतंत्र। इसे वर्गीकरण की आचोलना नही कहा जा सकता; ऐसी सरकारें उसके समय में थी और यह स्वाभाविक ही था कि वह इन्हें अपने वर्गीकरण में स्थान देता।

उपरोक्त आलोचनाओं का कोई मान्य एवं ठोस आधार नही है। यह सही है कि वर्तमान में इसे 'पूर्ण वर्गीकरण' नहीं कहा जा सकता किन्तु वर्गीकरण के जो आधार उसने बतलाए हैं वह आज भी सही है। गैटिल ने लिखा है: "अरस्तू का वर्गीकरण

---

१. डनिंग : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरीज; Vol. I; पृ० ७६

२. मैक्सी ने लिखा है: "That...form of government is best in which every man whoever he is. can act for the best and live happ·ly"—पोलिटीक्स पृ० ७६

अधिक सही और स्पष्ट है और इसलिए बिना किसी तात्त्विक परिवर्तन के आज तक चला आ रहा है

अरस्तू की श्रेष्ठ अथवा आदर्श राज्य विषयक धारणा :

अरस्तू प्लेटो का शिष्य होते हुए भी उसके जैसा आदर्शवादी नहीं था। उसका व्यावहारिकता एवं संभाव्यता के प्रति बेहद लगाव था। किंतु वह नितांत भौतिकवादी भी नहीं था, **पॉलिटिक्स** में वह इस बात को बार-बार दुहराता है कि राज्य का कार्य व्यक्ति को अच्छे जीवन की प्राप्ति कराना है। जो राज्य व्यक्ति को इस जीवन की प्राप्ति कराने में समर्थ है, उसी राज्य को अरस्तू श्रेष्ठ राज्य मानता है। स्पष्ट है, अरस्तू की मान्यता है कि आदर्श राज्य 'निरपेक्ष' न होकर 'सापेक्ष' है। प्रत्येक राज्य के लिए यह आदर्श अलग-अलग हो सकता है। अतः अरस्तू **पॉलिटिक्स** की सातवीं तथा आठवीं पुस्तकों में 'आदर्श राज्य' की नहीं बल्कि 'राज्यों के आदर्श' की चर्चा करता है।

जहाँ तक नागरिक श्रेष्ठता का प्रश्न है अरस्तू की मान्यता है कि भौतिक साधनों का जीवन के लिए तो महत्त्व है, श्रेष्ठ जीवन के लिए इनका विशेष महत्त्व नहीं है। श्रेष्ठ जीवन के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से स्वस्थ हो और उसकी आत्मा श्रेष्ठ गुणों (उत्साह, आत्मसंयम, आदि) से परिपूर्ण हो; अरस्तू का कथन है कि 'भलाई का जीवन सबसे अधिक वांछनीय है'। वह आगे लिखता है, 'जो सबसे श्रेष्ठ है वही सबसे अधिक वांछनीय है और भलाई करना ही सबसे श्रेष्ठ है।' किंतु अरस्तू के अनुसार केवल भलाई ही पर्याप्त नहीं होना चाहिए बल्कि उसके साथ ही भलाई करने में सक्रिय होने के लिए क्षमता भी चाहिए। उसने लिखा है : "यदि हमारा यह कथन ठीक है और यदि भले कार्य करना ही सुख माना जाय, तब यह निष्कर्ष निकलता है कि सामूहिक रूप से, समग्र नगर के लिए तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिए सक्रिय जीवन ही सर्वोत्तम जीवन है।"

श्रेष्ठ जीवन के सिद्धांतों की चर्चा के उपरांत अरस्तू उन तत्त्वों की रूपरेखा प्रस्तुत करता है जो आदर्श राज्य के लिए आवश्यक तत्त्व हो सकते हैं। इन तत्त्वों को, अधिक स्पष्टीकरण के लिए, निम्न शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है।

आदर्श राज्य के आवश्यक तत्त्व :

१. संविधान का स्वरूप।
२. विधि का शासन।
३. राज्य की संरचना।
४. सामाजिक संगठन।
५. शिक्षा व्यवस्था।

संविधान का स्वरूप—सेबाइन ने लिखा है : "इस संभाव्य आदर्श राज्य का प्रमुख लक्षण यह है कि यह एक मिश्रित संविधान है, जिसमें धनिकतंत्र और प्रजातंत्र से लिए गए तत्त्वों को बड़े अच्छे ढंग से मिला दिया गया है।" अरस्तू मिश्रित संविधान

का समर्थन करता है। ऐसे राज्य का सामाजिक आधार उस बड़े मध्यम वर्ग का अस्तित्व है जो उन व्यक्तियों द्वारा निर्मित है जो न तो बहुत अधिक अमीर है और न बहुत अधिक गरीब। अरस्तू की मान्यता थी कि सुसंतुलित एवं सर्वश्रेष्ठ संविधान वही होगा जो अल्पतंत्र और लोकतंत्र दोनों के मध्य है। अरस्तू इसे 'पॉलिटी' (Polity) नाम देता है, प्रो० सिंक्लेयर ने लिखा है : "यह एक ऐसा अल्पतंत्र होगा जिसमें संपत्ति की योग्यता न तो बहुत ऊँची होगी और न बहुत नीची, यह लोकतंत्रात्मक होगा क्योंकि बहुसंख्यकों के निर्णय को मान्यता प्राप्त होगी; साथ ही, यह कुलीनतंत्रात्मक भी होगा क्योंकि कुलीन-तंत्र का सार यही है कि सार्वजनिक पदों का वितरण श्रेष्ठता के आधार पर हो।"

अरस्तू का यह विश्वास था कि मध्यम वर्ग के व्यक्ति ही आदेश देना तथा एक व्यक्ति की तरह आदेशों का पालन करना जानते हैं; श्रेष्ठ शासन की यह एक महत्त्वपूर्ण शर्त है। मध्यम वर्ग की बहुलता राज्य को दृढ एवं स्थायी रखने में सहायक होती है और विरोधी पक्ष की उग्रता को नियंत्रण में रखने में प्रभावकारी होती है। इस प्रकार यह वर्ग राज्यों की रक्षा करता है और राज्य द्वारा स्थापित व्यवस्था का पालन करता है। उसने कहा है : "जितने अच्छे ढंग से संविधान में विभिन्न वर्गों का सम्मिश्रण किया जायगा उतने ही अधिक समय तक संविधान स्थायी रहेगा।

विधि का शासन—सेबाइन ने लिखा है : "अरस्तू ने विधि की सर्वोच्चता को श्रेष्ठ राज्य का एक लक्षण माना है, न कि एक अभाग्यपूर्ण आवश्यकता।"[१] विधि का शासन एक व्यक्ति के शासन से—चाहे वह व्यक्ति कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो—श्रेष्ट है। अपनी इस मान्यता को अरस्तू भिन्न-भिन्न आधारों पर सिद्ध करता है **प्रथम**, कानून समूची जनता के सामूहिक विवेक की अभिव्यक्ति होते हैं; कानून के निर्माण में ऐसा सामूहिक विवेक व्यक्तिगत विवेक से हमेशा ही श्रेष्ठ होता है। जनता मे व्यक्ति एक-दूसरे के पूरक होते हैं; कोई भी विषय उनके परे नहीं हो पाता, जबकि जानकार व्यक्तियों से भी गलती होते देखी गई है; **दूसरे**, अनेक व्यक्ति आसानी से भ्रष्ट नहीं हो सकते, जबकि एक व्यक्ति के विषय में ऐसा विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता, चाहे वह व्यक्ति कितने ही उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित क्यों न हो, **तीसरे**, कानून मे वैयक्तिकता का तत्त्व नहीं होता; कानून इच्छा से प्रभावित न होने वाला विवेक है, कानून प्रत्येक के लिए एक जैसा है; वह सभी के साथ समान व्यवहार करता है, निष्पक्षता कानून का श्रेष्ठतम लक्षण है, जबकि व्यक्ति का शासन पक्षपातपूर्ण हो सकता है, इसलिए कि व्यक्ति के शासन में वैयक्तिकता के तत्त्व की प्रधानता होती है; **चौथे**, चूँकि कानून जिस सामूहिक विवेक की अभिव्यक्ति है उसमें राजनेता (प्रभुव्यक्ति) का विवेक भी सम्मिलित है। ऐसा विवेक निश्चित ही प्रभुव्यक्ति के व्यक्तिगत विवेक से श्रेष्ठ होगा। डनिंग ने लिखा है : "एक श्रेष्ठ राज्य में राजनेता के विवेक को उस विवेक से अलग नहीं किया जा सकता जो उसके द्वारा शासित समाज के कानून और प्रथा में निहित होता है।"

---

[१] ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी पृ० ९२

स्पष्ट है, अरस्तू अपने आदर्श राज्य में कानून के शासन को मान्यता देता है। वह इसे संवैधानिक शासन (Constitutional Rule) कहता है।

आदर्श राज्य में विधि के शासन के तीन प्रमुख लक्षण इस प्रकार होंगे—

(i) शासन सार्वजनिक हित में संचालित होगा;

(ii) शासन-संचालन सामान्य नियमों द्वारा होगा; स्वेच्छाचारी आदेशों अथवा आज्ञाओं द्वारा नहीं; तथा

(iii) शासन जन-सहमति पर आधारित होगा, शक्ति पर नहीं। 'विधि का शासन' राजनीतिक दर्शन के लिए अरस्तू की एक महत्त्वपूर्ण देन है।

आदर्श राज्य की संरचना :

आदर्श राज्य की संरचना में अरस्तू राज्य की जनसंख्या, भूभाग अथवा क्षेत्र, उसकी भौगोलिक स्थिति, तथा नागरिक चरित्र की चर्चा करता है। राज्य को आदर्श बनाने में इन सभी के महत्त्वपूर्ण योगदान से इन्कार नहीं किया जा सकता। अरस्तू ने इन तत्त्वों की विस्तार से चर्चा की है। यथा—

(अ) **जनसंख्या**—राज्य की संरचना में मानव समूह प्राथमिक है। इसे राज्य का मानव तत्त्व कहा गया है। आदर्श राज्य की जनसंख्या कितनी हो, इस संदर्भ में अरस्तू का कथन है कि राज्य की जनसंख्या समुचित—न अधिक, न कम—हो, राज्य न तो १० व्यक्तियों से निर्मित हो सकता है और न १० लाख व्यक्तियों से। जनसंख्या इतनी हो जो राज्य को 'आत्मनिर्भर' बना सके। कम जनसंख्या होने से राज्य आत्मनिर्भर नहीं बन पाता और अधिक जनसंख्या शासन-व्यवस्था के लिए एक समस्या बन जाती है। उसने लिखा है: "कोई भी वस्तु यदि वह बहुत कम है, अथवा बहुत अधिक है, अपनी कार्य-सम्पादन-शक्ति खो बैठेगी।" वह आगे लिखता है: "नगर की जनसंख्या की सर्वोत्तम सीमा वह अधिकतम संख्या है जो जीवन की आवश्यकताओं की दृष्टि से आत्म-निर्भर हो तथा सर्वेक्षण योग्य हो।" यदि जनसंख्या समुचित है तो शासक एवं शासित आपस में परिचित होंगे, जो श्रेष्ठ शासन की अपनी विशिष्टता है।

प्रस्तुत संदर्भ में यह जानना भी आवश्यक है कि अरस्तू दासों, कारीगरों आदि को राज्य की जनसंख्या में सम्मिलित किए जाने को उचित नहीं मानता।

(ब) **भूभाग अथवा क्षेत्र**—आदर्श राज्य के लिए श्रेष्ठ क्षेत्र वही है जो सभी दृष्टियों से आत्मनिर्भर हो—जहाँ आवश्यकता की सभी वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में पैदा की जा सकें तथा जहाँ जनता संयम एवं उदारतापूर्वक 'समन्वित अवकाशपूर्ण जीवन' व्यतीत कर सके। अरस्तू की यह भी मान्यता है कि जनसंख्या के समान ही आदर्श राज्य का क्षेत्र भी 'सर्वेक्षणीय' (जिसको भली प्रकार देखा और समझा जा सके) हो। ऐसा उसकी रक्षा के लिए भी आवश्यक है।

(स) **भौगोलिक स्थिति**—राज्य के लिए कौनसी स्थिति (भौगोलिक) आदर्श होगी, अरस्तू इसकी भी चर्चा करता है। "राज्य की भौगोलिक स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि नागरिक स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकें, पीने के लिए पर्याप्त मात्रा में शुद्ध जल तथा

भरण-पोषण के लिए पर्याप्त खाद्यान्न उत्पन्न हो सके और राज्य की प्रतिरक्षा का प्रबंध आसानी से किया जा सके।' राज्य का समुद्र-तट के निकट होना सुरक्षा, सुखमय जीवन तथा समृद्धि तीनों ही दृष्टियों से उपयुक्त होगा। आवश्यक वस्तुओं के आयात तथा उत्पादित वस्तुओं के निर्यात के लिए यह स्थिति सर्वश्रेष्ठ होगी। किंतु समुद्र से अत्यधिक निकटता भी दोषरहित नहीं और इसीलिए इस संदर्भ मे अरस्तू ने कुछ आवश्यक निर्देश भी दिए हैं। उदाहरण के लिए, विदेशी व्यापारियों पर नियंत्रण रखा जाय, राज्य को दूसरे राष्ट्रों के लिए 'बाजार' न बनने दिया जाय। नौसेना की सामान्य शक्ति को अधिकार में रखना, नगर (राज्य) के लिए लाभदायक होता है।

नागरिक चरित्र—अरस्तू ने नागरिकों के चारित्रिक गुणों की भी चर्चा की है। आदर्श की प्राप्ति में नागरिकों के चरित्र को केंद्रीय महत्त्व प्राप्त है।[1] उसका कथन है कि नागरिकों मे आदेश देने और आदेश का पालन करने की क्षमता का होना आवश्यक है। इन दोनों लक्षणों का 'विवेक' तथा 'साहस' से संबंध है। अरस्तू ने लिखा है: 'आदेश करने की और स्वतंत्रता का अनुभव करने की शक्ति सभी मनुष्यों में इसी प्रवृत्ति पर निर्भर है।' ऐसे व्यक्तियों को सदाचार के मार्ग पर ले चलने मे प्रशासक को विशेष कठिनाई नहीं होती। यह गुण किन जातियो में प्रकृतिश: विद्यमान है। इस संदर्भ मे अरस्तू ने विभिन्न देशों और विभिन्न जातियो के गुणों का उल्लेख किया है। ठंडे देशो की जातियो मे सामान्य रूप मे तथा यूरोप की जातियो में विशेषकर, साहस की प्रधानता तो होती है किन्तु बुद्धि एवं कौशल की अपेक्षाकृत कमी पाई जाती है। परिणाम यह हुआ है कि इनका समुचित राजनीतिक विकास नहीं हुआ है। इसके विपरीत एशिया की जातियो मे बुद्धि एवं कौशल की प्रधानता होती है, किंतु साहस का प्रायः अभाव पाया जाता है। परिणाम यह हुआ है कि यह जातियाँ निरंतर ही शासित रहती हैं। यूनानी जाति इन दोनो प्रदेशों (यूरोप तथा एशिया) के मध्य मे स्थित होने के कारण साहस एवं बुद्धि दोनों ही गुणों से प्रकृतिश: विभूषित है। परिणाम यह है कि यह जाति निरंतर ही स्वतन्त्र रहती है एवं अपेक्षाकृत अधिक अच्छे ढंग से शासित भी। वह लिखता है: 'यदि यह जाति केवल एक बार राजनीतिक एकता प्राप्त कर ले तो सब (ससार) पर शासन करने की क्षमता (भी) रखती है। आदर्श राज्य के नागरिक प्राकृतिक उपलब्धियो मे यूनानियों जैसे हैं।

सामाजिक संगठन—अरस्तू के मतानुसार राज्य एक ऐसा मानव समाज है जो जीवन के लक्ष्य के लिए पर्याप्त है, पूर्णत: आत्मनिर्भर है। इस आत्मनिर्भरता का संबंध उन वस्तुओं से है जिन्हें किसी भी राज्य के लिए आवश्यक कहा जा सकता है। अरस्तू का कथन है कि 'राज्य की व्यवस्था इन कार्यों के संपादन की दृष्टि से की जानी चाहिए।' उसने इन वस्तुओं की संख्या ६ बतलाई है: भोजन, कला कौशल, हथियार, धन सम्पत्ति

---

१. डनिंग ने लिखा है. "The realisation of this ideal depends partly upon external conditions which must be more or less determined by chance but to a far greater extent upon the character and culture of the people.'—ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थाट Vol पृ० ८१

ईश्वर सेवा तथा प्रशासन। अरस्तू का कथन है कि आदर्श राज्य के व्यक्ति इन कार्यों में दक्ष हों : कृषक जो भोजन की व्यवस्था करें, शिल्पी एवं कलाकार जो आदर्श राज्य की कलात्मक सेवाओं का संपादन करें, सैनिक जो राज्य की रक्षा एवं शासन संचालन में हथियारों के प्रयोग में दक्ष हों,[1] व्यापारी जो व्यापार व्यवस्था में संलग्न हों, पुजारी जो राज्यधर्म पर नजर रखें तथा सार्वजनिक व्यक्ति जो राज्य के राजनीतिक और न्यायिक कार्यों का संपादन करें।

शिक्षा व्यवस्था—अरस्तू आदर्श राज्य के निर्माण में शिक्षा को एक विशिष्ट महत्त्व प्रदान करता है। सिक्लेयर ने लिखा है : "राज्य के निर्माण में शिक्षा को यह महत्त्व प्रदान करना कोई नई बात नहीं। प्रोटोगोरस के समय से ही यह परंपरा चली आ रही है।" अरस्तू की **पॉलिटिक्स** शिक्षा की एक अपूर्ण रूपरेखा के साथ समाप्त होती है। शिक्षा का लक्ष्य नागरिक शासक का निर्माण है। अरस्तू समान, अनिवार्य, सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था को आदर्श राज्य का प्रथम महत्त्वपूर्ण लक्षण मानता है तथा ऐसी पद्धति का संचालन सरकार का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य। समस्त नागरिक जीवन शासकीय नियंत्रण में हो, ऐसी अरस्तू की मान्यता थी। यही कारण है कि विवाह, पारिवारिक जीवन, बच्चों का पालन-पोषण तथा उनके (बच्चों के) अनुशासन को राज्य के नियंत्रण में रखने का परामर्श देने में अरस्तू तनिक भी संकोच नहीं करता।

उसकी शिक्षा व्यवस्था में संगीत एवं साहित्य को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। स्वास्थ्य निर्माण एवं अच्छी आदतों का डालना बच्चों की शिक्षा का प्रारंभ है। उसका यह भी विश्वास था कि प्रशिक्षण और अभ्यास द्वारा श्रेष्ठ मनुष्य को तैयार किया जा सकता है।

इस प्रकार अरस्तू की आदर्श राज्य शिक्षा व्यवस्था का एक निश्चित लक्ष्य है—"सर्वरूपेण अच्छा मनुष्य तैयार करना, ऐसा मनुष्य जो योग्य भी है और नेक भी, मर्यादा-पूर्ण भी है और शिष्ट भी, उदार भी है और साहसी भी, न्यायप्रिय भी है और आत्म-संयमी भी।"[2]

अरस्तू के क्रांतियाँ विषयक विचार :

अरस्तू के अनुसार स्थिरता शासन की श्रेष्ठता की कसौटी है। अरस्तू जैसे वैज्ञानिक राजनीतिक दर्शनशास्त्री से यह अपेक्षित भी था कि वह इस अस्थिरता के कारणों की जाँच करे और उसके निदान सुझाए। साथ ही, अपने युग के (यूनान के) राजनीतिक जीवन में व्याप्त अस्थिरता के परिणामस्वरूप हो रहे परिवर्तनों से भी वह विशेष रूप से चिंतित था। ऐसी दशा में यह आश्चर्य की बात नहीं कि **पॉलिटिक्स** की एक संपूर्ण पुस्तक (पाँचवीं पुस्तक) में इसी प्रसंग पर विचार किया गया है। अरस्तू ने क्रांतियों के प्रकार, उनके कारणों तथा उनसे बचने के उपायों का सविस्तार वर्णन किया

---

१. उसकी मान्यता है कि राष्ट्र के सभी सदस्यों को स्वयं (अपने शरीर पर) शस्त्र धारण करना चाहिए।

२. टी० ए० सिक्लेयर : यूनानी राजनीतिक विचारधारा ; पृ० ३१५

है। इसमें हम उसे एक तटस्थ एवं असंबद्ध राजनीतिक चिकित्सक के रूप में पाते हैं जिसका किसी विशिष्ट शासन-व्यवस्था के प्रति न तो कोई लगाव है और न ही किसी के प्रति घृणा। उसके द्वारा सुझाए गए निदानों द्वारा सभी प्रकार के शासन अपने को क्रांतियों से सुरक्षित रख सकते हैं।

क्रांतियों के स्वरूप :

अरस्तू के अनुसार यह राजनीतिक परिवर्तन (क्रांतियाँ) सामान्यतः समकालीन स्थिति के प्रति असंतोष के फलस्वरूप ही होते हैं। यह असंतोष व्यापक भी हो सकता है तथा किसी दल अथवा वर्ग तक भी सीमित हो सकता है। ऐसे असंतोष की हिंसात्मक अभिव्यक्ति ही क्रांति है। अरस्तू के अनुसार ऐसी क्रांतियाँ दो प्रकार की होती हैं—

प्रथम, मौजूदा विधान के खिलाफ की गई क्रांतियाँ—इनका लक्ष्य विधान में आमूल परिवर्तन लाना होता है। उदाहरण के लिए, प्रजातंत्र के स्थान पर कुलीनतंत्र की स्थापना।

दूसरे, मौजूदा शासन के खिलाफ अथवा मौजूदा विधान की किसी विशिष्ट व्यवस्था के खिलाफ की गई क्रांतियाँ—इनका लक्ष्य संविधान में आमूल परिवर्तन लाना न होकर सरकार में परिवर्तन लाना होता है। ऐसी स्थिति में संविधान तो यथावत् बना रहता है किंतु शासन-सत्ता क्रांतिकारियों के हाथों में आ जाती है; ऐसी क्रांतियाँ अपेक्षाकृत दो सीमित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भी होती हैं : प्रथम, मौजूदा विधान की किसी विशिष्ट व्यवस्था में परिवर्तन लाना, उदाहरण के लिए प्रजातंत्र अथवा सामंततंत्र विधानों को सीमित अथवा असीमित करना; तथा, दूसरे, शासकीय पदों अथवा पदाधिकारियों के अधिकारों में परिवर्तन लाना। यह क्रांतियाँ (अंतिम दो प्रकार की) क्षेत्र तथा प्रभाव में अपेक्षाकृत सीमित होती हैं। इस व्यवस्था को एक 'चार्ट' द्वारा इस प्रकार समझाया जा सकता है—
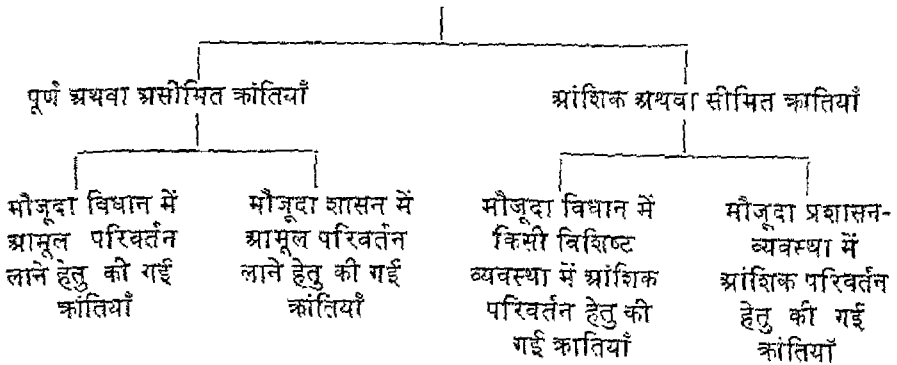
क्रांतियों के कारण—अरस्तू क्रांति के कारणों की विस्तार से चर्चा करता है। इन कारणों को उसने दो सामान्य वर्गों में विभाजित किया है—(क) क्रांतियों के सामान्य कारण, (ख) क्रांतियों के विशिष्ट कारण।

क्रांतियों के सामान्य कारण—अरस्तू ने लिखा है : "सर्वदा लोग समानता की ही कामना से क्रांति किया करते है।" यह समानता की कामना अथवा इच्छा ही क्रांतियों का सर्वव्यापी एवं प्रमुख कारण है। अरस्तू के अनुसार समानता के दो प्रकार हैं—(i) संख्या-मूलक समानता, (ii) गुणमूलक अथवा आनुपातिक समानता।

संख्यामूलक समानता से आशय है कि सभी व्यक्ति हर बात में समान हैं ; आनुपातिक समानता से तात्पर्य है कि व्यक्ति हर बात में असमान हैं; जब सभी व्यक्तियों को समान नहीं समझा जाता तो संख्यामूलक समानता में आस्था रखने वाले व्यक्ति क्रांति कर देते है और जब सभी को समान समझ लिया जाता है तो आनुपातिक समानता में आस्था रखने वाले व्यक्ति क्रांति कर देते है। इस प्रकार छोटे व्यक्ति बराबर होने के लिए विद्रोही बना करते है और बराबर स्थिति वाले लोग बड़े बनने के लिए। अरस्तू ने लिखा है . "यही वह मनोदशा है जिसमे क्रांतियों का जन्म होता है।"

अरस्तू ने क्रांतियों के कारणों का विस्तार मे उल्लेख किया है। इनमे प्रमुख कारण इस प्रकार हैं : सामान्यतया क्रांतिकारियों का लक्ष्य लाभ और सम्मान पाना होता है; किंतु कभी-कभी इनके विपरीत कारण—हानि का भय तथा अपमान—भी उन्हे क्रांति के लिए प्रेरित करते हैं। इनका संबंध स्वयं से भी हो सकता है और अन्य आत्मीयजनों से भी। इनके अलावा, शासको की धृष्टता एवं घमंड, किन्ही व्यक्तियों अथवा वर्गों की अत्यधिक प्रमुखता, महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों का तिरस्कार तथा राज्य के किसी भाग का अत्यधिक बढ़ जाना भी क्रांति के कारण बन जाते हैं। इनके साथ ही, किन्ही विशिष्ट अवसरों पर घटित घटनाएँ भी शासन-व्यवस्था मे परिवर्तन का कारण बन जाती है, उदाहरण के लिए निर्वाचनों में भ्रष्टता। कभी-कभी छोटे-छोटे कारण भी बड़े परिवर्तनों का आधार निर्मित कर देते हैं, उदाहरण के लिए स्वयं छोटे परिवर्तनों की उपेक्षा।

क्रांतियों के विशिष्ट कारण—अरस्तू के अनुसार क्रांतियों के कुछ कारण ऐसे हैं जिन्हें किसी विशिष्ट शासन-पद्धति में ही ढूँढा जा सकता है; ये क्रांतियों के सामान्य कारण न होकर विशिष्ट कारण हैं। अरस्तू ने विभिन्न शासन-पद्धतियों मे क्रांति के इन कारणों की विस्तृत विवेचना की है और ऐतिहासिक तथ्यों द्वारा उनकी पुष्टि की है। संक्षेप में ये कारण निम्नलिखित है—

प्रजातंत्रात्मक शासनो में वाक्पटु नेता (demogogues) अपनी स्वतन्त्रता के अनुचित प्रयोग द्वारा वैधानिक परिवर्तनो की पृष्ठभूमि निर्मित कर देते है : वे या तो संपन्न लोगों को राज्य के विरुद्ध संगठित कर देते हैं या गरीब व्यक्तियों को धनिकों के विरुद्ध उभार देते हैं। धनिकतंत्रों में क्रांतियों के दो कारण है : प्रथम, शासकों द्वारा जनता के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार। दूसरे, शासको का पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष—यह शासकों को दो वर्गों मे विभाजित कर देता है और वर्गों का यही संघर्ष अंततः धनिकतंत्र को समाप्त कर देता है। धनिकतंत्र के भीतर दूसरे धनिकतंत्र का जन्म भी उसकी मृत्यु का कारण बन जाता है। योग्य व्यक्तियों के प्रति असम्मान एवं अभद्र व्यवहार भी अत्याचारतंत्र मे क्रांति का कारण बन जाता है।

क्रांतियों को रोकने के उपाय—अरस्तू क्रांतियों के कारण बतलाकर ही नहीं रुक जाता; वह इनके रोकने के उपाय भी बतलाता है। कारणों का स्पष्टीकरण जितना कठिन है, रोकने के उपायों का स्पष्टीकरण उतना ही आसान। क्योंकि विशिष्ट कारण में निदान की प्रकृति भी निहित होती है।[1] अरस्तू ने इन उपायों का भी विस्तार के साथ विवरण दिया है। कुछ प्रमुख उपाय इस प्रकार है—

नियमहीनता के छोटे-से-छोटे कार्य को भी नजरंदाज न किया जाय; कानून पालन की प्रवृत्ति को हर हालत में बनाए रखा जाना चाहिए। उसने लिखा है : "ऐसी नियमहीनता अज्ञात रूप से प्रविष्ट होती है और अंत में राज्य को उसी प्रकार नष्ट कर देती है जिस प्रकार कि थोड़े-थोड़े व्यय के बार-बार होने से विशाल धन-राशि समाप्त हो जाती है।" किसी भी वर्ग के साथ दुर्व्यवहार न किया जाय; व्यक्तियों की योग्यता को उचित सम्मान दिया जाय। इस प्रकार जनता में शासन के खिलाफ असंतोष अंकुरित ही न हो सकेगा। प्रशासकों को चाहिए कि वह खतरों का (बनावटी) निर्माण करते रहे जिससे जनता सचेष्ट एवं जागरूक बनी रहे। राज्य के प्रमुख एवं गण्यमान व्यक्तियों में सामंजस्य एवं सद्भावना बनाए रखना शासन की स्थिरता के लिए आवश्यक है; किसी व्यक्ति अथवा वर्ग को आवश्यकता से अधिक न तो महत्त्व दिया जाय और न आगे बढने दिया जाय, यह इसलिए कि अन्यों में असंतोष उत्पन्न न हो सके। धनोपार्जन के लिए राजपद का उपयोग न किया जाय; राजकीय पद किसी वर्ग विशेष का एकाधिकार न बना दिया जाय; विदेशियों को इन पदों पर नियुक्त न किया जाय। धनिकतंत्र में विपन्न (गरीब) वर्ग का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय; शासन में उनकी भागीदारी शासन को स्थायित्व प्रदान करने में सहायक होगी। थोड़े समय में अधिक सम्मान देने के स्थान पर अधिक अच्छा होगा कि थोड़ा-थोड़ा सम्मान लंबे समय तक प्रदान किया जाता रहे; यह व्यवस्था व्यक्ति को बिगड़ने न देगी। वह स्वय लिखता है : "मनुष्य बहुत जल्दी बिगड़ते हैं और सब संपत्ति को सहन नहीं कर सकते।"

अरस्तू राज्य के स्थायित्व के लिए मध्यवर्ग के महत्त्व को स्वीकार करता है। उसकी मान्यता है कि अच्छे शासन की सबसे अधिक संभावना उन्हीं राज्यों में रहती है जहाँ मध्यवर्गीय लोग पर्याप्त संख्या में हों। इस वर्ग को अन्य दो वर्गों (धनिक एवं गरीब) की तुलना में बहुसंख्यक होना आवश्यक है। सिक्लेयर ने लिखा है : "मध्यवर्ग की बहुलता राज्य को दृढ़ एवं स्थायी रखने में सहायक होती है और विरोधी पक्षों की योग्यता को नियंत्रण में रखने में प्रभावकारी होती है।"[2] और अंतिम उपाय—किंतु महत्त्व की दृष्टि से प्रथम—शिक्षा की समुचित व्यवस्था निर्मित करना है, ऐसी व्यवस्था जो देश की वैधानिक व्यवस्था अथवा ढाँचे के अनुकूल हो। वह स्वयं लिखता है : "शासन-व्यवस्थाओं को स्थिर बनाने के लिए जितने उपाय हमने बतलाए है उनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण—

---

१. डनिंग : "The character of the particular causes suggests at once the character of the corresponding remedies."—ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरीज, Vol. I.; पृ० ८८

२ सिक्लेयर यूनानी विचारधारा पृ० ३०१

किंतु आजकल जिसकी सर्वत्र ही अवज्ञा की जा रही है—लोक-शिक्षा को शासन-व्यवस्था के अनुकूल बनाना है।"[1] विधानों के अंतर्गत होने वाली क्रांतियों को रोकने में शिक्षा को अरस्तू कितना महत्त्व प्रदान करता है यह इन शब्दों से भली-भाँति स्पष्ट है: "जब तक किसी राष्ट्र की जनता आदत के बल पर और शिक्षा के प्रभाव से शासन-व्यवस्था की आत्मा मे रम नही जाती, तब तक श्रेष्ठ कानूनों से भी कोई लाभ नहीं हो सकता, चाहे उन कानूनों को समग्र नागरिक जनता का अनुमोदन भी क्यों न प्राप्त हो।" नागरिकों को विधान के अनुकूल ढालने का एकमात्र साधन श्रेष्ठ शिक्षा की व्यवस्था ही है।

उपर्युक्त मे जिन उपायो का विवरण दिया गया है वह सभी प्रकार की शासन-प्रणालियों के लिए कम अथवा अधिक रूपों में उपयुक्त है। उसने तानाशाही अथवा अधिनायकतत्र जैसी व्यवस्थाओं की क्रांतियों से रक्षा के उपाय भी सुझाए है। अधिकांश में ये वही उपाय हैं जिनका उल्लेख किया जा चुका है। शासन की विशिष्टता के कारण कुछ विशिष्ट उपाय इस प्रकार हैं—

अधिनायक को इस बात के लिए जागरूक रहना चाहिए कि जनता में पारस्परिक अविश्वास बना रहे जिससे कि वह संगठित न हो सके। इस हेतु उसने उन सभी कार्यो को प्रतिबंधित कर देने का परामर्श दिया है जिनमें व्यक्ति आपस में मिलते हैं, एकत्रित होते हैं; उदाहरण के लिए, सार्वजनिक सम्मेलन आदि। जनता में, विशेषकर विभिन्न वर्गों में, फूट डाल दी जाय। जनता को चौकन्ना रखने के लिए उत्तम प्रकार की गुप्तचर व्यवस्था का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। किंतु दूसरी तरफ वह अधिनायक से अपेक्षा करता है कि वह एक अच्छे राजा जैसा दिखावा करे; जनता उसे अपना हितैषी समझे, परिणामस्वरूप वह जनता की घृणा एवं तिरस्कार (जो क्रांति का कारण बन जाता है) का पात्र न बनेगा। उसे योद्धा के गुणों से युक्त होना ही आवश्यक नहीं है बल्कि उसे दर्शकों में यह धारणा भी पैदा करनी चाहिए कि वह एक योद्धा के गुणों से विभूषित है। इसके दो परिणाम होंगे: जहाँ वह जनता की श्रद्धा का पात्र बनेगा, वहाँ जनता उसके खिलाफ जाने की हिम्मत नहीं करेगी।

इस प्रकार अरस्तू ने एक योग्य (राजनीतिक) चिकित्सक की भाँति क्रांतियों के सभावित कारणों और उनके निदानों को स्पष्ट किया है। इन प्रयासों की परिपूर्णता पर मैक्सी ने लिखा है: "क्या आधुनिक राजनीतिक विज्ञान क्रांति को रोकने के लिए इनसे अधिक उपयुक्त निदान बतला सकता है?"[2]

अरस्तू के संप्रभुता एवं न्याय विषयक विचार :

संप्रभुता—संप्रभुता राज्य का एक अति आवश्यक तत्त्व है। आज संप्रभुता को राज्य का जीवन-तत्त्व मान लिया गया है। किंतु अरस्तू के समय में संप्रभुता का वास्तविक

---

१. अरस्तू: "...of all the things which I have mentioned that which most contributes to the permanence of constitutions is the adaptation of education to the form of government and yet in our own day this principle is universally neglected."—मैक्सी द्वारा उद्धृत, पृ० ७५

२ मैक्सी पोलिटीकल फिलॉसफीज पृ० ७६

स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाया था; संप्रभुता का सिद्धांत अपने शैशवावस्था में ही था। अरस्तू ने संप्रभुता के तत्त्व को समझा तथा राज्य में उसके स्थान को खोजने का प्रयास किया।

अरस्तू राज्य को सर्वोच्च संस्था मानता है—एक ऐसी संस्था जिसका उद्देश्य व्यक्ति को उसके सर्वोच्च लक्ष्य (सुखमय जीवन) की प्राप्ति कराना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में परिवार तथा ग्राम जैसी स्वाभाविक संस्थाएँ भी अपना योगदान देती हैं। इन सभी संस्थाओं की परिणति स्वाभाविक रूप से राज्य मे होती है; राज्य इन सभी संस्थाओं से सर्वोच्च है।

राज्य को 'सर्वोच्च' संस्था घोषित करने के उपरांत अरस्तू अगले प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। प्रश्न है . संप्रभुता कहाँ निवास करती है? संप्रभुता जन-साधारण में निहित है अथवा किसी वर्ग मे या किसी एक व्यक्ति में? अरस्तू की मान्यता है कि चूँकि राज्य का उद्देश्य अच्छे जीवन का संवर्धन करना है, इसलिए राजनीतिक शक्ति उन लोगों में निहित होनी चाहिए जो राज्य के कल्याण में सबसे अधिक योग देते है। इसके निर्णय का आधार सद्गुण है, न कि स्वतंत्रता, सम्पत्ति अथवा जन्म, और चूँकि संपूर्ण जनता का सद्गुण उसके किसी एक अंग के सद्गुण से अधिक है अत सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित होनी चाहिए। इस सर्वोच्च सत्ता की अभिव्यक्ति व्यक्तियों के द्वारा आधारभूत प्रश्नों का निर्णय करने, दंडाधीशों का चयन करने और उनके (शासकीय) कार्यों के लिए उनसे जवाब-तलब करने मे होती है। इस संदर्भ में यह जानना भी आवश्यक है कि अरस्तू संपत्तिवानों को भी शासन में भागीदारी का अधिकार प्रदान करता है क्योंकि "गुण तथा योग्यता का संपत्ति के साथ घनिष्ठ संबंध है।"

इस सत्ता के ऊपर अरस्तू कानून की सत्ता को प्रतिष्ठित करता है; कानून समग्र के सद्गुण की अभिव्यक्ति है। विधि का शासन व्यक्ति के शासन से—चाहे वह कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो—श्रेष्ठ है। अरस्तू का कथन है कि "सही ढंग से निर्मित कानून अंतिम रूप से संप्रभु होना चाहिए।"

न्याय—न्याय की यूनानी मान्यता आज की न्याय विषयक मान्यता से पूर्णत भिन्न है। आज जिसे हम 'न्याय' कहते हैं वह वस्तुतः कानूनी अथवा अदालती न्याय है। किंतु यूनानी जिसे न्याय कहते थे वह वस्तुतः नैतिकता ही थी। अरस्तू न्याय शब्द की व्याख्या अपने ग्रंथ **ईथिक्स** (Ethics) में करता है। प्रोफेसर डब्लू० डी० रॉस ने लिखा है "अरस्तू शब्द (न्याय शब्द) के दो अर्थ लेकर आगे बढ़ता है···कि क्या कानूनी है अथवा क्या वांछनीय एवं समान है?" अरस्तू के न्याय विषयक विवेचन से स्पष्ट है कि वह न्याय को राज्य का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानता है। न्याय राज्य का आधार है। व्यक्ति-व्यक्ति, व्यक्ति और राज्य तथा व्यक्ति और समाज के संबंधो में न केवल न्याय की अभिव्यक्ति होती है बल्कि न्याय ही वह तत्त्व है जो इन संबंधों की व्यवस्था करता है। वह न्याय के दो स्वरूप बतलाता है—

(क) सामान्य न्याय; तथा

(ख) विशिष्ट न्याय।

सामान्य न्याय का आशय अच्छाई अथवा श्रेष्ठता से ही नही है बल्कि संपूर्ण अच्छाई अथवा संपूर्ण श्रेष्ठता से है। इसे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है : व्यक्ति का लक्ष्य श्रेष्ठता की प्राप्ति करना है। इस श्रेष्ठता की प्राप्ति वह समाज में रहकर करता है। इस प्रकार समाज वस्तुत: श्रेष्ठता की प्राप्ति की कामना करने वाले व्यक्तियो द्वारा गठित है। यह श्रेष्ठता व्यवहार मे प्रत्येक व्यक्ति से अपेक्षा करती है कि वह अपनी श्रेष्ठता की प्राप्ति के साथ-ही-साथ अपने पड़ोसी की श्रेष्ठता की भी कामना करे। इस प्रकार सामान्य न्याय वह सद्‌गुण है जो सामाजिक सबंधो के निर्धारण एवं नियमन में अभिव्यक्त होता है। अरस्तू के अनुसार यह 'सक्रिय सद्‌गुण' (Virtue in action) है—एक "ऐसा सद्‌गुण है जो सामाजिक संबंधों के हेतु सक्रिय रहता है।"

इसके विपरीत विशिष्ट न्याय श्रेष्ठता की संपूर्णता से संबधित न होकर उसके किसी विशिष्ट पहलू से ही संबंधित होता है। स्पष्ट है विशिष्ट न्याय-क्षेत्र की दृष्टि से सामान्य न्याय की तुलना में संकीर्ण है और यही दोनों (सामान्य न्याय तथा विशिष्ट न्याय) मे अंतर है। इस व्यवस्था को इस प्रकार समझाया जा सकता है : अपने पड़ोसी की श्रेष्ठता की कामना करना मात्र पर्याप्त नहीं है। यह कामना तब तक व्यावहारिक एवं सार्थक नहीं कही जा सकती जब तक कि व्यक्ति अपने को दूसरे से श्रेष्ठ अथवा उच्च समझता है। विशिष्ट न्याय की प्रत्येक व्यक्ति से अपेक्षा है कि वह अन्य व्यक्तियों के साथ 'समानता' का बर्ताव करे और यही व्यवहार वांछनीय भी है। विशिष्ट न्याय को अरस्तू दो रूपो में विभाजित करता है—

(१) सुधारात्मक न्याय (Rectificatory Justice);

(२) वितरणात्मक न्याय (Distributive Justice)।

सुधारात्मक न्याय को कुछ लेखकों ने 'परिशोधनकारी' न्याय नाम दिया है। जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है, सुधारात्मक न्याय का संबंध व्यक्ति के व्यवहार में सुधार लाना है। विशिष्ट न्याय की अपेक्षा है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के साथ समानता के आधार पर वांछनीय व्यवहार करे। किंतु कभी-कभी व्यक्ति दूसरों के साथ इस व्यवहार पर अमल नहीं करते और कुछ ऐसे कार्य (जैसे धोखा देना, चोरी करना आदि) करने लगते है जिनसे दूसरे को अपना प्राप्य नहीं मिल पाता। सुधारात्मक न्याय का उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों के व्यवहार में सुधार लाना है। इनका उद्देश्य व्यक्ति के कष्टों का निवारण करना है तथा उन्हें दंडित करना है जिनके कारण व्यक्तियों को इन कष्टों को उठाना पड़ा है।

वितरणात्मक न्याय का संबंध व्यक्ति-व्यक्ति से न होकर व्यक्ति और राज्य से है। न्याय का यह रूप नागरिको के मध्य राजकीय पदों एवं सम्मानों के वितरण से सबद्ध है। राज्य का नागरिक होने के नाते शासन में उसकी भागीदारी है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता एवं अन्य क्षमताओं के आधार पर इस भागीदारी को निभाता है और राज्य का नागरिक होने के नाते राजकीय पदों, सम्मानों एवं राजकीय लाभों का अधिकारी है। यह पद आदि उसे अपनी योग्यता एवं क्षमता के आधार पर प्राप्त होते है और चूंकि व्यक्ति की क्षमता एवं योग्यता अलग-अलग होती है अत: यह सम्मान, पद,

आदि सभी को समान रूप से न तो प्राप्त होते है और न प्राप्त होना चाहिए। "अरस्तू के वितरणात्मक न्याय के सिद्धांत में हम यही भाव पाते है कि राजकीय पदों, सम्मानों एवं लाभों आदि का न्यायिक ढंग से वितरण तभी संभव है जब व्यक्तियों मे पाई जाने वाली स्वाभाविक असमानताओं को स्वीकार कर लिया जाय" तथा उन्हीं के अनुपात से इनका वितरण किया जाय।

न्याय के इन उपर्युक्त प्रकारों के साथ-ही-साथ अरस्तू न्याय के दो अन्य प्रकारों का भी उल्लेख करता है : यथा—(क) संपूर्ण न्याय (Absolute Justice), (ख) राजनीतिक न्याय (Political Justice)।

अरस्तू के अनुसार संपूर्ण न्याय देश तथा काल की परिधि से सीमित नहीं। इसका संबंध मनुष्य-मनुष्य से है, नागरिक-नागरिक से नही। इसे मानवीय न्याय कहा जा सकता है। राजनीतिक न्याय का संबंध नागरिक की राज्य मे भागीदारी से ही है और इस रूप मे विशिष्ट न्याय के दोनों ही रूप (सुधारात्मक एवं वितरणात्मक) राजनीतिक न्याय में समाहित हो जाते है। इस व्यवस्था को 'चार्ट' द्वारा इस प्रकार समझाया जा सकता है—
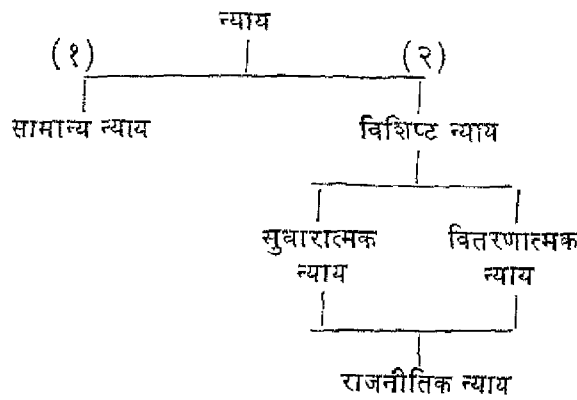
प्लेटो और अरस्तू—एक समीक्षा :

राजनीतिक दर्शन के इतिहास में यूनान को एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और यूनान के राजनीतिक दर्शन में प्लेटो एवं अरस्तू को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। बीस लम्बे वर्षों तक दोनों में घनिष्ठ संबंध रहा; प्लेटो की मृत्युपर्यन्त अरस्तू 'अकादमी' का सदस्य रहा। प्लेटो अरस्तू को अपने शिष्यों में सबसे अधिक प्रतिभावान् मानता था; अरस्तू के लिए प्लेटो एक महान् व्यक्ति था—एक "ऐसा व्यक्ति कि बुरे लोगों को उसकी प्रशंसा करने तक का अधिकार नहीं था।" यह स्वाभाविक ही था कि शिष्य पर ऐसे महान् गुरु का अमिट प्रभाव पड़ता। फॉस्टर ने इस कथन की स्वीकारोक्ति में लिखा है : "प्लेटोवाद का जितना गहरा प्रभाव अरस्तू के ऊपर पड़ा है उतना उसके अतिरिक्त

शायद किसी भी दूसरे महान विचारक पर किसी दूसरे के विचार का प्रभाव नहीं पड़ा।"[1]

युगीन परम्पराएँ, मान्यताएं, अपेक्षाएँ एवं समस्याएँ दोनों के विचारों में लगभग समान थीं। सिक्लेयर का कथन है कि "इनके विचारों में भी पर्याप्त साम्य मिलता है। सर्वप्रथम तो इन दोनों विचारकों ने होमर से सुकरात तक के राजनीतिक चिंतन, नीति तथा शिक्षा सिद्धांत की परंपरा से समान रूप से लाभ उठाया। अंतर केवल इतना है कि अरस्तू को यह परंपरा एक पीढ़ी के उपरात प्राप्त हुई और इस पर विचारों तथा अनुभवों की एक नई परत जम चुकी थी। दोनों ही यूनान के अस्थिर राजनीतिक जीवन तथा नैतिक अव्यवस्था से चिंतित थे।" युग की अपेक्षा थी कि इस अस्थिर राजनीतिक जीवन तथा नैतिक अव्यवस्था के कारणों को समझा जाय और राज्य के जीवन को नियंत्रित करने वाले नियमों की खोज की जाय, राजनीतिक जीवन के लिए आवश्यक उस लक्षण की खोज की जाय जो उन भ्रष्ट शक्तियों को समाप्त करे जो यूनानियों की सभ्यता की नींव को ही हिलाए दे रही थीं।

विशुद्ध यूनानी होने के नाते, इस संदर्भ में, दोनों ही समान मान्यताएँ लेकर चलते हैं। "दोनों का विश्वास था कि अच्छा जीवन एक साधारण औसत आकार के नगर-राज्य में ही संभव है और केवल पर्याप्त साधन-संपन्न एवं शिक्षाप्राप्त व्यक्ति ही अच्छे जीवन के आदर्श को प्राप्त कर सकता है. सभी के लिए इस आदर्श की प्राप्ति संभव नहीं है। इसीलिए दोनों ही इस आदर्श की प्राप्ति के लिए नागरिकता के अधिकारों को कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित रखना चाहते थे और दोनों ही यह उचित समझते थे कि सभी प्रकार का शारीरिक श्रम दासों अथवा अनागरिकों द्वारा ही कराया जाय।"[2]

स्पष्ट है, दोनों की विचारात्मक पृष्ठभूमि समान थी, किंतु दृष्टिकोण एवं मनोवृत्ति समान नहीं थी। उन्होंने इन युगीन समस्याओं को अलग-अलग ढंग से समझा और जो समाधान प्रस्तुत किए उनमें समानताओं की अपेक्षा असमानताएँ ही अधिक हैं, प्लेटो जहाँ एक आदर्श राज्य का निर्माण करता है वहाँ अरस्तू मौजूदा राज्यों को ही आदर्श बना देने के लिए प्रयत्नशील है। मैक्सी ने लिखा है : "प्लेटो उस श्रेष्ठ मानव की तलाश में है जो इतने अच्छे राज्य का निर्माण करे जितना अच्छा राज्य को होना चाहिए, अरस्तू ऐसे श्रेष्ठ विज्ञान की खोज में है जो इतने अच्छे राज्य का निर्माण करे जितना राज्य श्रेष्ठ हो सकता है।"[3]

अरस्तू पर प्लेटो का प्रभाव—अरस्तू के दर्शन पर प्लेटो का प्रभाव स्पष्टत परिलक्षित है। प्लेटो के **स्टेट्समैन** एवं **लॉज** विशेषकर **लॉज** में अभिव्यक्त विचारों

---

१. एम० बी० फॉस्टर "He is permeated by Platonism to a degree in which perhaps no great philosopher besides him has been permeated by the thought of another."—मास्टर्स ऑफ पोलिटीकल थॉट ; पृ० १२२

२. सिक्लेयर : यूनानी राजनीतिक विचारधारा, पृ० २७९

३ सी० सी० मैक्सी पोलिटीकल पृ० ६८

को अरस्तू का प्रेरणा-स्रोत कहा जा सकता है। सेबाइन जैसे विद्वानों का कथन है कि इनमें अरस्तू ने वही संशोधन किए हैं जो उनके अधिक स्पष्टीकरण एवं क्रमबद्धता के लिए वह आवश्यक समझता है; कुछ विद्वानों की मान्यता है कि (प्लेटो का) **लॉज** में चित्रित 'उपआदर्श राज्य' ही (अरस्तू का) **पॉलिटिक्स** का आदर्श राज्य है। प्रो० विलामोविज़ (Wilamowitz) का कथन है कि अरस्तू अन्यत्र कहीं इतना अधिक प्लेटो से प्रभावित नहीं जितना कि **पॉलिटिक्स** की ७वीं एवं ८वीं पुस्तकों में (जिनमें अरस्तू ने आदर्श राज्य विषयक चर्चा की है)।

इस संदर्भ में उन राजनीतिक आदर्शों का भी उल्लेख किया जा सकता है जिनके लिए वह प्लेटो का अत्यधिक ऋणी है। इनमें प्रमुख हैं : कानून राज्य का एक आवश्यक घटक है; कानून में वास्तविक विवेक अन्तर्निहित है; श्रेष्ठ शासन में कानून की अधीनता एक सर्वमान्य तथ्य है · **पॉलिटिक्स में** यह तत्त्व अरस्तू के आदर्श राज्य के प्रमुख तत्त्व बन गए हैं।[1]

दोनों के विचारों में अंतर—परंतु इससे यह तात्पर्य कदापि नहीं कि अरस्तू प्लेटो के प्रत्येक सिद्धांत तथा प्रत्येक मान्यता से सहमत है। इसके विपरीत प्लेटो से उसकी असहमति काफी उग्र है। विचारों में इस विभिन्नता के लिए दोनों की पारिवारिक एवं व्यक्तिगत पृष्ठभूमि की विभिन्नताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है, प्लेटो का जन्म एक कुलीन परिवार में हुआ था, जबकि अरस्तू का एक मध्यम परिवार में। प्लेटो द्वारा (**रिपब्लिक** में) प्रतिपादित 'बौद्धिक कुलीनता' तथा अरस्तू द्वारा (**पॉलिटिक्स** में) समर्थित 'मध्यमवर्गीय' श्रेष्ठता को इस पृष्ठभूमि से असंबद्ध नहीं कहा जा सकता। दूसरी तरफ अरस्तू एक ऐसा सद्गृहस्थ था जो संपत्ति, परिवार एवं दासों का स्वयं ही स्वामी था। प्लेटो की साम्यवादी मान्यताओं का समर्थन अरस्तू के लिए इनका त्याग करना जैसा ही था, जो वह नहीं कर सका। इसके विपरीत वह परिवार तथा संपत्ति को स्वाभाविक संस्था कहकर प्रत्येक के लिए उसे अनिवार्य बना देता है।

अपने निष्कर्षों में जहाँ प्लेटो कल्पना की ऊँची उड़ान भरने वाला एक आदर्शवादी दार्शनिक था वहाँ अरस्तू पूर्णतः यथार्थवादी है। जहाँ प्लेटो निगमन पद्धति का अनुसरण करता है, वहाँ अरस्तू आगमन पद्धति का, प्लेटो जहाँ हमें एक आदर्श राज्य प्रदान करता है, वहाँ अरस्तू हमें वह आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराता है, जिससे परिस्थितियों के अनुकूल एक श्रेष्ठ राज्य का निर्माण किया जा सकता है। अरस्तू प्लेटो की शिक्षा विषयक, न्याय विषयक, दार्शनिक राजा विषयक मान्यताओं से जहाँ असहमत है वहाँ साम्यवाद जैसी मान्यताओं का कटु आलोचक भी है। फॉस्टर ने लिखा है : "(दोनों में) राजनीतिक दर्शन में विभिन्नता के दो प्रमुख तत्त्व यह है कि अरस्तू प्लेटो के अत्यधिक विशिष्ट सिद्धांत की आलोचना करता है और अत्यधिक मौलिक सिद्धांत को अस्वीकार।"[2]

---

१. सेबाइन . "These become factors not of a second best State but of the ideal State itself."—ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी; पृ० ६५

२ मास्टर्स ऑफ थाट पृ० १२२

प्लेटो की अरस्तू द्वारा की गई आलोचना अरस्तू ने अपने महान गुरु (प्लेटो) के राजनीतिक दर्शन की कटु आलोचना की है। सिक्लेयर ने लिखा है: "अरस्तू की रचनाओं में इस प्रकार की आलोचना बहुधा मिलती है जो कुछ स्थलो पर तो महत्त्वपूर्ण और कुछ स्थलों पर महत्त्वहीन एवं क्षुद्र है।"[1] जिन सिद्धांतों की उसने कटु आलोचना की है उनमें प्रमुख हैं—

(अ) राज्य की एकता विषयक मान्यता।

(ब) साम्यवादी सिद्धांत :

(i) स्त्रियों का साम्यवाद,

(ii) संपत्ति का साम्यवाद।

(स) दार्शनिक राजा विषयक विचार।

राज्य की एकता विषयक मान्यता—प्लेटो ने **रिपब्लिक** की पूर्वी पुस्तक में राज्य की एकता के संबंध में चर्चा की है, उसका निष्कर्ष है कि राज्य की अत्यधिक एकता राज्य के हित में होगी। एकता की प्राप्ति ही राज्य का अभीष्ट है। अरस्तू का कथन है कि प्लेटो इस मान्यता को उस सीमा तक ले गया है जहाँ वह स्वयं राज्य के अस्तित्व के लिए घातक बन सकती है। व्यक्तियों द्वारा परिवार और परिवारों द्वारा राज्य गठित है, इस क्रम में निम्नतर इकाई (व्यक्ति) में अपनी उच्चतम इकाई (राज्य) की तुलना में एकता का तत्त्व अपने अधिकतम रूप में मौजूद है। एकता पर अत्यधिक बल देने का तात्पर्य यह होगा कि राज्य परिवार में और परिवार व्यक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाएगा। यदि यही एकता है तो राज्य का अंत भी यही है। सिक्लेयर ने लिखा है "इस बात को सर्वप्रथम समझने का श्रेय अरस्तू को ही है कि एकता एवं एकरूपता की अत्यधिक अभिलाषा का परिणाम अंततोगत्वा नगर-राज्य की सुरक्षा नहीं, उसका विनाश ही होता है।"[2]

इसके विपरीत अरस्तू राज्य को स्वभावतः बहुल मानता है इसलिए कि राज्य उन व्यक्तियों द्वारा गठित है जो प्रकृति से समान होकर असमान हैं तथा जिनमें आत्म-निर्भरता की कमी है; व्यक्तियों का लक्ष्य इसी आत्मनिर्भरता की प्राप्ति करना है। राज्य का उद्देश्य अपने नागरिकों को इसी लक्ष्य की प्राप्ति कराना है। राज्य की श्रेष्ठता का मापदण्ड भी यही है।

साम्यवादी सिद्धांत—आदर्श राज्य में एकता की प्राप्ति के लिए यह दार्शनिक (प्लेटो) इतना आतुर है कि वह परिवार तथा संपत्ति जैसी स्वाभाविक संस्थाओं का संरक्षक वर्ग के लिए निषेध कर देता है। यही उसकी साम्यवादी व्यवस्था है। अरस्तू प्लेटो के इन विचारों से पूर्णतः असहमत है; उसने साम्यवादी सिद्धांत की कटु आलोचना की है। सुविधा के लिए पहले **परिवार के साम्यवाद** को लेंगे—

(अ) अरस्तू परिवार को एक प्राकृतिक संस्था मानता है। यही वह स्थान है

---

१. सिक्लेयर : यूनानी राजनीतिक विचारधारा ; पृ० २७९

२ वही पृ० १००

जहाँ व्यक्ति मानवता का प्रथम पाठ सीखता है। यह दुर्भाग्य ही था कि प्लेटो इसका (परिवार का) महत्त्व न जान सका।

(ब) यदि इस संस्था को समाप्त भी कर दिया गया तो भी राज्य की एकता प्राप्त न हो सकेगी : 'मेरे' और 'तेरे' की स्वाभाविक प्रवृत्ति 'सबकी' न बन सकेगी।

(स) स्त्रियों के संबंध में तो यह अव्यवस्था एवं अशान्ति को ही जन्म देगी। 'एक स्त्री' यदि 'सभी की पत्नी' बन भी जाती है तो इससे पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य ही अधिक बढ़ेगा जो अन्ततः राज्य की एकता के लिए घातक बन जाएगा।

अरस्तू लिखता है : "जिस (नगर) राज्य में स्त्रियों और बच्चों पर सबका समानाधिकार होगा वहाँ प्रेम पतला पानी बन जाएगा।"

प्लेटो ने रिपब्लिक में संरक्षक वर्ग को व्यक्तिगत संपत्ति से भी वंचित रखा है। संपत्ति केवल उत्पादक वर्ग के पास होगी और उसका एक निर्धारित भाग वह संरक्षक वर्ग के उपयोग के लिए देंगे। संपत्ति का साम्यवाद यही है। अरस्तू ने स्त्रियों के साम्यवाद के समान ही सम्पत्ति के साम्यवाद की आलोचना की है। किंतु यहाँ अरस्तू का मुख्य लक्ष्य आलोचना करना नहीं है, लक्ष्य है स्वयं के संपत्ति विषयक सिद्धांत का प्रतिपादन करना; आलोचना मात्र सापेक्ष है, जैसा कि निम्न से स्पष्ट है—

(द) अरस्तू की मान्यता है कि संपत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व स्वाभाविक रूप से होना चाहिए। संपत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व न केवल अनेकानेक कठिनाइयों का स्वतः ही निदान है, बल्कि यह व्यक्तिगत प्रसन्नता का भी उद्गम है। वह लिखता है : "व्यक्ति किसी वस्तु को अपना समझता है तो उसके आनंद में अकथनीय अंतर पड़ जाता है।" संपत्ति विषयक व्यवस्था के संबंध में उसकी अपनी मान्यता यह है कि 'संपत्ति का स्वामित्व व्यक्तिगत तथा उपयोग सार्वजनिक होना अपेक्षाकृत अधिक अच्छा है एवं विधि-निर्माता का अपना विशिष्ट कार्य यह है कि वह मनुष्यों की संपत्ति संबंधी प्रवृत्ति को इस प्रकार बनाए।'

(य) अरस्तू प्लेटो की इस मान्यता को गलत बतलाता है कि व्यक्तिगत संपत्ति ही सभी प्रकार की बुराइयों की जड़ है और इसीलिए वह आदर्श राज्य में संरक्षक वर्ग को व्यक्तिगत संपत्ति प्रदान नहीं करता। अरस्तू की मान्यता है कि सभी प्रकार की बुराइयों की जड़ व्यक्ति की दूषित प्रवृत्ति ही है, संपत्ति नहीं।

(र) प्लेटो का संरक्षक वर्ग को संपत्ति से वंचित करना उन्हें सुख से वंचित कर देना जैसा ही है। यही नहीं, दूसरी तरफ वह (प्लेटो) उन्हें (संरक्षक वर्ग) समग्र राष्ट्र को सुखी बनाने का दायित्व भी सौंपता है। अरस्तू पूछता है : "यदि नगर-रक्षक ही सुखी नहीं होंगे तो और कौन सुखी होगा ?"

(ल) अरस्तू संपत्ति के साम्यवाद को इतिहाससंगत नहीं मानता। उसका कथन है कि यदि यह सब बातें वास्तव में अच्छी होतीं तो अज्ञात न रह जातीं। पिछले युगों में उन्हें अवश्य ही स्वीकारा गया होता। उसका परामर्श है : "बीते हुए युगों के अनुभवों की शिक्षा की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।"

दार्शनिक राजा विषयक आलोचना—प्लेटो 'विवेक के शासन' को प्रधानता देता है। आदर्श राज्य में शासन की अंतिम सत्ता इसी दार्शनिक राजा मे निहित है। दार्शनिक राजा में वह विवेक की चरम परिणति मानता है। ऐसे शासन में वह कानूनों को आवश्यक नहीं मानता। अरस्तू, इसके विपरीत, विधि के शासन को श्रेष्ठ मानता है। वह कानून को समूची जनता के सामूहिक विवेक की अभिव्यक्ति मानता है। कानून के निर्माण में ऐसा सामूहिक विवेक व्यक्तिगत विवेक (चाहे वह कितना ही श्रेष्ठतर क्यों न हो) से हमेशा ही श्रेष्ठ होता है। कानून इच्छा से प्रभावित न होने वाला विवेक है। विधि का शासन श्रेष्ठ राज्य का लक्षण है।

लॉज की आलोचना—लॉज की मान्यताएँ **रिपब्लिक** की तुलना में अधिक व्यावहारिक हैं। कानून के शासन की तरफ प्लेटो का झुकाव इस ग्रंथ की अपनी विशिष्टता है। अरस्तू ने **लॉज** से बहुत-कुछ लिया है। यह सही है, फिर भी उसे इस ग्रंथ में कुछ आपत्तिजनक व्यवस्थाएँ दीखी हैं जिनकी कटु आलोचना अरस्तू ने की है—

(१) अरस्तू यह स्वीकार करता है कि **लॉज** की शासन पद्धति तात्कालिक नगर-राज्यों की शासन-पद्धति के अधिक समान है। किंतु उसका आक्षेप है कि प्लेटो धीरे-धीरे इस पद्धति को आदर्श शासन-पद्धति की ओर ही ले जाता है और इसीलिए वह कहता है कि "लॉज के विषय में भी वही अथवा लगभग वही आक्षेप लागू होते हैं।"

(२) राज्य में योद्धाओं की जो संख्या प्लेटो ने निर्धारित की है उसे अरस्तू विशाल मानता है और उसकी अनावश्यकता की तरफ संकेत करता है। ऐसे काल्पनिक अनुमान को वह गलत मानकर कहता है: "यह सच है कि हम स्वेच्छा से कल्पना करने में स्वतंत्र है, पर निश्चय ही असंभव की कल्पना करने की स्वतंत्रता हमको कदापि नहीं।"

(३) कानूनों के निर्धारण में प्लेटो देश का विस्तार तथा देश की जनसंख्या पर दृष्टि रखने को कह सकता है। अरस्तू इसे अपूर्ण एवं अपर्याप्त मानता है। उसकी दृष्टि में, इस संदर्भ में, नियम-निर्माता को आस-पड़ोस के देशों पर भी दृष्टि रखना चाहिए। यह सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक है।

(४) लॉज में प्लेटो व्यक्तिगत संपत्ति की सीमा निर्धारित करता है। उसका कथन है कि संपत्ति इतनी होनी चाहिए जो संयम और संतुलित जीवन के लिए पर्याप्त हो। अरस्तू को 'संतुलित' शब्द पर आपत्ति है। इसके स्थान पर वह 'उदारता' शब्द के प्रयोग का परामर्श देता है। इसे वह "संपत्ति के उपयोग से वाञ्छनीय सद्गुण" कहता है।

(५) अरस्तु संपत्ति की सीमा निर्धारण से अधिक महत्त्व 'परिवार नियोजन' को देता है और इसे अधिक आवश्यक मानता है। उसका कथन है कि शिशु प्रजनन पर रोक अथवा परिवार नियोजन की अवहेलना नागरिकों में निर्धनता का, और निर्धनता नगर में विद्रोह और दुराचार का अनिवार्य कारण बन जाती है।

(६) अरस्तू का आक्षेप यह भी है कि प्लेटो यह नही बतलाता कि शासक शासितों से किस प्रकार भिन्न होते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह पूर्णतःस्पष्ट है कि अरस्तू प्लेटो का सबसे बड़ा आलोचक है। उसने प्लेटो के सभी सिद्धांतों की कटु आलोचना की है किन्तु जैसाकि सिक्लेयर ने लिखा है यह आलोचना कुछ स्थलों पर तो महत्त्वपूर्ण है किंतु कुछ स्थलों पर महत्त्वहीन एवं क्षुद्र बन गई है।

अरस्तू में यूनानी एवं शाश्वत तत्त्व

अरस्तू के राजनीतिक दर्शन का अध्ययन करने के उपरांत हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते है कि अरस्तू का दर्शन दो प्रकार के तत्त्वों से निर्मित है : प्रथम, वह तत्त्व जो तात्कालिक जीवन एवं सभ्यता से संबद्ध होने के कारण 'यूनानी' है, जो विगत युग से संबद्ध होने के कारण परंपरागत हैं, परिणामस्वरूप, अस्थायी एवं नश्वर है तथा जो अरस्तू के दर्शन की सबसे कमजोर कड़ी होने के कारण सबसे अधिक आलोच्य है; दूसरे, वह तत्त्व जो राजनीतिक दर्शन के मौलिक सिद्धांतों से संबद्ध होने के कारण शाश्वत हैं तथा जो अरस्तू की राजनीतिक दर्शन को श्रेष्ठतम देन होने के कारण प्रशसनीय है।

पिछले विवेचन में उपर्युक्त स्थलों पर, इन तत्त्वों की चर्चा की गई है। आइए, अधिक स्पष्टीकरण के लिए इन तत्त्वों को यहाँ सूचीबद्ध करने का प्रयास करें—

यूनानी तत्त्व—अरस्तू के चिंतन की पृष्ठभूमि में यूनान और यूनानी जीवन की परिस्थितियाँ थीं। डनिंग ने लिखा है . "जिस राजनीतिक पद्धति का उसने निर्माण किया है उसके आवश्यक तत्त्व उन परिस्थितियों से निर्मित हुए हैं जो उस परिधि में व्याप्त थी।"[1] यही कारण है कि हम अरस्तू के दर्शन में कुछ ऐसे सिद्धांत अथवा मान्यताओं को पाते हैं जो विशुद्ध रूप में यूनानी है। इनमे प्रमुख निम्नलिखित है—

(अ) यूनान का नगर-राज्य उसके दर्शन का केंद्र है। गैटिल ने लिखा है: "वह नगर को ही राजनीतिक इकाई का उचित रूप मानता था और उसकी पुनः स्थापना करना तथा उसको स्थायी बनाना ही उसका मुख्य लक्ष्य था।"[2] नगर-राज्य व्यवस्था के प्रति उसकी यह आसक्ति इस बात से और भी स्पष्ट हो जाती है कि जब वह लिख रहा था तब तक स्वतंत्र नगर-राज्यों का अस्तित्व पूर्णतः समाप्त हो गया था और उनके अवशेषों पर एक विशाल साम्राज्य निर्मित हो रहा था। फॉस्टर लिखता है : "वह नगर-राज्य का राजनीतिक दर्शन इस प्रकार लिखता है मानो वह बीते हुए युग की विशेष घटना मात्र नहीं बल्कि शाश्वत (वस्तु) है।"[3]

(ब) दास प्रथा के समर्थन के पीछे अरस्तू का यूनानी जीवन एवं यूनानी सभ्यता के प्रति आकर्षण ही है। जहाँ तक उसके औचित्य का प्रश्न है वह दास प्रथा को स्वामी तथा दास दोनों के लिए हितकारी मानता है।

---

१. डनिंग : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरीज, पृ० ९३ ; Vol. I.
२. गैटिल : राजनीतिक चिंतन का इतिहास ; पृ० ८३
३. फॉस्टर : मास्टर्स ऑफ पोलिटीकल थॉट पृ० १२२

(स) अरस्तू जाति व श्रेष्ठता के सिद्धांत का समर्थक है . वह यूनानी जाति को सर्वश्रेष्ठ मानता है ।

(द) अरस्तू की नागरिकता विषयक ये मान्यताएँ भी मूलतः यूनानी हैं । वह दासों को तथा श्रमिकों को नागरिक नहीं कहता ।

(य) शिक्षा को यूनान के नगर-राज्यों में केंद्रीय स्थान प्राप्त था । शिक्षा को श्रेष्ठ नागरिक के निर्माण के एक महत्त्वपूर्ण माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया था । प्लेटो तथा अरस्तू जैसे दार्शनिकों ने अपने ग्रंथों में शिक्षा व्यवस्था को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है ।

शाश्वत तत्त्व—अरस्तू की आलोचना का एक कारण यही यूनानी तत्त्व है । तत्त्व अस्थायी होने के कारण कई शताब्दियों के इस अंतराल में या तो विलुप्त हो गए हैं या फिर इस प्रकार संशोधित हो गए हैं कि उन्होंने अपने उस महत्त्व को खो दिया है जो कभी अरस्तू ने उन्हें प्रदान किया था । किंतु यही अरस्तू का दर्शन नहीं है, उसका दर्शन तो उन तत्त्वों की खान है जिन्हें आज भी मान्यता प्राप्त है, जो शाश्वत हैं । प्रो० डनिंग ने लिखा है : "जब हम उसके दर्शन में यूनानी मान्यताओं द्वारा निर्मित सामान्य रूपरेखाओं के नीचे देखते हैं, हम उन सिद्धांतों की एक लंबी कतार पाते हैं जो इतने निश्चित हैं जितनी कि मानव प्रकृति स्वयं और जो आज भी राजनीति विज्ञान के प्रमुख लक्षण हैं—ठीक उसी रूप में जिस रूप में अरस्तू ने उन्हें निर्मित किया था ।"[1] अरस्तू के राजनीतिक दर्शन के ये तत्त्व देश और काल की सीमाओं से परे हैं । गैटिल ने लिखा है : "यद्यपि अरस्तू के कार्य का आधार यूनानी जगत की परिस्थितियाँ थीं फिर भी उसने ऐसे अनेक गंभीर सामान्य सिद्धांत प्रतिपादित किए जो हर देश और काल की परिस्थितियों में क्रियान्वित किए जा सकते हैं ।"[2] यही वह तत्त्व हैं जिन्होंने अरस्तू को "राजनीति विज्ञान का जन्मदाता" बना दिया है । ये तत्त्व निम्नलिखित हैं—

(१) अरस्तू ही वह प्रथम राजनीतिक दार्शनिक है, जिसने राज्य को एक प्राकृतिक संस्था घोषित किया है—एक ऐसी संस्था जिसका उद्देश्य अपने नागरिकों को श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति कराना है । उसने लिखा है : "राज्य का जन्म जीवन के लिए हुआ है और वह इसलिए कायम है कि उसका लक्ष्य श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति कराना है ।"[3]

(२) अरस्तू ने इस मौलिक तथ्य का स्पष्ट रूप में प्रतिपादन किया कि "मनुष्य प्रकृतिशः एक सामाजिक प्राणी है ।"[4] उसकी प्रकृति उसे समाज में रहने के लिए बाध्य करती है ।

(३) राज्य-सत्ता एवं व्यक्ति-स्वतंत्रता में उचित तालमेल बैठाना राजनीति की समस्या रही है । अरस्तू इस समस्या के समुचित समाधान प्रस्तुत करने के लिए याद

---

१. डनिंग : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरीज; Vol I; पृ० ६४

२. गैटिल : राजनीतिक चिंतन का इतिहास; पृ० ८३

३. अरस्तू . "State has come into being for life and it continues for good life."

४. अरस्तू : "Man is by nature a social animal "

किया जाता है। उसका कथन है : "संविधान के अंतर्गत (संचालित) जीवन को दासता नहीं बल्कि सर्वोच्च कल्याणकारी जीवन समझा जाना चाहिए।"[1]

(४) शासन का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप विद्वानों के बीच विवाद का विषय बना रहा है। प्लेटो ने कहा था. "वह शासन श्रेष्ठ है जो विवेक द्वारा शासित है।"

(५) विभिन्न प्रकृति वाले व्यक्तियों द्वारा गठित होने के कारण राज्य प्रकृतिश: बहुल है, इसी मान्यता के आधार पर अरस्तू ने प्लेटो की (राज्य की) अत्यधिक एकता प्राप्ति की अभिलाषा की कटु आलोचना की थी। सिक्लेयर ने लिखा है : "इस बात को सर्वप्रथम समझने का श्रेय अरस्तू को ही है।"[2]

इन सिद्धांतों के अलावा उसके दर्शन में हम उन तत्त्वों को भी पाते है जिन्होंने कालांतर में चलकर राजनीति विज्ञान के आधारभूत सिद्धांतों का रूप धारण कर लिया है। ये तत्त्व हैं—

(६) अरस्तू की मान्यता थी कि प्रत्येक राज्य में एक सर्वोच्च शक्ति होती है। 'संप्रभुता' यही सर्वोच्च शक्ति है। राज्य के इस परम आवश्यक तत्त्व पर विस्तार से चर्चा बाद के विचारकों ने की।

(७) अरस्तू का कथन है कि संवैधानिक सरकार के गठन मे तीन तत्त्व विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं : ये हैं विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका। यह सही है कि अरस्तू ने इस विषय पर विस्तार से चर्चा नहीं की किंतु इस सिद्धांत के प्रारंभिक विचारक के रूप में अरस्तू को याद किया जाएगा।

(८) राजनीतिक जीवन पर आर्थिक साधनों के प्रभाव को अरस्तू ने सर्वप्रथम समझने का प्रयास किया था।[3] वह व्यक्तिगत संपत्ति की आवश्यकता को स्वीकार करता है। उसके राज्यों के वर्गीकरण, राज्यों में क्रांतियाँ आदि सिद्धांतों में इस आर्थिक तत्त्व की प्रमुखता को पहचाना जा सकता है। बाद के दार्शनिकों ने इस विषय पर विस्तार से विचार किया है और परिणामस्वरूप अनेकानेक सिद्धांतों का निर्धारण किया गया है।

प्रमुख देन—वस्तुत: राजनीतिक दर्शन को अरस्तू की यही देन है। बाद के राजनीतिक विचारकों के लिए **पॉलिटिक्स** महत्त्वपूर्ण प्रेरणा-स्रोत बन गई। राज्य की प्रकृति, व्यक्ति की प्रकृति, कानून का शासन जैसे विषयों में अरस्तू 'प्रमाण' बन गया है। अपनी इसी देन के कारण अरस्तू को 'राजनीति विज्ञान का जनक' माना गया है।

---

१. अरस्तू : "...Life in subjection to constitution is not to be regarded as slavery but as highest welfare."

२. सिक्लेयर : यूनानी राजनीतिक विचारधारा; पृ० १००

३. इस संदर्भ में डनिंग ने लिखा है : "The permanent and universal side of Aristotle's philosophy is peculiarly illustrated by the importance which he attaches to economic influences in political organisation and activity."—ए हिस्ट्री ऑफ ... थ्योरीज Vo I पृ० ६६

सिसरो

[CICERO]

[ई० पू० १०६—४३]

ाव बहुत अधिक था, किन्तु उसके प्रयास पूर्णतः असफल रहे ·····।"

—जी० एच० सेबाइन

ट—

र—(i) स्थान : रोम; (ii) जन्म : १०६ ई० पू०; (iii) मृत्यु : ४३ ई० पू०।

—(i) डी रिपब्लिका;
(ii) डी लेजीबस।

जनीतिक विचार अपनी मौलिकता के कारण महत्त्वपूर्ण नहीं नयाँ संकलन मात्र हैं।" —*जी० एच० सेबाइन*

ान युग का प्रमुख दार्शनिक था। सिसरो ही वह एक मात्र 'रोमन' नक सिद्धांत विषयक प्रश्नों पर विस्तार से लिखा है। राजनीतिक उसे एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। किंतु इस 'विशिष्टता' का कारण विषयक और न पद्धति विषयक मौलिकता है। सेबाइन ने लिखा है : तक विचार अपनी मौलिकता के कारण महत्त्वपूर्ण नहीं है। उसके ही है, जिसे उसने स्वयं स्वीकार किया है।" गैटिल इसी आशय को और मे लिखते हैं : "उसने अन्य चिंतकों के अच्छे-अच्छे विचारों को चुना र उन्हें एक संवाद के रूप में व्यवस्थित कर दिया है और इस प्रकार ानीतिक दर्शन के सारांश को एक ऐसे ढंग से व्यक्त किया है जैसाकि अन्य कोई विद्वान् नहीं कर पाया है।" सिसरो का प्रमुख कार्य रोम के चिंतन में समाविष्ट करना था, किंतु ऐसा करने में उसने उन ने स्पष्ट परिवर्तन कर दिया है। उदाहरण के लिए, 'स्टोइकों का का सिद्धांत यूनानी विचारकों के राजनीतिक महत्त्व के पराभव का र में वही आदर्श एक वास्तविक विश्व का सिद्धांत और रोमन

नागरिकों के इस गौरवपूर्ण आत्मविश्वास का, कि उन्हें एक विशेष ऐतिहासिक कार्य का संपादन करना था, प्रतीक बन गया। इसी प्रकार, स्टोइक दर्शन से प्राप्त 'प्राकृतिक कानून' की उसकी व्याख्या राजनीतिक विचारों के इतिहास मे सिसरो के महत्त्व का एक मात्र कारण बन गई है।

इस संदर्भ में यह जानना आवश्यक है कि सिसरो प्लेटो अथवा अरस्तू के समान दार्शनिक नहीं था। वह एक कानूनवेत्ता, और उससे भी अधिक एक ऐसा राजनीतिज्ञ था, जिसने अपने देश (रोम) की राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लिया था, किंतु इस क्षेत्र में भी उसे असफलता ही हाथ लगी थी; उसे देश-निर्वासन का दण्ड मिला था तथा ४४ ई० पू० में जूलियस सीज़र की हत्या के दूसरे ही वर्ष उसकी भी हत्या कर दी गई थी।

जहाँ तक उसके राजनीतिक विचारों का प्रश्न है वह भी सामयिक नहीं थे। उसके अपने समय में देश में गृह-युद्ध की परिस्थितियाँ व्याप्त थीं। समूची संवैधानिक व्यवस्था 'बैठती' जा रही थी। ऐसी स्थिति में सिसरो अपने देशवासियों की पुरानी शासन प्रणाली को ही बनाए रखने की प्रेरणा देता है। सेबाइन ने लिखा है: "अपने इन प्रयासों में उसे असफलता ही हाथ लगी। क्योंकि वह असंभव को संभव बनाने के लिए प्रयत्नशील था। यह कार्य 'घड़ी की सुइयों' को पीछे घुमाने जैसा ही था। यह इस राजनीतिज्ञ की अदूरदर्शिता का ही परिचायक था। सिसरो अपने युग की सामाजिक एवं आर्थिक शक्तियों के क्रांतिकारी प्रभावों को समझने में बिलकुल ही असमर्थ रहा। यही कारण था कि समसामयिक राजनीति पर उसकी रचनाओं का बहुत ही कम प्रभाव पड़ा, किंतु उसके न्याय तथा प्राकृतिक कानून विषयक विचार रोम के कानून संबंधी चिंतन में समा गए और बाद के कानूनवेत्ताओं एवं प्रारंभिक ईसाई लेखकों को उन्होंने बहुत प्रभावित किया और उसका विश्व-एकता एवं सार्वभौमिक कानून तथा सत्ता का सिद्धांत समूचे मध्ययुग में राजनीतिक चिंतन का केंद्रीय सिद्धांत बना रहा। सेबाइन ने इसी संदर्भ में लिखा है: "सिसरो और उसके ऐतिहासिक महत्त्व को समझने के लिए यह आवश्यक है कि (उसकी) रचनाओं के तात्कालिक लक्ष्य और उसके द्वारा डाले गए दूरगामी प्रभावों के बीच स्पष्ट अंतर किया जाए। उसका प्रभाव बहुत अधिक था किंतु जिसे उसने प्राप्त करना चाहा उसमें पूर्ण असफलता ही हाथ लगी।"

सामान्य परिचय :

सिसरो रोम का निवासी था। इसका जन्म ई० पू० १०६ में हुआ था। सिसरो का पूरा नाम मार्क्स टूलियस सिसरो था। वह दर्शनशास्त्री कम और कानूनवेत्ता एवं राजनयिक अधिक था, एक ऐसा राजनयिक जो तात्कालिक राजनीति में गहरा पैठा हुआ था तथा जिसमें उसने सक्रिय रूप से भाग भी लिया था। यह रोम का संक्रमण काल था; रोमन गणतंत्र 'रोम साम्राज्य' में परिवर्तित हो रहा था। शासन के अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन रहकर उसे शासन एवं राजनीति को समीप से देखने का अवसर

प्राप्त हुआ था। ५ वर्ष तक वह कांसल के पद पर भी रहा था। ई० पू० ५८ से ई० पू० ५७ की अवधि में वह रोम से निर्वासित भी रहा।

साम्राज्य के विस्तार के परिणामस्वरूप आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में अनेकानेक परिवर्तन हो रहे थे। धनी सामन्तों एवं सर्वहारा के बीच की खाई चौड़ी एवं गहरी होती जा रही थी। परिणामस्वरूप जहाँ समाज में असंतोष एवं असुरक्षा जैसी धारणा प्रबल हो रही थी, वहाँ राजनीतिक संस्थाओं की पारस्परिक शत्रुता ने गृह-युद्ध जैसी परिस्थितियों का निर्माण कर दिया था। इस राजनीतिक उथल-पुथल ने सीजर जैसे व्यक्तियों को शक्तिशाली बना दिया था। सिसरो ने इन प्रयत्नों को रोकने का भरपूर प्रयास किया और रोमन नागरिकों को पुरानी प्रशासन प्रणाली को कायम बनाए रखने की प्रेरणा दी। परिणामस्वरूप, सिसरो प्रशासन का विरोधी बन गया था और इसी विरोध से उसे अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ा। ई० पू० ४३ में उसकी हत्या कर दी गई।

प्रमुख रचनाएँ :

सिसरो गंभीर विचारक एवं विद्वान् लेखक था। उसने राजनीतिक दर्शन, नीतिशास्त्र, साहित्यशास्त्र जैसे विषयों पर अनेक ग्रंथों की रचना की है। राजनीतिक दर्शन पर उसके जिन दो ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है, वे हैं : **डी रिपब्लिका** एवं **डी लेजीबस**। **डी आफिसिस** राजनीतिक दर्शन पर उसका तीसरा ग्रंथ है किंतु प्रथम दो ग्रंथों की तुलना में **डी आफिसिस** उल्लेखनीय नहीं है। सिसरो का सबसे विख्यात ग्रंथ **डी रिपब्लिका** ही है, जो प्लेटो की **रिपब्लिक** का ही अनुकरण है। प्लेटो की **रिपब्लिक** के समान ही **डी रिपब्लिका** का उद्देश्य भी राज्य में 'न्याय' की खोज करना है। यही नहीं, सिसरो ने इन ग्रंथों में जिस शैली को अपनाया है वह प्लेटो की संवाद शैली ही है। सिसरो ने **डी रिपब्लिका** में एक आदर्श-राज्य का चित्रण किया है। किंतु सिसरो का यह आदर्श-राज्य प्लेटो के आदर्श-राज्य की तरह काल्पनिक न होकर एक ऐसी वास्तविक राज्य की रूपरेखा है जिसे इस पृथ्वी पर निर्मित किया जा सके।

डी रिपब्लिका में राज्य का उद्भव एवं स्वरूप, सरकारों के प्रकार तथा उनमें न्याय का स्थान आदि विषयों को सन्निहित किया गया है। **डी लेजीबस** **डी रिपब्लिका** का स्पष्टीकरण ही है। इसकी तुलना प्लेटो की तीसरी एवं अंतिम कृति **दी लॉज** से की जा सकती है। सिसरो अपनी इस पुस्तक में, लॉज के समान ही 'कानून' की चर्चा करता है। किंतु इस पुस्तक में जिन कानूनों का उल्लेख है, वह 'यूनानी' न होकर 'रोमन' हैं। एफ० डब्लू० कोपर ने लिखा है : "अपनी रचनाओं में सिसरो का प्राथमिक लक्ष्य नये दर्शन का निर्माण करना नहीं था, वरन् यूनानी (स्टोइक तथा अन्य) लेखकों के विचारों से अपने देशवासियों को अवगत कराना था और यह बतलाना कि इन विचारों को रोम पर किस प्रकार लागू किया जा सकता है।"

प्रमुख प्रभाव -

उसने अपने विचारों को अनेकानेक स्रोतों से संकलित किया है। सिसरो के विचारों पर अनेक विचारों एवं विचारकों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित है। इनमें निम्नलिखित का उल्लेख किया जा सकता है : (१) यूनानी राजनीतिक विचारक, (२) रोम के उसके पूर्वगामी विचारकों की मान्यताएँ एवं रोमन विधि व्यवस्था तथा (३) राजनीतिक जीवन का उसका अपना अनुभव। यूनानी दर्शन के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण विचारकों एवं विचारधाराओं का सिसरो के विचारों पर स्पष्ट प्रभाव है। गैटिल ने लिखा है : "प्लेटो से उसने (सिसरो ने) सीखा कि न्याय और सभ्यकता के सिद्धांत सनातन है; सिसरो ने प्रारम्भिक यूनानियों और बाद के स्टोइकों के इस विचार का अनुसरण किया कि राज्य एक विवेकमूलक और वाछनीय संस्था है, न कि स्वार्थों पर आधारित एक कृत्रिम रचना। सिसरो स्टोइकों के इस सिद्धांत को ग्रहण करता है कि सर्वोच्च सार्वभौमिक कानून प्रकृति में विद्यमान है। सिसरो पॉलिबियस (रोम का प्रथम महत्त्वपूर्ण राजनीतिक चितक) की किन्हीं मान्यताओं से न केवल प्रभावित था बल्कि उन्हें उसने अपने दर्शन में स्थान दिया है। प्रो० डनिंग ने लिखा है : "इस कथन से इंकार नहीं किया जा सकता कि सिसरो के विचार पॉलिबियस के सुझावों का अनुसरण करते है। सरकार परिवर्तन की 'चक्रात्मक व्यवस्था' एवं 'मिश्रित शासन पद्धति व्यवस्था' के समर्थन में सिसरो रोम के अपने इस (पॉलिबियस) पूर्वगामी विचारक के स्पष्ट प्रभाव में है।"

जहाँ तक तात्कालिक व्यवस्थाओं के प्रभाव का प्रश्न है, इससे कोई भी राजनीतिक अछूता नही रहता। सिसरो भी इसका अपवाद नही है। गृह-युद्ध की जिन परिस्थितियों मे रोम सिसरो के युग मे फंसा हुआ था, उनमें सिसरो ने एकमात्र सुझाव यही दिया था कि 'रोम के नागरिक पुरानी प्रशासन प्रणाली को ही कायम रखें'। अपने दर्शन मे उसने इसी व्यवस्था का समर्थन किया था। किंतु इन असाधारण परिस्थितियों मे सिसरो के सुझावों को मानने के लिए कोई भी तैयार नहीं था। इसी आधार पर सिसरो के विचारों में 'अवास्तविकता' एवं 'अव्यावहारिकता' का दोष लगाया जाता है। सेबाइन ने इसे 'घड़ी की सुइयों' को पीछे की ओर घुमा देना जैसा बतलाया है। उद्देश्य मे निर्माण के समय जो थोड़ी-सी वास्तविकता थी भी वह उसकी मृत्यु के उपरांत एक पीढ़ी के भीतर बिल्कुल ही समाप्त हो गई।

विभिन्न विचारकों से लिए इन विचारों के मेल से उसने जिस 'भव्य भवन' का निर्माण किया है वह उसका अपना स्वयं का है। गैटिल ने इस आशय की स्वीकारोक्ति मे लिखा है : "उसका मुख्य कार्य यूनानी विचारों को रोम के चिंतन में समाविष्ट करना था, किन्तु ऐसा करने में उसने उन विचारों के महत्त्व मे स्पष्ट परिवर्तन कर दिया है।" इस संदर्भ में वह (गैटिल) विश्व-नागरिकता के सिद्धांत का उल्लेख करता है; जबकि प्लेटो एवं अरस्तू के दर्शन का केंद्र 'नगर-राज्य' थे, सिसरो 'विश्व' की चर्चा करता है; यही नहीं, प्लेटो तथा अरस्तू के राजनीतिक सिद्धांतों में 'मानवता' के लिए कोई स्थान नहीं था उनके लिए विश्व यूनानियों एव आर्यो जो जगली और असभ्य थे मे विभाजित

था सिसरो का दृष्टिकोण इसके विपरीत सार्वभौमिक था उसकी इस मान्यता का आधार रोम तथा साम्राज्य में उसके स्वयं के अपने राजनीतिक एवं प्रशासकीय अनुभव एवं स्टोइक दर्शन था।

प्रमुख समस्या :

पॉलिबियस (जो स्वयं यूनानी था) रोम का प्रथम महत्त्वपूर्ण राजनीतिक विचारक था। उसकी प्रसिद्ध पुस्तक **रोम का इतिहास** का उद्देश्य रोम की महानता के कारणों पर प्रकाश डालना था। यह ग्रंथ पूरा भी न हो पाया था कि रोम में उपद्रवों एवं युद्ध का युग प्रारंभ हो गया था। सत्ता के संघर्ष ने सीजर जैसे व्यक्तियों को शक्ति एवं प्रतिष्ठा प्रदान कर दी थी। गणतंत्र, राजतन्त्र में परिवर्तित होने लग गया था, जिसने कालांतर में एक साम्राज्य का रूप धारण कर लिया था। सिसरो ने इन परिवर्तनों को रोकने का प्रयास किया। उसका विश्वास था कि 'संयम, संवैधानिकतावाद तथा पारस्परिक समन्वय' द्वारा शांति की स्थापना संभव है, इसलिए उसने अपने देशवासियों को पुरानी प्रशासन प्रणाली को कायम रखने की प्रेरणा दी और इसके लिए राज्य तथा कानूनों के स्वभाव के संबंध में रोम तथा यूनान दोनों के ही श्रेष्ठतम सिद्धांतों को न केवल स्पष्ट किया बल्कि उन्हें प्रभावोत्पादक ढंग से—**डी रिपब्लिका** जैसी अपनी श्रेष्ठतम रचनाओं के द्वारा ऐसे ढंग से प्रस्तुत भी किया—जैसाकि उसका सामयिक अन्य कोई विद्वान् नहीं कर पाया था।

प्रो० डनिंग ने लिखा है : "सिसरो की कृतियों के व्यावहारिक लक्ष्य में कुछ भी 'छिपाव' नहीं है।" **डी रिपब्लिका** में वह आदर्श-राज्य का चित्रण करता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि प्लेटो ने अपने आदर्श-राज्य का चित्रण **रिपब्लिक** में किया था। सिसरो ने अपनी इस रचना का न केवल नामकरण प्लेटो की इस श्रेष्ठतम रचना के आधार पर किया है, बल्कि अपने विषय के प्रतिपादन में उसने प्लेटो की 'संवाद' या 'कथोपकथन' पद्धति का भी अनुसरण किया है। इस संदर्भ में यह जानना अति आवश्यक है कि, प्लेटो के विपरीत, सिसरो के **डी रिपब्लिका** में चित्रित आदर्श-राज्य एक ऐसा आदर्श है, जिसे (उसके अनुसार) प्राप्त किया जा सकता था, तथा जो रोम एवं उसके इतिहास के संदर्भ में ही निर्मित था। सेबाइन ने रोम के संस्थागत इतिहास के संबंध में राज्य के सिद्धांत के प्रतिपादन के सिसरो के इन प्रयासों को 'सराहनीय' तो बतलाया है, किंतु उसका निष्कर्ष है : 'अभाग्यवश सिसरो में रोम के अनुभव के आधार पर और अपने यूनानी स्रोतों को अमान्य करते हुए अपने लिए किसी नये सिद्धांत के निर्माण की मौलिकता नहीं थी'।

सिसरो अपने युग की वास्तविकताओं को न पहचान सका और परिणामस्वरूप उसकी रचनाएँ वास्तविकताओं से कोसों दूर रहीं। एक विद्वान् लेखक ने क्रांति के पूर्व के गणतंत्रीय संविधान को बनाए रखने के उसके उद्देश्य के संबंध में लिखा है : "उद्देश्य में निर्माण के समय जो थोड़ी-सी वास्तविकता थी भी वह उसकी (सिसरो) मृत्यु के उपरांत एक पीढ़ी के भीतर बिल्कुल ही समाप्त हो गई

प्रमुख समाधान :

डी रिपब्लिका में चित्रित आदर्श-राज्य ही सिसरो के लिए, रोम की समस्याओं का ठीक उसी प्रकार एकमात्र समाधान था, जिस प्रकार कि प्लेटो की **रिपब्लिक** में चित्रित आदर्श-राज्य, प्लेटो के अनुसार, तात्कालिक ग्रीक जीवन एवं संस्थाओं की गिरावट का एकमात्र निदान था। सिसरो का यह 'आदर्श-राज्य' रोम, उसकी संस्थाओं एवं उसके विगत इतिहास के संदर्भ में ही निर्मित होने तथा (जैसा कि डनिंग ने लिखा है) लेखक (सिसरो) के सभी विचारगत एवं शैलीगत उल्लेखनीय गुणों के समावेश के बावजूद भी—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि प्लेटो का आदर्श-राज्य—वास्तविक सिद्ध न हो सका। आदर्श-राज्य के इस चित्रण में सिसरो प्लेटो से एक भिन्न धरातल पर आसीन है : प्लेटो का उद्देश्य जहाँ 'दार्शनिक शासक' की खोज करना था वहाँ सिसरो का लक्ष्य क्रांति के पूर्व की गणतंत्रीय व्यवस्था की श्रेष्ठता को सिद्ध करके रोम के नागरिकों को अपनी इस पुरानी शासन प्रणाली को कायम रखने के लिए प्रेरणा प्रदान करना था।

सिसरो के राजनीतिक दर्शन के निम्नलिखित प्रमुख तत्त्व है—

(१) व्यक्ति विषयक विचार।

(२) राज्य विषयक विचार।

(३) कानून विषयक विचार।

(४) न्याय विषयक विचार।

१. व्यक्ति विषयक विचार :

यूनानी दर्शन मानवीय असमानता पर आधारित था। प्लेटो तथा अरस्तू दोनों की मान्यता थी कि प्रकृतिः व्यक्ति असमान है। प्लेटो के आदर्श-राज्य की यह एक आधारभूत मान्यता थी। अरस्तू ने इसी मान्यता के आधार पर 'दास प्रथा' का समर्थन किया था। सिसरो इसके विपरीत व्यक्तियों मे समानता का दर्शन करता है; उसकी मान्यता है, व्यक्ति स्वभावतः समान होते है या सभी व्यक्तियों का स्वभाव समान होता है। व्यक्ति विद्या में समान नहीं है और न राज्य के लिए यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति की संपत्ति को समान बनाए; विवेक की प्राप्ति में, अपने मनोवैज्ञानिक निर्माण में तथा अच्छे या बुरे की सामान्य धारणा में सभी व्यक्ति समान है। चूँकि प्रकृति ने सभी व्यक्तियों को विवेकसंपन्न बनाया है, इसलिए उनके प्रकार मे भेद नही होता, मात्रा का अंतर भले ही हो। व्यक्तियों के बीच इस 'समानता' का आधार वह विवेक ही है जो उन्हें प्रकृति से प्राप्त हुआ है। विवेक चूँकि प्रकृति-प्रदत्त है इसलिए 'समानता' भी प्राकृतिक एवं स्वाभाविक है; असमानता स्वाभाविक न होकर कृत्रिम एवं मनुष्यकृत है। सिसरो का कथन है कि "किसी भी नस्ल अथवा जाति का कोई ऐसा व्यक्ति नही होगा जो अच्छा पथ-प्रदर्शक मिलने पर सद्गुण को प्राप्त न कर सके।" दूसरे शब्दों में, कोई भी व्यक्ति सर्वथा ही गुणहीन या गुणों को ग्रहण करने योग्य नही होता। उसने लिखा है : "कोई भी एक वस्तु किसी दूसरी वस्तु के साथ इतनी गहरी सादृश्यता नही रखती जितने कि हम सभी एक-दूसरे के साथ समान हैं। किंतु यदि बुरी आदतें और गलत मान्यताएँ कमजोर

मस्तिष्कों को तोड़ मरोड़कर उन्हें वांछित दिशा में मोड़ न दें, तो प्रत्येक व्यक्ति अन्य सभी व्यक्तियों जैसा ही होगा।"

प्राकृतिक समानता के इसी सिद्धांत के आधार पर सिसरो ने दास प्रथा का खंडन किया। उसने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि दासों को केवल संपत्ति न समझा जाए, जैसा कि अरस्तू की मान्यता थी। उनका यह अधिकार है कि उनके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार किया जाए तथा उनके व्यक्तित्व की समानता को सम्मान प्रदान किया जाए। प्रो० ए० जे० कार्लाइल ने सिसरो की इस व्यक्ति विषयक मान्यता पर टिप्पणी करते हुए कहा था : "राजनीतिक सिद्धांत में कोई भी परिवर्तन अपनी पूर्णता में इतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना कि अरस्तू के उपरांत का यह परिवर्तन।" प्रो० मैकिलवैन ने इसे अरस्तू के दर्शन से सिसरो के दर्शन की सबसे महत्त्वपूर्ण भिन्नता कहा है। मानव समानता विषयक यह धारणा सिसरो की राजनीतिक दर्शन की एक महत्त्वपूर्ण देन है। उसके विश्व-एकता एवं मानवता विषयक विचारों का यही स्रोत है।

२. राज्य विषयक विचार :

राज्य विषयक विचार सिसरो के राजनीतिक दर्शन का एक अति महत्त्वपूर्ण भाग है। उसने राज्य के स्वरूप, उसकी उत्पत्ति, सरकार और उसके प्रकार आदि की विस्तार के साथ चर्चा की है। इस संदर्भ में उसकी प्रारंभिक मान्यता है कि "राज्य जनता का विषय है।" राज्य के कार्यों में भाग लेना जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य एवं कार्य है, जिसकी व्यक्ति आकांक्षा कर सकता है, इसलिए कि "व्यक्ति के लिए अन्य कोई ऐसा कार्य नहीं है, जिससे उसके गुणों का इससे अधिक देवत्व की सीमा तक विकास हो सके।" और अधिक स्पष्ट शब्दों में, राज्य जनता का संगठन है। जनता राज्य का गठन करती है। जनता से उसका आशय एक ऐसे जनसमूह से था जिनकी संख्या पर्याप्त हो (न कम और न ही अधिक), जो कानून और अधिकारों के संबंध में एक सामान्य समझौते द्वारा संगठित हो तथा जो पारस्परिक लाभ के लिए आपसी सहयोग करने को इच्छुक हो। सिसरो ने राज्य की परिभाषा इस प्रकार दी है : "राज्य उस जनसमूह की संपत्ति है जो पर्याप्त बड़ी संख्या में पारस्परिक लाभ की इच्छा से कानून तथा अधिकारों के विषय मे सामूहिक सहमति द्वारा संगठित हो जाते हैं।"

इस प्रकार सिसरो का राज्य एक 'निगमात्मक निकाय' है, जिसकी सदस्यता उसके सभी नागरिकों को प्राप्त है। राज्य के अस्तित्व का एकमात्र कारण अपने सदस्यों (नागरिकों) को आपसी सहयोग एवं उचित शासन के लाभ प्रदान करना है और यही राज्य का लक्ष्य है। जी० एच० सेबाइन ने इस व्याख्या से तीन परिणाम निकाले हैं—

(१) राज्य और उसका कानून जनता की सामूहिक संपत्ति होने से जनता की सामूहिक शक्ति राज्य-सत्ता का स्रोत बन जाती है। 'जनता' एक स्वशासित संगठन है, जिसे अपने को सुरक्षित बनाए रखने तथा अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आवश्यक शक्तियाँ स्वाभाविक रूप से प्राप्त हैं।

(२) राजनीतिक शक्ति का सही एव कानूनी ढग से प्रयोग ही जनता क सामूहिक शक्ति है। प्रशासक इसका क्रियान्वयन अपने पद के कारण करता है। सिसरो ने लिखा है : "जिस प्रकार कानून प्रशासकों पर शासन करता है, उसी प्रकार प्रशासक जनत पर शासन करता है और यह सच्चाई के साथ कहा जा सकता है कि प्रशासक एक बोलता हुआ कानून है और कानून न बोलने वाला (मूक) प्रशासक।

(३) स्वयं राज्य तथा उसका कानून सदैव ही ईश्वरीय कानून के या नैतिक कानून के या प्राकृतिक कानून (सत्य का वह उच्च नियम जो मानव संस्थाओं एवं मानव-चयन से ऊपर है) के अधीन है। 'शक्ति' राज्य की प्रकृति की एक 'घटना' है तथा सत्य एवं न्याय के सिद्धांतों को प्रभावी बना देने मे ही शक्ति का औचित्य निहित है।

राज्य के संबंध मे सिसरो की कुछ निश्चित धारणाएँ व मान्यताएँ थीं तथा जो प्लेटो एवं अरस्तू की ऐसी ही धारणाओं एवं मान्यताओं से स्पष्ट रूप से भिन्न थीं। यथा—

(१) सिसरो की राज्य विषयक धारणा संकुचित न होकर व्यापक है। वह विश्व-राज्य के सिद्धांत का समर्थक था। वह लिखता है : "संपूर्ण विश्व हमारा राज्य है; देवता तथा मानव दोनों इसके सदस्य है और इसका कानून सभी राष्ट्रों एवं सभी कालों के लिए है।" इसके विपरीत प्लेटो तथा अरस्तू का दर्शन यूनानी नगर-राज्यों तक ही सीमित था। सिसरो पर यह स्टोइक दर्शन का प्रभाव था।

(२) सिसरो की राज्य के नागरिकों विषयक धारणा भी संकीर्ण नहीं थी और इसका एकमात्र कारण था उसकी मानव समानता विषयक मान्यता। वह एक व्यक्ति को दूसरे से भिन्न नहीं मानता। उसने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है कि "यह खराब आदतें और झूठी मान्यताएँ अथवा विचार ही हैं जो मनुष्य को वास्तव मे समान बनने से रोकती हैं।" इसके विपरीत प्लेटो तथा अरस्तू जैसे यूनानी दार्शनिक केवल यूनानियों को ही नागरिक मानते थे। सिसरो पर यहाँ भी स्टोइक दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित है।

(३) सिसरो के मतानुसार जनता ही राज्य है। राज्य मे सभी व्यक्तियों की भागीदारी है। ऐसा नहीं है कि कुछ व्यक्ति केवल प्रशासक होने के लिए और कुछ केवल शासित होने के लिए ही पैदा हुए हों, जैसा कि ये यूनानी दार्शनिक मानते थे।

(४) राज्य के संदर्भ में अपनाए गए उसके दृष्टिकोण को 'कानूनी' कहा गया है। ईबिसटीन ने स्पष्ट शब्दों में कहा है : "सिसरो जब भी राज्य का वर्णन करता है तो वह हमेशा ही कानूनी दृष्टि से वर्णन करता है।" इसके विपरीत प्लेटो एवं अरस्तू जैसे राजनीतिक दर्शनशास्त्रियों ने दर्शन को ही महत्त्व दिया है।

(५) सिसरो राज्य को एक 'नैतिक समुदाय' मानता है। राज्य तथा उसके कानून में उसके सभी नागरिकों की भागीदारी है। यही नहीं, वह राज्य तथा उसके कानून को ईश्वरीय कानून (जिसे वह नैतिक अथवा प्राकृतिक कानून कहता है) के अधीन मानता है। शक्ति के प्रयोग को वह राज्य के 'अधिकार' के रूप में मानने को तैयार नहीं है शक्ति के प्रयोग को वह एक 'घटना' मात्र मानता है

(६) पारस्परिक लाभ की इच्छा में शब्दों के प्रयोग में सिसरो परोक्ष रूप से ही सही) उपयोगितावादी मान्यताओं के नजदीक पहुँच जाता है। सिसरो के लिए ऐसी मान्यता बनावटी अथवा कृत्रिम न होकर स्वाभाविक है।

सिसरो राज्य की उत्पत्ति की भी चर्चा करता है। उसके अनुसार, मनुष्य में सामाजिकता की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति पाई जाती है, जो मनुष्यों के संगठित होकर रहने का प्राथमिक कारण है। व्यक्ति अपनी किसी (सामाजिकता की) स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण साथ-साथ रहना चाहते हैं, इसलिए नहीं कि अलग-अलग और अकेले रहने में व्यक्ति अपने-आपको कमजोर और शक्तिहीन समझता है। यही नहीं, (सामाजिकता की) इस (स्वाभाविक) प्रवृत्ति की अपेक्षा है कि 'संगठन' की एकता को बनाए रखा जाए। प्रशासन संस्था (सरकार) का लक्ष्य इसी एकता को बनाए रखना है। स्पष्ट है, व्यक्ति की सामाजिकता की प्रकृति ही राज्य और सरकार का आधार है और चूंकि यह प्रकृति स्वाभाविक है इसलिए राज्य भी एक स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक संस्था है। साथ ही, राज्य के कार्यों में भाग लेना जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य एवं कार्य है, जिसकी कि व्यक्ति आकांक्षा कर सकता है, क्योंकि व्यक्ति के लिए अन्य कोई ऐसा कार्य नहीं है जिससे उसके गुणों का इससे अधिक देवत्व की सीमा तक विकास हो सके। गैटिल ने लिखा है : "सिसरो ने प्रारंभिक यूनानियों और बाद के स्टोइकों के इस विचार का अनुसरण किया कि राज्य विवेकमूलक और वांछनीय संस्था है, न कि स्वार्थों पर आधारित कृत्रिम रचना।"

इसी संदर्भ में सिसरो सरकार की आगे चर्चा करता है। उसकी मान्यता है कि सरकार व्यक्ति की सामाजिकता की प्रकृति पर आधारित है तथा एकता बनाए रखना ही उसका प्रथम दायित्व है। अपने पूर्वगामी विचारक पॉलिबियस का अनुसरण करते हुए सिसरो सरकार के तीन प्रकार बतलाता है : राजतंत्र, अभिजाततंत्र तथा प्रजातंत्र। उसने प्रत्येक के गुण-दोषों का विस्तार से निरूपण किया है। उसका कथन है कि हर प्रकार की सरकार में कुछ गुण होते है, किंतु, साथ ही, उसमें पतन के अंकुर भी मौजूद रहते है, जो उसमे विकृति ला देते है और क्रांतियों का चक्र प्रारंभ हो जाता है : राजतंत्र अभिजाततंत्र मे, अभिजाततंत्र प्रजातंत्र में और प्रजातंत्र अधिनायकतंत्र में परिवर्तित होने लगते हैं। इनमें अपेक्षाकृत रूप मे सिसरो राजतंत्र को सर्वोत्तम शासन का प्रकार मानता था। प्रजातंत्र और अभिजाततंत्र में उसने अभिजाततंत्र को श्रेष्ट माना है। उसके मतानुसार प्रजातंत्र शासन का निकृष्टतम स्वरूप है। किंतु यह उसका एक सापेक्ष निष्कर्ष ही था। निरपेक्ष रूप मे वह इनमें से किसी भी शासन को श्रेष्ठ नहीं मानता। पॉलिबियस का अनुसरण करते हुए वह उस शासन को श्रेष्ठतम मानता है जिसमें इन तीनों शासनों के श्रेष्ठ गुण निहित हों तथा जिसमें इन (तीनों) शासनों के दोषों का निषेध पूर्णतः कर दिया गया है। इसे वह 'मिश्रित शासन' कहता है।

उसकी मान्यता थी कि शासन की श्रेष्ठता एवं स्थायित्व सरकार के विभिन्न अंगों मे पारस्परिक नियंत्रण एवं संतुलन की व्यवस्था पर निर्भर है। वह रोम की गणतंत्रीय क्रांति के पूर्व की शासन को ऐसे शासन का सर्वोत्तम उदाहरण

मानता है और इसी संदर्भ में उसने रोम के निवासियों को इसी शासन-प्रणाली को बनाए रखने की प्रेरणा दी थी।

३. कानून विषयक विचार :

ईबिन्सटीन लिखता है : "सिसरो जब भी राज्य विषयक चर्चा करता है तो हमेशा ही कानून की चर्चा करता है।" स्पष्ट है, सिसरो के लिए, कानून की चर्चा राज्य की चर्चा का एक अति आवश्यक एवं अभिन्न अंग है।

अपनी दूसरी पुस्तक **डी लेजीवस** में सिसरो कानून के सिद्धांत की व्याख्या करता है। कानून की परिभाषा देते हुए उसने लिखा है : "प्रकृति के अनुकूल सम्यक् विवेक ही सच्चा कानून है। यह सार्वभौमिक रूप से मान्य, अपरिवर्तनशील एवं शाश्वत है।" यह सभी मनुष्यों और सभी राष्ट्रों पर समान रूप से लागू है। उसने कानून विषयक इस समूची व्यवस्था को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है—

"सच्चा कानून प्रकृति से सहमति रखने वाला सत् विवेक है, जो सभी मनुष्यों पर लागू होता है, जो अपरिवर्तनशील एवं शाश्वत है। यह व्यक्तियों को अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने का आदेश देता है तथा गलत कार्यों को करने से रोकता है। इसके आदेश अच्छे व्यक्तियों को हमेशा ही प्रभावित करते हैं, किंतु खराब व्यक्तियों पर इनका कोई प्रभाव नहीं होता। मानवीय कानून द्वारा इस कानून को कभी भी गैर-कानूनी बनाना न तो नैतिक दृष्टि से सही है, न ही इसके कार्यान्वयन को सीमित करने की स्वीकृति प्रदान की जा सकती है और इसे समाप्त करना तो पूर्णत: असंभव है। न तो सीनेट और न जनता इसका पालन करने से हमें रोक सकती है—यह रोम के लिए एक और एथेन्स के लिए किसी दूसरे नियम का निर्धारण नहीं करेगा और न यह (नियम) आज के लिए एक, और कल के लिए दूसरा होगा। किंतु एक ही कानून होगा, जो शाश्वत एवं अपरिवर्तनशील है, जो सभी समयों में, सभी व्यक्तियों पर लागू रहता है। इसका निर्माता, व्याख्याता एवं निर्वचक स्वयं ईश्वर है, जो सभी मनुष्यों का स्वामी एवं शासक है। वह व्यक्ति जो इसका पालन नहीं करेगा, अपने में सत् का त्याग कर देगा।"

इस प्रकार सिसरो प्राकृतिक कानून को ही वास्तविक कानून मानता है। उसकी अपेक्षा है कि सभी व्यक्ति इसका पालन करेंगे। विभिन्न राज्यों में जनता द्वारा निर्मित कानून वस्तुत: इसी कानून की लिखित स्वीकारोक्ति है, क्योंकि कोई भी श्रेष्ठ शासक इसकी उपेक्षा नहीं करना चाहता, इसलिए भी कि इस कानून की उपेक्षा करना पाप है। इस संदर्भ में सिसरो एक अति महत्त्वपूर्ण घोषणा करता है कि ऐसे कानून जो इस प्राकृतिक कानून के विरुद्ध है न तो कानून हैं और न नागरिकों को ऐसे कानूनों के पालन के लिए बाध्य ही किया जा सकता है। वह नागरिकों को ऐसे कानूनों को भंग करने का भी अधिकार प्रदान करता है। उसके मत में ऐसे कानून उसी रूप में कानून होने की स्थिति नहीं रखते जिस रूप में कि चोरों के एक समूह द्वारा अपनी असेंबली में पारित प्रस्ताव कानून कहे जाने योग्य नहीं होते। सिसरो इस कानून को सभ्य जीवन की

मानता है। राज्य तथा शासन की की कसौटी भी यही है इसी

शाश्वत कानून के संदर्भ में उसने मानव समानता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है (जिसकी चर्चा पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है)।

४. न्याय विषयक विचार :

डी रिपब्लिका में सिसरो 'न्याय' की चर्चा करता है। सिसरो के लिए प्राकृतिक कानून के अनुसार कार्य करने में ही न्याय निहित है—वह कानून जो सत् विवेक का आदेश है। चूँकि विवेक प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त है इसलिए सभी व्यक्ति समान हैं; जहाँ तक पढ़े-लिखे होने का प्रश्न है, व्यक्ति समान नहीं हैं; जहाँ तक संपत्ति का प्रश्न है, यह वांछनीय नहीं है कि राज्य उनकी संपत्ति को समान बना दे: वह विवेक की प्राप्ति में समग्न है। इसलिए सिसरो के अनुसार सभी व्यक्तियों को समान अवसर प्रदान करना तथा प्रत्येक को उसका अधिकार प्रदान करना न्याय है। अधिकारों का संरक्षण तो न्याय का आधार है ही। एक स्थान पर सिसरो ने लिखा है : "न तो प्रकृति न्याय की जननी है और न संकल्प या इच्छा-शक्ति, बल्कि असंरक्षण की भावना ही न्याय की जननी है।" व्यक्ति से न्याय की अपेक्षा के संदर्भ में उसने लिखा है : "बुद्धि हमें अपनी संपत्ति एवं शक्ति को बढ़ाने की प्रेरणा देती है किन्तु न्याय की अपेक्षा है कि हम न केवल दूसरों के अधिकारों एवं वस्तुओं को उन्हें (जिनकी वह है) दे दें, बल्कि उनका सम्मान भी करें।" समृद्धि, शक्ति, सम्मान (सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत) बुद्धि के आदेशों के परिपालन की देन है, जबकि गरीबी और कष्ट औचित्यपूर्ण जीवन के आदेशों की। जो व्यक्ति के संबंध में सही है वही राज्य के संबंध में सही है। संभव है व्यक्ति तथा राज्य दोनों ही 'दूसरे' के स्थान पर 'प्रथम' का वरण करें। अधिकारों को खतरा पैदा हो जाने का अंदेशा यहीं पैदा हो जाता है। सिसरो की मान्यता है कि ऐसी स्थिति में प्राकृतिक कानून ही व्यक्तियों एवं राज्यों के आचरणों का निर्धारण करता है और उन्हें विवेक के रास्ते से विचलित होने से बचाता है।

सिसरो की राजनीतिशास्त्र को देन

सिसरो का दर्शन अपनी मौलिकता के लिए प्रसिद्ध नहीं है। विलोबी ने लिखा है "सिसरो के विचारों के संबंध में यह मानना पड़ता है कि उनका महत्त्व स्वयं विशिष्ट राजनीतिक सिद्धांतों के प्रतिपादन में नहीं है, अपितु इस बात में है कि उन्होंने यूनान के आदर्शों को रोमन विचारधाराओं में प्रविष्ट होने में योगदान दिया है।" अपने विचारों को अनेकानेक स्रोतों से ग्रहण करके उन्हें एक संश्लिष्ट दर्शन के रूप में प्रस्तुत कर देने के लिए सिसरो के महत्त्व से इंकार नहीं किया जा सकता।

राजनीतिक चिंतन को उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण देन उसका प्राकृतिक कानून का सिद्धांत है जिसे उसने पर्याप्त सुंदर ढंग से व्यक्त करके स्टोइक विचारकों की धारणा के ऊपर महान् सुधार करके रखा है। सेबाइन ने इस संदर्भ में लिखा है : "राजनीतिक चिंतन के इतिहास में उसकी महत्ता इस बात में है कि उसने स्टोइकों के प्राकृतिक कानून के सिद्धांत को वह रूप प्रदान किया जिसमें वह स्वयं उसके समय से लेकर १९वीं शताब्दी

तक समूचे पश्चिमी यूरोप में सार्वभौमिक रूप से मान्य किया गया।" यह सही है कि वह अपने प्रयासों मे असफल रहा था किंतु जहाँ तक उसके प्रभाव का प्रश्न है, उसे कम आंकना सिसरो के साथ अन्याय करना होगा। सेबाइन जैसे विद्वानो ने लिखा है : "उसका प्रभाव बहुत अधिक था।"

उसने मनुष्यों की समानता की उद्घोषणा की तथा मनुष्यों के समान अधिकारों के सिद्धांत पर एक नये न्याय विषयक सिद्धात का निर्माण किया। गैटिल ने लिखा है : "चूंकि सिसरो के समय में राजनीतिक गुटों में पारस्परिक संघर्ष चल रहे थे और देश-भक्ति की भावना क्षीण हो रही थी, इसलिए समसामयिक राजनीति पर उसकी रचनाओं का बहुत ही कम प्रभाव पड़ा, किंतु उसके न्याय तथा प्राकृतिक कानून विषयक विचार रोमन विधि चिंतन में समा गए और परवर्ती विधि-वेत्ताओं एवं प्रारंभिक ईसाई लेखकों को बहुत प्रभावित किया और उसका विश्व-एकता एवं सार्वभौमिक कानून तथा सत्ता का सिद्धात संपूर्ण मध्ययुग मे राजनीनिक चिंतन का केंद्रीय सिद्धांत बना रहा।"

संत टामस एक्वीनास

[ST. THOMAS ACQUINAS]

[१२२७—१२७४ ई०]

एक्वीनास मध्ययुगीन चिंतन की सम्पूर्णता का प्रतिनिधित्व करता

—एम० बी० फॉस्टर

नास : एक दृष्टि—

त्र—(i) स्थान : एक्विनो (इटली); (ii) जन्म : १२२७; ई०
(iii) मृत्यु : १२७४ ई० ।
—(i) राजाओं के नियम (दी रूल्स ऑफ प्रिंसेज);
(ii) अरस्तू की पॉलिटिक्स पर टीका;
(iii) धर्मशास्त्र सार (संमा थियोलॉजिका) ।

न का वह सार ही था, जिसने सार्वभौमिक समन्वय की एक था प्रस्तुत की, जिसका केंद्रीय सूत्र एकता है।"

—जी० एच० सेबाइन

एक्वीनास को १३वीं शताब्दी का ही नहीं बल्कि समूचे मध्ययुग का तिक चिंतक कहा गया है। फॉस्टर जैसे विद्वान् तो उसे 'संपूर्ण मध्य-तनिधि' मानते है। यह सही है कि मध्ययुग का चिंतन मूलतः ईसाईयत ह कभी भी 'यूनानी' प्रभाव से अछूता नहीं रहा। प्रारंभ की ईसाई स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। संत आगस्टिन जैसे मनीषियों ने इसे किंतु १२वीं शताब्दी के उपरांत से इसका झुकाव 'अरस्तूवाद' की या था। ईबिसटीन ने लिखा है: "चर्च को उद्भव में प्लेटो की जीवन के लिए उसे अरस्तू की आवश्यकता थी।" इस प्रकार यह एक क 'झुकाव' था। 'अरस्तू' को 'ईसाई' बनाने की आवश्यकता थी। दर्शन को चर्च के सिद्धांतों के अनुरूप ढालना था, जिसे गैटिलने "विवेक न के बीच स्थापित करना' कहा है परिवर्तित

म अपेक्षित भी रहा था। संत टामस एक्वीनास अपने इसी समन्वय के लिए प्रसिद्ध है उस समन्वयवादी विचारधारा' का सर्वोत्तम एवं सर्वश्रेष्ठ व्याख्याकार माना जाता है एक्वीनास के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि उसका ईसाईयत के तथा अरस्तू के सिद्धांतो का न केवल गहन अध्ययन था, बल्कि उनमें गहरी आस्था भी थी। इन विभिन्न विरोधी तथा पृथक्-पृथक् रूप में प्रवाहित विचारधाराओं को इस प्रकार व्यवस्थित कर देना, जहाँ अपने महत्त्व में कमी किए बिना प्रत्येक दूसरे की पूरक बनकर समूची व्यवस्था के लिए अभिन्न बन जाती है, एक्वीनास जैसे महान् विचारक का ही कार्य हो सकता था। एम० बी० फॉस्टर ने उसे विश्व का एक महान् 'क्रमबद्ध दार्शनिक' निरूपित किया है।

एक्वीनास की मान्यता थी कि समस्त मानवीय ज्ञान एक ऐसी इकाई है जिसका आधार विभिन्न ज्ञान-विज्ञानों द्वारा निर्मित हुआ है तथा जिसके शीर्ष पर दार्शनिक ज्ञान है, जो इन सभी ज्ञान-विज्ञानों की एक स्वाभाविक परिणति तो है ही, साथ ही जो इन सभी ज्ञान-विज्ञानों के सार्वभौमिक सिद्धांतों का निर्धारक भी है। अरस्तू जैसे विचारको के लिए दार्शनिक ज्ञान ही सर्वोच्च ज्ञान या ज्ञान की पराकाष्ठा थी तथा विवेक जिसकी प्राप्ति का एक मात्र साधन। एक्वीनास इस मान्यता से सहमत तो है किंतु सीमित नहीं है। वह आगे बढ़कर 'दैवीय ज्ञान' को (जो ईसाईयत में निहित है) ज्ञान की पराकाष्ठा मानता है। संपूर्ण व्यवस्था की यही परिपूर्णता है। दार्शनिक ज्ञान की परिणति भी यही है। किंतु यह विवेक से परे है। इसे श्रद्धा तथा विश्वास से ही प्राप्त किया जा सकता है तथा जिसे ईसाईयत ही प्रदान कर सकती है। सेबाइन ने लिखा है: "ईश्वर पर आस्था एवं विश्वास यद्यपि विवेक से परे है तथापि वह विवेक का विरोधी नहीं है। विज्ञान और दर्शन जिस प्रणाली को प्रारंभ करते हैं, धर्मशास्त्र उसे पूर्णता प्रदान करता है तथा उसकी निरंतरता को कभी समाप्त नहीं होने देता। विश्वास में विवेक पूर्णता प्राप्त करता है। सम्मिलित होकर वह ज्ञान-मंदिर का निर्माण करते है, किंतु कहीं भी न तो उनमें टकराव होता है और न विरोधी लक्ष्यों के लिए वह कार्य करते हैं।"

यही था अरस्तू का ईसाईयतकरण, जिसे विश्व के समक्ष प्रस्तुत करना एक्वीनास ने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। अपने इस कार्य में उसे कितनी सफलता मिल सकी है, यह इसी बात से स्पष्ट है कि राजनीतिक दर्शन के इतिहास में एक्वीनास को 'ईसाई-अरस्तू' (क्रिश्चियन एरिस्टाटल) के नाम से पुकारा जाता है।

सामान्य परिचय :

टामस एक्वीनास का जन्म १२२७ में इटली में नेपल्स के एक्वीनो नामक नगर में एक संभ्रांत, संपन्न एवं भरे-पूरे परिवार में हुआ था। इसके पिता इस नगर के 'काउंट' थे। उसके पिता फ्रेडरिक के भतीजे थे तथा माता थियोडोरा नार्मन जाति (सिसली) के एक प्राचीन राजवंश की कन्या थी। सात भाई-बहिनों में एक्वीनास सबसे छोटा था। उसे जीवन की सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ उपलब्ध थीं। एक कुलीन परिवार एवं अभिजात र्ग तथा शासन से संबद्ध होने के कारण टामस के माता-पिता की इस लालसा को स्वाभा वेक ही कहा जाएगा कि उनका पुत्र (एक्वीनास) भी राज्य का एक अधिकारी बने

किंतु टामस न तो कुछ और ही सोच रखा था। नेपल्स के विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने के उपरांत उसने 'डोमिनिकन संप्रदाय' का सदस्य (भिक्षु) बनकर अपने माता-पिता की आशाओं पर पानी फेर दिया। इस संप्रदाय की आचरण संबंधी शुद्धता और आदर्श नैतिकता ने एक्वीनास को उसकी वैराग्य-प्रधान धार्मिक प्रवृत्ति के कारण बड़ा प्रभावित किया।

किंतु उसके माता-पिता उसे सहज ही छोड़ने वाले नहीं थे। वह चाहते थे कि एक्वीनास भिक्षु न बने और इसके लिए उन्होंने प्रलोभन तथा भय दोनों ही रास्तों को अपनाया, किंतु दृढ़ संकल्पी टामस अपने रास्ते से विचलित न हुआ। वह घर छोड़कर भाग निकला। कुछ समय तक अपने संप्रदाय के मठ में छिपे रहकर वह पेरिस चला गया। पेरिस विश्वविद्यालय में उसने प्रवेश लिया। तदुपरांत वह जर्मनी पहुँचा, जहाँ उसने बोल्सटाड के अलबर्ट के शिष्यत्व में अरस्तू के ग्रंथों का गंभीरता एवं बारीकी के साथ अध्ययन किया। इस समय तक एक्वीनास अपनी मौलिकता, आध्यात्मिक श्रेष्ठता एवं सत्यनिष्ठा के लिए प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। पेरिस विश्वविद्यालय से 'धर्म के आचार्य' की पदवी से सम्मानपूर्वक विभूषित होने के उपरांत लगभग १२ वर्ष वह ईसाई धर्म के प्रचार के कार्य में लीन रहा। महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना का यही काल है। कोलोन, पेरिस, ओर्नोन, रोम तथा नेपल्स में उसने धर्मशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र के अध्ययन का कार्य भी किया।

टामस एक ऐसा संत था जिसे अपनी मान्यताओं पर गहरी आस्था थी। धर्म-शास्त्र, तर्कशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र का जिसका गहन अध्ययन था और जिसकी सहज स्वीकारोक्ति भी उसे प्राप्त हुई; किंतु जिसे किसी भी पद पर आसीन होने की लालसा नहीं थी; बड़े-बड़े धार्मिक पदों पर नियुक्ति के प्रस्ताव भी उसके समक्ष रखे गए किंतु उसने उन सभी को ठुकरा दिया। उसका सारा जीवन सत्य के अन्वेषण में लगा रहा। ७ मार्च, सन् १२७४ को बहुत ही अल्प आयु में टामस एक्वीनास की मृत्यु हो गई।

प्रमुख रचनाएँ :

टामस एक्वीनास ने अपने अल्प जीवन में ईसाईयत, धर्मशास्त्र, तर्कशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि विषयों पर साधिकार अनेक ग्रंथों की रचना की थी। उसकी प्रमुख रचनाएँ हैं—

(१) राजाओं के नियम (दी रूल्स ऑफ प्रिंसेज)
(२) अरस्तू की पॉलिटिक्स पर टीका (कमेंट्री ऑन दी पॉलिटिक्स ऑफ एरिस्टाटल)
(३) धर्मशास्त्र सार (समा थियोलॉजिका)

'राजाओं के नियम' तथा 'अरस्तू की पॉलिटिक्स पर टीका' में हम एक्वीनास के राजनीतिक विचारों को पाते हैं। 'धर्मशास्त्र सार' ग्रंथ में उसके कानून संबंधी विचार हैं, जो एक्वीनास के विचारों का एक अति महत्त्वपूर्ण भाग है। लौकिक की पारलौकिक के साथ संबंधों की व्याख्या बड़े ही सुंदर एवं सहज ढंग से की गई है।

स अपेक्षित भी यही था। संत टामस एक्वीनास अपने इसी समन्वय के लिए प्रसिद्ध है उस समन्वयवादी विचारधारा' का सर्वोत्तम एवं सर्वश्रेष्ठ व्याख्याकार माना जाता है एक्वीनास के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि उसका ईसाईयत के तथा अरस्तू के सिद्धांतों का न केवल गहन अध्ययन था, बल्कि उनमें गहरी आस्था भी थी। इन विभिन्न विरोधी तथा पृथक्-पृथक् रूप में प्रवाहित विचारधाराओं को इस प्रकार व्यवस्थित क. देना, जहाँ अपने महत्व में कमी किए बिना प्रत्येक दूसरे की पूरक बनकर समूची व्यवस्थ के लिए अभिन्न बन जाती है, एक्वीनास जैसे महान् विचारक का ही कार्य हो सकता था एम० बी० फॉस्टर ने उसे विश्व का एक महान् 'क्रमबद्ध दार्शनिक' निरूपित किया है।

एक्वीनास की मान्यता थी कि समस्त मानवीय ज्ञान एक ऐसी इकाई है जिसका आधार विभिन्न ज्ञान-विज्ञानों द्वारा निर्मित हुआ है तथा जिसके शीर्ष पर दार्शनिक ज्ञान है, जो इन सभी ज्ञान-विज्ञानों की एक स्वाभाविक परिणति तो है ही, साथ ही जो इन सभी ज्ञान-विज्ञानों के सार्वभौमिक सिद्धांतों का निर्धारक भी है। अरस्तू जैसे विचारकों के लिए दार्शनिक ज्ञान ही सर्वोच्च ज्ञान या ज्ञान की पराकाष्ठा थी तथा विवेक जिसकी प्राप्ति का एक मात्र साधन । एक्वीनास इस मान्यता से सहमत तो है किंतु सीमित नहीं है। वह आगे बढकर 'दैवीय ज्ञान' को (जो ईसाईयत में निहित है) ज्ञान की पराकाष्ठा मानता है। संपूर्ण व्यवस्था की यही परिपूर्णता है। दार्शनिक ज्ञान की परिणति भी यही है। किंतु यह विवेक से परे है। इसे श्रद्धा तथा विश्वास से ही प्राप्त किया जा सकता है तथा जिसे ईसाईयत ही प्रदान कर सकती है। सेबाइन ने लिखा है: "ईश्वर पर आस्था एवं विश्वास यद्यपि विवेक से परे है तथापि वह विवेक का विरोधी नहीं है। विज्ञान और दर्शन जिस प्रणाली को प्रारंभ करते है, धर्मशास्त्र उसे पूर्णता प्रदान करता है तथा उसकी निरंतरता को कभी समाप्त नहीं होने देता। विश्वास में विवेक पूर्णता प्राप्त करता है। सम्मिलित होकर वह ज्ञान-मंदिर का निर्माण करते है, किंतु कहीं भी न तो उनमें टकराव होता है और न विरोधी लक्ष्यों के लिए वह कार्य करते हैं।"

यही था अरस्तू का ईसाईयतकरण, जिसे विश्व के समक्ष प्रस्तुत करना एक्वीनास ने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। अपने इस कार्य में उसे कितनी सफलता मिल सकी है, यह इसी बात से स्पष्ट है कि राजनीतिक दर्शन के इतिहास में एक्वीनास को 'ईसाई-अरस्तू' (क्रिश्चियन एरिस्टाटल) के नाम से पुकारा जाता है।

सामान्य परिचय :

टामस एक्वीनास का जन्म १२२७ में इटली में नेपल्स के एक्वीनो नामक नगर में एक संभ्रांत, संपन्न एवं भरे-पूरे परिवार में हुआ था। इसके पिता इस नगर के 'काउंट' थे। उसके पिता फ्रेडरिक के भतीजे थे तथा माता थियोडोरा नार्मन जाति (सिसली) के एक प्राचीन राजवंश की कन्या थी। सात भाई-बहिनों में एक्वीनास सबसे छोटा था। उसे जीवन की सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ उपलब्ध थीं। एक कुलीन परिवार एवं अभिजात वर्ग तथा शासन से संबद्ध होने के कारण टामस के माता-पिता की इस लालसा को स्वाभाविक ही कहा जाएगा कि उनका पुत्र (एक्वीनास) भी राज्य का एक अधिकारी बने

रतु टामस न तो कुछ और ही सोच रखा था। नेपल्स के विश्वविद्यालय से शिक्षा ग्रहण करने के उपरांत उसने 'डोमिनिकन संप्रदाय' का सदस्य (भिक्षु) बनकर अपने माता-पिता की आशाओं पर पानी फेर दिया। इस संप्रदाय की आचरण संबंधी शुद्धता और आदर्श नैतिकता ने एक्वीनास को उसकी वैराग्य-प्रधान धार्मिक प्रकृति के कारण बड़ा प्रभावित किया।

किंतु उसके माता-पिता उसे सहज ही छोड़ने वाले नहीं थे। वह चाहते थे कि एक्वीनास भिक्षु न बने और इसके लिए उन्होंने प्रलोभन तथा भय दोनों ही रास्तों को अपनाया, किंतु दृढ़ संकल्पी टामस अपने रास्ते से विचलित न हुआ। वह घर छोड़कर भाग निकला। कुछ समय तक अपने संप्रदाय के मठ में छिपे रहकर वह पेरिस चला गया। पेरिस विश्वविद्यालय में उसने प्रवेश लिया। तदुपरांत वह जर्मनी पहुँचा, जहाँ उसने बोल्सटाड के अलबर्ट के शिष्यत्व में अरस्तू के ग्रंथों का गंभीरता एवं बारीकी के साथ अध्ययन किया। इस समय तक एक्वीनास अपनी मौलिकता, आध्यात्मिक श्रेष्ठता एवं सत्यनिष्ठा के लिए प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। पेरिस विश्वविद्यालय से 'धर्म के आचार्य' की पदवी से सम्मानपूर्वक विभूषित होने के उपरांत लगभग १२ वर्ष वह ईसाई धर्म के प्रचार के काय में लीन रहा। महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना का यही काल है। कोलोन, पेरिस, बोलोन, रोम तथा नेपल्स में उसने धर्मशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र के अध्ययन का कार्य भी किया।

टामस एक ऐसा संत था जिसे अपनी मान्यताओं पर गहरी आस्था थी। धर्म-शास्त्र, तर्कशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र का जिसका गहन अध्ययन था और जिसकी सहज स्वीकारोक्ति भी उसे प्राप्त हुई; किंतु जिसे किसी भी पद पर आसीन होने की लालसा नहीं थी; बड़े-बड़े धार्मिक पदों पर नियुक्ति के प्रस्ताव भी उसके समक्ष रखे गए किंतु उसने उन सभी को ठुकरा दिया। उसका सारा जीवन सत्य के अन्वेषण में लगा रहा। ७ मार्च, सन् १२७४ को बहुत ही अल्प आयु में टामस एक्वीनास की मृत्यु हो गई।

प्रमुख रचनाएँ :

टामस एक्वीनास ने अपने अल्प जीवन में ईसाईयत, धर्मशास्त्र, तर्कशास्त्र, राज-नीतिशास्त्र आदि विषयों पर साधिकार अनेक ग्रंथों की रचना की थी। उसकी प्रमुख रचनाएँ हैं—

(१) राजाओं के नियम (दी रूल्स ऑफ प्रिंसेज)
(२) अरस्तू की पॉलिटिक्स पर टीका (कमेंट्री ऑन दी पॉलिटिक्स ऑफ एरिस्टाटल)
(३) धर्मशास्त्र सार (संमा थियोलॉजिका)

'राजाओं के नियम' तथा 'अरस्तू की पॉलिटिक्स पर टीका' में हम एक्वीनास के राजनीतिक विचारों को पाते हैं। 'धर्मशास्त्र सार' ग्रंथ में उसके कानून संबंधी विचार हैं, जो एक्वीनास के विचारों का एक अति महत्त्वपूर्ण भाग है। लौकिक की पारलौकिक के साथ संबंधों की व्याख्या बड़े ही सुंदर एवं सहज ढंग से की गई है

गैटिल ने लिखा है : "टामस एक्वीनास की पद्धति 'मध्ययुगीन' थी। उसका प्रमुख उद्देश्य था 'विवेक और ईश्वर प्रदत्त ज्ञान के बीच समन्वय स्थापित करना अर्थात् चर्च के सिद्धांतों और यूनान तथा रोम के बुद्धिपरक दर्शन में, जो पुराने ज्ञान के पुन. अध्ययन से प्रकाश में आ गया था, मेल कायम करना'। एक्वीनास की इस समन्वयवादी पद्धति को 'विद्वत्तावाद' (स्कालिस्टिसिज्म) के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। प्रो० एबलिंग ने मध्ययुगीन विचारधाराओं को समझने के लिए इस विद्वत्तावाद को एक 'प्रमुख कुंजी' की संज्ञा दी है। प्रो० मूद तो स्वयं एक्वीनास को एक महानतम विद्वत्तावादी मानते हैं। विद्वत्तावाद वस्तुत धार्मिक सिद्धांतों की तार्किक व्याख्या ही थी। इसका लक्ष्य तर्क-वितर्क द्वारा चर्च के संबंध में सभी प्रश्नों एवं संदेहों को समाप्त कर देना था। विद्वत्तावाद के दो प्रमुख लक्षण थे : **प्रथम**, कि चर्च की मान्यताएँ भ्रांति एवं संदेहों से परे हैं; तथा **द्वितीय**, कि यह मान्यताएं विवेक की विरोधी नहीं है। स्पष्ट है, विद्वत्तावाद का उद्देश्य विवेक के आधार पर चर्च विषयक धार्मिक आस्थाओं का समर्थन करना था। एक्वीनास के समूचे दर्शन का सार भी यही था : ईश्वर पर आस्था एवं विश्वास विवेक से परे तो है किंतु विवेक-विरोधी नहीं है। विश्वास में ही विवेक की परिणति होती है। दोनों मिलकर ज्ञान-मंदिर का निर्माण करते है।

प्रमुख प्रभाव :

एक्वीनास मूलतः एक धर्मशास्त्री था। एक अधिकारी विद्वान् का कथन है "जिस प्रकार यूनानी दर्शन के अंतर्गत प्लेटो ने अरस्तू को प्रभावित किया और अरस्तू प्लेटो के दर्शन से कभी पृथक् नहीं हुआ, उसी प्रकार मध्ययुग में एक्वीनास ने आगस्टिन की कभी उपेक्षा नहीं की।" एक्वीनास ने अपने अनुयायी एगीदी उस के साथ चर्च के उन सिद्धांतों को शृंखलाबद्ध किया जिनका विकास पिछली कई शताब्दी से होता आया था और "एक ऐसी व्यवस्था प्रस्तुत की गई जो पूर्णतः स्थायी समझी गई।" जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है, इस युग में अरस्तूवाद का प्रभाव बढ़ रहा था। स्वतंत्र चिंतन की इस प्रवृत्ति से धार्मिक मान्यताएँ प्रभावित हो सकती थीं। अतः चर्च की प्रथम प्रतिक्रिया इस 'प्रभाव' को रोक देने की थी पेरिस विश्वविद्यालय में अरस्तू की कृतियों के अध्ययन-अध्यापन पर प्रतिबंध लगा दिया गया, जो कभी प्रभावी सिद्ध नहीं हुआ।

अरस्तू की मान्यता थी : 'विवेक' प्रधान है। ईसाईयत की मान्यता थी : 'विश्वास' प्रधान है। एक्वीनास का निष्कर्ष था : विवेक और आस्था एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। किंतु (विवेक एवं विश्वास के) इस समन्वय में एक्वीनास की धार्मिक मान्यताएँ ही सर्वोपरि है। उसकी धारणा है कि 'विश्वास' में ही 'विवेक' की न केवल परिणति होती है, बल्कि विवेक की पूर्णता भी यही है। स्पष्ट है, एक्वीनास की अरस्तूवाद की स्वीकारोक्ति या एक्वीनास का राजनीतिक बन जाना युग की माँग का ही आदेश था। गैटिल ने इस आशय की पुष्टि करते हुए लिखा है : "उसके समय में लोगों की तीव्र इच्छा थी कि ईश्वर प्रदत्त ज्ञान (ईसाईयत) तथा अन्य कारणों के सिद्धांत पर आधारित ज्ञान (अरस्तूवाद का पूर्ण रूप से एकीकरण किया जाए इस का एक्वीनास सबसे

अच्छा प्रतिनिधि था।" टामस एक्वीनास ने अपने गुरु अलबर्ट महान् के साथ मिलकर अरस्तूवाद को ईसाई दर्शन की एक स्थायी व्यवस्था बना दिया।

एक्वीनास की राजनीति वस्तुतः अरस्तू तथा सिसरो की ही राजनीति थी। भिन्न-भिन्न विचारधाराओं के स्पष्टतः एक तार्किक एवं ग्राह्य पद्धति के रूप में एकीकृत तथा संश्लिष्ट कर देने के अपने विशिष्ट गुण के कारण एक्वीनास प्रसिद्ध है। गैटिल ने लिखा है "फिर भी यह मानना पड़ेगा कि उसने राजनीति को पुन. एक विज्ञान का रूप दिया।"

प्रमुख मान्यताएँ :

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है धर्मशास्त्री होने के नाते एक्वीनास का प्रथम उद्देश्य चर्च की मान्यताओं तथा ईसाई धर्म के सिद्धांतों का निरूपण करना था। इन 'मान्यताओं' एव सिद्धांतों का निरूपण उसने यूनानी तथा रोम की राजनीतिक मान्यताओं के संदर्भ में किया है। इस समूची व्यवस्था को अधिक स्पष्टीकरण के लिए निम्न शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है—

(१) ज्ञान का सिद्धांत
(२) प्रकृति का सिद्धांत
(३) राज्य का सिद्धांत
(४) दासता संबंधी विचार
(५) कानून का सिद्धांत
(६) न्याय संबंधी सिद्धांत
(७) राज्य एवं चर्च के संबंध विषयक सिद्धांत

ज्ञान का सिद्धांत :

ज्ञान का सिद्धांत एक्वीनास के दर्शन का एक अति महत्त्वपूर्ण अंग है। इसी सिद्धांत द्वारा वह विवेक पर श्रद्धा की श्रेष्ठता निरूपित करता है। विवेक तथा श्रद्धा दोनों मिलकर ज्ञान-मंदिर का निर्माण करते हैं। इस ज्ञान-मंदिर की तुलना पिरामिड से की जा सकती है, जिसका आधार अर्थविज्ञान, राजनीतिविज्ञान, समाजविज्ञान, प्राणीविज्ञान जैसे अनेकानेक विज्ञानों द्वारा निर्मित है। इनमें प्रत्येक की अपनी एक विशिष्टता है। विवेक हमें न केवल 'सत्य' का दिग्दर्शन कराता है, बल्कि 'ज्ञान' भी प्रदान करता है। एक्वीनास की अरस्तू से असहमति का यहीं से प्रारम्भ होता है। अरस्तू जिस दर्शन को ज्ञान का शिखर एवं विवेक को जिस ज्ञान की प्राप्ति का एकमात्र साधन मानता है, टामस उसे सर्वोच्च शिखर नहीं मानता। अरस्तू जैसे एक दार्शनिक की यह पराकाष्ठा हो सकती थी, किंतु एक्वीनास जैसे एक धर्मशास्त्री की नहीं। एक्वीनास अरस्तू से आगे अग्रसर होता है और धर्मशास्त्र को दर्शन से ऊपर निरूपित करता है। धर्मशास्त्र में निहित सत्य एक संपूर्ण सत्य तथा ज्ञान संपूर्ण ज्ञान है। इस अंतिम सत्य एवं ज्ञान की जानकारी केवल श्रद्धा एवं विश्वास द्वारा संभव है। विवेक द्वारा इसकी प्राप्ति नहीं की जा सकती।

प्रकृति का सिद्धांत :

एक्वीनास का प्रकृति का सिद्धांत उसके ज्ञान के सिद्धांत के ही अनुरूप है। ज्ञान के समान ही विश्व की रचना भी एक पिरामिड जैसी है जिसके सिरे पर ईश्वर विराजमान है और जिसके आधार का निर्माण अनेकानेक जीवधारियों (प्राणियों) द्वारा हुआ है। यह एक स्वाभाविक व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक प्राणी को एक निश्चित स्थान प्राप्त है। सभी के अपने-अपने स्वाभाविक कार्य एवं लक्ष्य है। सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व तो यह है कि इस सृष्टि मे प्रत्येक प्राणी के ये कार्य एवं लक्ष्य केवल उसी से संबंधित नही हैं। इनका संबंध संपूर्ण सृष्टि से है। इसलिए जब प्राणी अपना कार्य करता हुआ पूर्णता की प्राप्ति करता है तो परिणामस्वरूप वह इस सृष्टि की पूर्णता में भी योग देता है। 'इकाई' की पूर्णता से 'संपूर्ण' की पूर्णता स्वाभाविक रूप से संबद्ध है, जो सभी का लक्ष्य है। इस सृष्टि मे कुछ भी महत्त्वहीन नहीं है। प्रकृति की इस समूची व्यवस्था का सार यही लक्ष्य है।

सृष्टि की इस शृंखलाबद्ध व्यवस्था मे व्यक्ति का स्थान भी अन्य जीवधारियों के समान निश्चित है। किंतु एक्वीनास के अनुसार, व्यक्ति की स्थिति अन्य प्राणियों की तुलना मे विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। इसका एक मात्र कारण व्यक्ति में 'शरीर' के साथ-ही-साथ एक बौद्धिक एवं आध्यात्मिक 'आत्मा' का होना है। शरीर के संदर्भ में वह सृष्टि के अन्य जीवधारियों या प्राणियों जैसा ही है, किंतु आत्मा के संदर्भ में (जो एक ईश्वरीय लक्षण है) वह इस सृष्टि के निर्माता—ईश्वर से सबद्ध है। व्यक्ति की यह विशिष्टता उसके लक्ष्य को भी विशिष्टता प्रदान कर देती है। उसका लक्ष्य इस संसार मे रहकर केवल सुखमय जीवन की प्राप्ति करना नही है, (जैसाकि अरस्तू कहता है), उसका अंतिम लक्ष्य है मोक्ष की प्राप्ति। सुखमय जीवन की प्राप्ति एक निम्नतर लक्ष्य है और मोक्ष की प्राप्ति एक श्रेष्ठतम लक्ष्य। व्यक्ति के ये दोनों लक्ष्य असंभव नहीं है। निम्नतर लक्ष्य श्रेष्ठतम लक्ष्य को प्रभावित करता है और श्रेष्ठतम लक्ष्य निम्नतर लक्ष्य को निर्देशित।

मान्यता की इस ठोस पृष्ठभूमि पर एक्वीनास न केवल राज्य तथा चर्च जैसी संस्थाओं को आधारित करता है बल्कि उस कानून को भी जिसके अनुसार उसका जीवन निर्देशित होता है।

राज्य का सिद्धांत :

एक्वीनास का राज्य का सिद्धांत उसकी प्रकृति विषयक व्यवस्था का ही एक महत्त्वपूर्ण किंतु अभिन्न अंग है। उसकी मान्यता है कि व्यक्ति सुखमय जीवन की प्राप्ति राज्य में रहकर करता है (अरस्तू की यह मौलिक मान्यता थी : "राज्य का जन्म जीवन के लिए हुआ है किंतु उसका लक्ष्य जीवन की प्राप्ति कराना है") और चर्च उसे मोक्ष की प्राप्ति का रास्ता बतलाता है। इसीलिए व्यक्ति के लिए दोनों की सदस्यता अनिवार्य है। अरस्तू-वाद तथा ईसाईयत का यह समन्वय एक्वीनास के दर्शन का एक रोचक भाग है। यहाँ एक्वीनास राज्य की उत्पत्ति, प्रकृति, उद्देश्य तथा चर्च के साथ उसके संबंधों की विस्तार से चर्चा करता है। दर्शन का यही वह स्थल है जहाँ एक्वीनास ईसाई धर्म के प्रारंभिक सतों की पर भी प्रहार करता है इन विचारको का मत था कि राज्य

व्यक्तियों के 'पाप' का परिणाम है तथा मनुष्य की पापमय प्रवृत्तियों का नियंत्रण सरकार के अस्तित्व का एक मात्र कारण है। इसके विपरीत एक्वीनास राज्य को एक प्राकृतिक संस्था मानता है, जिसका स्वाभाविक ढंग से विकास हुआ है। राज्य की उत्पत्ति को व्यक्ति की सामाजिक प्रकृति में खोजा जा सकता है।

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। अज्ञानता की स्थिति में व्यक्ति ने किसी-न-किसी प्रकार का सामाजिक जीवन व्यतीत किया होगा, ऐसी एक्वीनास की मान्यता है। सुखमय जीवन की प्राप्ति प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य है और जिसकी प्राप्ति वह समाज में रहकर करता है। इसकी प्राप्ति व्यक्ति सेवाओं के आपसी आदान-प्रदान द्वारा करता है। एक्वीनास ने लिखा है—इस प्रकार समाज इन्हीं लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की एक विशिष्ट व्यवस्था बन जाती है। एक कृषक एवं शिल्पी भौतिक वस्तुओं के निर्माण द्वारा, पुरोहित प्रार्थना एवं धार्मिक क्रिया-कलापों द्वारा तथा सैनिक देश की सुरक्षा में रत रहकर सेवाओं का आदान-प्रदान करता है।

इस व्यवस्था के 'संगठन के लिए' तथा 'सभी के कल्याण के लिए' सरकार है और एक्वीनास के अनुसार सरकार वही श्रेष्ठ है जो विवेक एवं नैतिक श्रेष्ठता पर आधारित हो। यही शासन जनता के हित में है। प्रो० नेपिलशिप ने इसी निष्कर्ष की पुष्टि में लिखा है "टामस एक्वीनास सरकार की आवश्यकता को व्यक्ति की सामाजिक प्रकृति पर तथा सरकार के संगठन को, शासितों के हित में, शासक की बौद्धिक एवं नैतिक श्रेष्ठता पर आधारित मानता है। यह शासन ठीक उसी प्रकार का है जिस प्रकार कि शरीर पर आत्मा का शासन या सृष्टि पर ईश्वर का शासन।

एक्वीनास सरकार के कार्यों एवं उसके स्वरूप की भी चर्चा करता है। किंतु इस संदर्भ में इस मान्यता को ध्यान में रखना आवश्यक है कि एक्वीनास राजनीतिज्ञ न होकर एक धर्मशास्त्री भी था, जिसके लिए मानव-जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति था और जो राज्य के अंतर्गत न होकर चर्च के अंतर्गत संभव है। इस कार्य को शासक की अपेक्षा एक पादरी ही संपादित कर सकता है। किंतु यह एक्वीनास की अपनी विलक्षणता है कि वह सुव्यवस्थित राजनीतिक जीवन को इस चरम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक मानता है। राजनीतिक जीवन के सुव्यवस्थित होने से एक्वीनास का आशय एक ऐसी व्यवस्था से था जो प्रत्येक व्यक्ति को श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति कराने में समर्थ हो। इस संदर्भ में वह राज्य में शांति एवं व्यवस्था को बनाए रखने, बाह्य शत्रुओं से देश की रक्षा करने, कानूनों के पालन पर पुरस्कारों एवं उल्लंघन पर दण्ड देने जैसे अनिवार्य कार्यों के साथ-ही-साथ वह उन कार्यों का उल्लेख करता है जिन्हें आज हम राज्य के 'लोककल्याणकारी कार्य' कहते है। राज्य की एकता एवं शासन के स्थायित्व पर इस समूची व्यवस्था की सफलता निर्भर करती है। इसे एक्वीनास राजनीतिक संगठन की श्रेष्ठता की प्रथम शर्त कहता है। शासक को अपने राज्य के मार्गों को आवागमन एवं व्यापार के लिए न केवल स्वतंत्र रखना चाहिए बल्कि उनकी सुरक्षा की समुचित व्यवस्था भी करनी चाहिए। यहाँ एक्वीनास रोमन का समर्थन करता हुआ प्रतीत होता है विशिष्ट मुद्रा का परिचलन माप तौल की का निर्धारण एवं निधनों के लिए समुचित का निर्माण शासक

के प्रति महत्त्वपूर्ण दायित्व है। यहाँ एक्वीनास मध्ययुगीन मान्यताओं मे आस्थावान् प्रतीत होता है।

यह सही है कि एक्वीनास शासक को अनेकानेक कार्य सौपता है किंतु वह उसे अमर्यादित सत्ता सौपने के पक्ष में नहीं है। वह प्रशासनिक सत्ता को सीमित करने का सुझाव देता है, किंतु इस आशय का स्पष्टीकरण नही करता कि इसे किस प्रकार सीमित किया जा सकता है। एक्वीनास विधिगत शासन को ही सच्चा शासन मानता है, जिससे आशय है कि सत्ता का प्रयोग कानूनों के अनुसार होना चाहिए, न कि मनमाने ढंग से, इसलिए कि शासक अत्याचारी न बन सके। यदि शासक अत्याचारी बन जाता है तो, एक्वीनास के अनुसार ऐसे शासक का विरोध न्यायोचित है, किंतु यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि वह अत्याचारी शासकों के वध को अनुचित मानता है। यह आश्चर्य की बात है कि एक्वीनास विधिगत शासन को सच्चा शासन तो मानता है किंतु विधिगत शासन से अपने आशय को पूर्णतः स्पष्ट करने की उसने कभी आवश्यकता नही समझी।

एक्वीनास ने सरकारों के वर्गीकरण की भी चर्चा की है। परंतु इस विषय पर उसके पास अरस्तू से कुछ भी अधिक कहने को नहीं है। श्रेष्ठ शासन-प्रणाली के संदर्भ मे अवश्य ही वह अरस्तू से भिन्न निष्कर्ष लेकर राजतंत्र की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता है। एक्वीनास का राज्यों के वर्गीकरण का आधार, अरस्तू के समान ही, शासन का 'लक्ष्य' ही है: शासन किसके हित में चलाया जा रहा है? यदि शासन का संचालन जनता के हित में होता है तो वह एक अच्छा शासन है और यदि शासन स्वयं शासकों के हित मे सचालित है तो एक्वीनास उसे एक निकृष्ट शासन मानता है। इन सभी प्रकार के शासनो मे उसने राजतंत्र का समर्थन किया है। राज्य की एकता इस निष्कर्ष का एक मात्र कारण है। वह एकता को राज्य का लक्ष्य मानता था। गैटिल का कथन है: 'एकता का प्रेम मध्ययुगीन जीवन की विशेषता थी और टामस भी उससे प्रभावित था, इसीलिए उसे लोकतंत्र की अपेक्षा राजतंत्र पसंद था, क्योंकि उसका विश्वास था कि लोकतंत्र फूट और झगडो को जन्म देता है। मध्ययुग में चारों ओर अराजकता और उपद्रव फैले हुए थे। इसलिए राजनीतिक संगठन के संबंध में स्थायित्व और एकता का विचार और भी अधिक महत्त्वपूर्ण था। राज्य की इस एकता की प्राप्ति वही कर सकता है जो स्वयं एक इकाई हो। जिस प्रकार शरीर पर हृदय का और सृष्टि पर ईश्वर का शासन है उसी प्रकार राज्य पर राजा का शासन उसे अधिक तर्क-संगत प्रतीत हुआ। एक्वीनास जानता था कि राजतंत्र को सबसे बड़ा खतरा उसके अधिनायकतंत्र में परिवर्तित हो जाने में है। किंतु वह यह भी जानता था कि अधिनायकतंत्र की स्थापना की संभावना प्रजातंत्र में जितनी अधिक होती है उतनी राजतंत्र में नहीं होती।''

फिर भी अपनी इस आशंका के निराकरण के लिए एक्वीनास ने राजा पर किन्ही नैतिक प्रतिबंधों का आरोपण किया है। उसकी मान्यता थी कि राजा की शक्तियाँ सीमित होनी चाहिएँ किंतु, जैसाकि सेबाइन ने लिखा है, उसने अपने इस आशय का कहीं स्पष्टीकरण नहीं किया है। शासन का संचालन कानून के अनुसार होना चाहिए तथा अधिशासन का विरोध जनता द्वारा किया जा सकता है। सेबाइन ने लिखा है

"एक्वीनास का झुकाव नैतिक प्रतिबंधों के प्रति ही अधिक था; उनके कानूनी तथा संवैधानिक स्वरूपों से तो जैसे उसका कोई सरोकार ही नहीं था।"

दासता संबंधी विचार :

संत आगस्टिन तथा अरस्तू के समान एक्वीनास भी दासता के संबंध में अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है। किंतु एक्वीनास के विचार प्रस्तुत संदर्भ में निश्चित रूप से अरस्तू और आगस्टिन के विचारों से भिन्न हैं। इनमें प्रथम भिन्नता यह है कि एक्वीनास दासता की चर्चा संदर्भ रूप में ही करता है, जबकि अरस्तू तथा आगस्टिन ने दासता की चर्चा एक प्रतिपाद्य विषय के रूप में की है। दूसरे, एक्वीनास जहाँ नकारात्मक पक्ष पर बल देता है वहाँ अरस्तू तथा आगस्टिन उसके (दासता के) सकारात्मक पक्ष का ही समर्थन करते हैं, जैसाकि निम्न विवरण से स्पष्ट है :

अरस्तू दासता की पुष्टि व्यक्ति की बौद्धिक प्राप्तियों के आधार पर करता है और चूँकि इन प्राप्तियों का संबंध प्रकृति से है इसलिए वह दासता को प्राकृतिक मानता है। उसके अनुसार "वह जो प्रकृति से अपना न होकर पराया हो, प्रकृतिश: दास है।" आगस्टिन ईसाईयत का समर्थक संत था। अत: अपनी धार्मिक मान्यताओं के आधार पर वह दासता को पापियों को दंड देने की एक व्यवस्था कहता है। उसके अनुसार दासता एक दैवी व्यवस्था है। इसके विपरीत दासता के समर्थन में एक्वीनास का लक्ष्य अपने सैनिकों मे जोश, साहस एवं वीरता के भावों को भरना मात्र था। 'पराजितों को दास बना लिया जाएगा,' यह कथन सैनिकों को पराजित न होने का संकल्प लेने में प्रभावी हो सकता है—ऐसी एक्वीनास की मान्यता थी। अपने इस दृष्टिकोण के समर्थन में एक्वीनास न केवल रोम के इतिहास का उद्धरण प्रस्तुत करता है, बल्कि ईसाई धर्म की पुस्तकों से भी वह कुछ प्रमाण जुटाता है।

कानून का सिद्धांत :

कानून संबंधी सिद्धांत एक्वीनास के राजनीतिक दर्शन का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है। उसकी मान्यता थी कि शासन कानून के अनुसार ही संचालित हो। उसका निष्कर्ष था कि विधिगत शासन ही एक सच्चा शासन है। इस प्रकार उसके लिए कानून शासन की एक महत्त्वपूर्ण कसौटी बन जाता है, जिसके आधार पर किसी शासन को उचित अथवा अनुचित, अच्छा या बुरा या श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट माना जा सकता है। एक्वीनास की कानून की धारणा अरस्तू, स्टोइक्स, सिसरो, रोमन कानून-वेत्ताओं एवं आगस्टिन के सिद्धांतों का एक ऐसा समन्वय है जो अपने-आपमें पूर्ण है। यूनानी विचारकों ने कानून को विवेक का परिणाम माना था, न कि इच्छा की अभिव्यक्ति। रोम के विधि-शास्त्र के अनुसार कानून को या तो विवेक का परिणाम माना जाता था या इच्छा की अभिव्यक्ति। एक्वीनास के अनुसार कानून एक साथ विवेक का परिणाम तथा इच्छा की अभिव्यक्ति भी है। वह कानून की परिभाषा इस प्रकार देता है : "कानून विवेक का वह अध्यादेश है जिसे लोकहित के लिए ऐसे व्यक्ति ने प्रख्यापित किया हो जो समाज के के लिए जिम्मेदार है

के अति महत्त्वपूर्ण दायित्व है। यहाँ एक्वीनास मध्ययुगीन मान्यताओं में आस्थावान् प्रतीत होता है।

यह सही है कि एक्वीनास शासक को अनेकानेक कार्य सौंपता है किंतु वह उसे अमर्यादित सत्ता सौंपने के पक्ष में नहीं है। वह प्रशासनिक सत्ता को सीमित करने का सुझाव देता है, किंतु इस आशय का स्पष्टीकरण नहीं करता कि इसे किस प्रकार सीमित किया जा सकता है। एक्वीनास विधिगत शासन को ही सच्चा शासन मानता है, जिससे आशय है कि सत्ता का प्रयोग कानूनों के अनुसार होना चाहिए, न कि मनमाने ढग से, इसलिए कि शासक अत्याचारी न बन सके। यदि शासक अत्याचारी बन जाता है तो, एक्वीनास के अनुसार ऐसे शासक का विरोध न्यायोचित है, किंतु यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि वह अत्याचारी शासकों के वध को अनुचित मानता है। यह आश्चर्य की बात है कि एक्वीनास विधिगत शासन को सच्चा शासन तो मानता है किंतु विधिगत शासन से अपने आशय को पूर्णत: स्पष्ट करने की उसने कभी आवश्यकता नहीं समझी।

एक्वीनास ने सरकारों के वर्गीकरण की भी चर्चा की है। परंतु इस विषय पर उसके पास अरस्तू से कुछ भी अधिक कहने को नहीं है। श्रेष्ठ शासन-प्रणाली के संदर्भ मे अवश्य ही वह अरस्तू से भिन्न निष्कर्ष लेकर राजतंत्र की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता है। एक्वीनास का राज्यों के वर्गीकरण का आधार, अरस्तू के समान ही, शासन का 'लक्ष्य' ही है: शासन किसके हित में चलाया जा रहा है? यदि शासन का संचालन जनता के हित में होता है तो वह एक अच्छा शासन है और यदि शासन स्वयं शासकों के हित मे संचालित है तो एक्वीनास उसे एक निकृष्ट शासन मानता है। इन सभी प्रकार के शासनो मे उसने राजतंत्र का समर्थन किया है। राज्य की एकता इस निष्कर्ष का एक मात्र कारण है। वह एकता को राज्य का लक्ष्य मानता था। गैटिल का कथन है: 'एकता का प्रेम मध्ययुगीन जीवन की विशेषता थी और टामस भी उससे प्रभावित था, इसीलिए उसे लोकतंत्र की अपेक्षा राजतंत्र पसंद था, क्योंकि उसका विश्वास था कि लोकतंत्र फूट और झगड़ो को जन्म देता है। मध्ययुग में चारों ओर अराजकता और उपद्रव फैले हुए थे। इसलिए राजनीतिक संगठन के संबंध मे स्थायित्व और एकता का विचार और भी अधिक महत्त्वपूर्ण था। राज्य की इस एकता की प्राप्ति वही कर सकता है जो स्वयं एक इकाई हो। जिस प्रकार शरीर पर हृदय का और सृष्टि पर ईश्वर का शासन है उसी प्रकार राज्य पर राजा का शासन उसे अधिक तर्क-संगत प्रतीत हुआ। एक्वीनास जानता था कि राजतंत्र को सबसे बड़ा खतरा उसके अधिनायकतत्र में परिवर्तित हो जाने में है। किंतु वह यह भी जानता था कि अधिनायकतंत्र की स्थापना की संभावना प्रजातंत्र में जितनी अधिक होती है उतनी राजतंत्र में नहीं होती।"

फिर भी अपनी इस आशंका के निराकरण के लिए एक्वीनास ने राजा पर किन्ही नैतिक प्रतिबंधों का आरोपण किया है। उसकी मान्यता थी कि राजा की शक्तियाँ सीमित होनी चाहिएँ किंतु, जैसाकि सेबाइन ने लिखा है, उसने अपने इस आशय का कहीं स्पष्टीकरण नहीं किया है। शासन का संचालन कानून के अनुसार होना चाहिए तथा अधि शासन का विरोध जनता द्वारा किया जा सकता है। सेबाइन ने लिखा है

"एक्वीनास का झुकाव नैतिक प्रतिबंधों के प्रति ही अधिक था; उनके कानूनी तथा संवैधानिक स्वरूपों से तो जैसे उसका कोई सरोकार ही नहीं था।"

दासता संबंधी विचार :

संत आगस्टिन तथा अरस्तू के समान एक्वीनास भी दासता के संबंध में अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है। किंतु एक्वीनास के विचार प्रस्तुत संदर्भ में निश्चित रूप से अरस्तू और आगस्टिन के विचारों से भिन्न हैं। इनमें प्रथम भिन्नता यह है कि एक्वीनास दासता की चर्चा संदर्भ रूप में ही करता है, जबकि अरस्तू तथा आगस्टिन ने दासता की चर्चा एक प्रतिपाद्य विषय के रूप मे की है। दूसरे, एक्वीनास जहाँ नकारात्मक पक्ष पर बल देता है वहाँ अरस्तू तथा आगस्टिन उसके (दासता के) सकारात्मक पक्ष का ही समर्थन करते है, जैसाकि निम्न विवरण से स्पष्ट है :

अरस्तू दासता की पुष्टि व्यक्ति की बौद्धिक प्राप्तियों के आधार पर करता है और चूँकि इन प्राप्तियों का संबंध प्रकृति से है इसलिए वह दासता को प्राकृतिक मानता है। उसके अनुसार "वह जो प्रकृति से अपना न होकर पराया हो, प्रकृतिश: दास है।" आगस्टिन ईसाईयत का समर्थक संत था। अत: अपनी धार्मिक मान्यताओं के आधार पर वह दासता को पापियों को दंड देने की एक व्यवस्था कहता है। उसके अनुसार दासता एक दैवी व्यवस्था है। इसके विपरीत दासता के समर्थन में एक्वीनास का लक्ष्य अपने सैनिको मे जोश, साहस एवं वीरता के भावों को भरना मात्र था। 'पराजितों को दास बना लिया जाएगा,' यह कथन सैनिकों को पराजित न होने का संकल्प लेने में प्रभावी हो सकता है—ऐसी एक्वीनास की मान्यता थी। अपने इस दृष्टिकोण के समर्थन में एक्वीनास न केवल रोम के इतिहास का उद्धरण प्रस्तुत करता है, बल्कि ईसाई धर्म की पुस्तकों से भी वह कुछ प्रमाण जुटाता है।

कानून का सिद्धांत :

कानून संबंधी सिद्धांत एक्वीनास के राजनीतिक दर्शन का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है। उसकी मान्यता थी कि शासन कानून के अनुसार ही संचालित हो। उसका निष्कर्ष था कि विधिगत शासन ही एक सच्चा शासन है। इस प्रकार उसके लिए कानून शासन की एक महत्त्वपूर्ण कसौटी बन जाता है, जिसके आधार पर किसी शासन को उचित अथवा अनुचित, अच्छा या बुरा या श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट माना जा सकता है। एक्वीनास की कानून की धारणा अरस्तू, स्टोइक्स, सिसरो, रोमन कानून-वेत्ताओं एवं आगस्टिन के सिद्धांतो का एक ऐसा समन्वय है जो अपने-आपमें पूर्ण है। यूनानी विचारकों ने कानून को विवेक का परिणाम माना था, न कि इच्छा की अभिव्यक्ति। रोम के विधि-शास्त्र के अनुसार कानून को या तो विवेक का परिणाम माना जाता था या इच्छा की अभिव्यक्ति। एक्वीनास के अनुसार कानून एक साथ विवेक का परिणाम तथा इच्छा की अभिव्यक्ति भी है। वह कानून की परिभाषा इस प्रकार देता है : "कानून विवेक का वह अध्यादेश है जिसे लोकहित के लिए ऐसे व्यक्ति ने प्रस्थापित किया हो जो समाज के के लिए जिम्मेदार है

कानून की इस परिभाषा की आलोचनात्मक व्याख्या हमें सहज ही निम्न निष्का पर पहुँचाती है—

(१) कानून विवेक का परिणाम है। वह स्पष्ट शब्दों में कानून को 'विवेक क अध्यादेश' कहता है। यहाँ एक्वीनास कानून की यूनानी मान्यता के अधि नजदीक है।

(२) कानून प्रभु का आदेश है। इस कथन मे एक्वीनास रोम की मान्यताओं क स्वीकार कर लेता है।

(३) कानून का आधार लोकहित है।

इस प्रकार एक्वीनास अपनी कानून की परिभाषा में कानून के व्यावहारिक एव दार्शनिक दोनों ही प्रकार के लक्षणों का समावेश करके उसे 'सामान्य हित' के ठोस धरा-तल पर प्रतिष्ठित कर देता है। कानून की यह धारणा लौकिक और पारलौकिक दोनो ही व्यवस्थाओं पर एक शृंखलाबद्ध ढंग से लागू है। परिणामस्वरूप कानून की परिधि अति व्यापक हो गई है। परिधि की यह व्यापकता उसके द्वारा दिए गए कानूनों के वर्गीकरण से पूर्णतः स्पष्ट है। सेबाइन कानूनों के इस वर्गीकरण को एक्वीनास के दर्शन का सबसे विशिष्ट अंग मानता है। एक्वीनास के अनुसार कानून चार प्रकार के हैं—

(१) शाश्वत कानून, (२) प्राकृतिक कानून,
(३) दैवी कानून, (४) मानवीय कानून।

१. शाश्वत कानून—शाश्वत कानून वस्तुत. दैवी या ईश्वरीय विवेक है। यह वह शाश्वत योजना है जिसके अनुसार सृष्टि के सभी कार्यो एव गतिविधियो का संचालन होता है। यह कानून नित्य है, अटल है, इसलिए कि ईश्वर का विवेक तथा शासन दोनों नित्य एवं अटल है। यही विश्व की अंतिम वास्तविकता है। यह व्यक्ति की भौतिक प्रकृति से परे है किंतु केवल इस कारण से वह मानव-विवेक का विरोध नही है। अपने सीमित विवेक द्वारा व्यक्ति इस अंतिम सत्य एवं वास्तविकता को जानने का प्रयास करना है और अपने आचरण को उसी के अनुसार ढालने का प्रयास करता है ; यही प्रयास उसे ईश्वर प्राप्ति की प्रेरणा देते हैं। किंतु यह भी सही है कि अपने सीमित विवेक से व्यक्ति शाश्वत कानूनो का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नही कर पाता। अतएव जो कार्य शाश्वत विधियों द्वारा होते हैं और जिन्हें मनुष्य समझ नही पाता, उन्हें वह कभी 'भाग्य का विधान' या 'प्रारब्ध का तमाशा' समझ लेता है। किंतु उसकी यह समझ उस ईश्वरीय स्वरूप का केवल विकृत रूप ही प्रकट करती है, जो शाश्वत एवं स्वयं सत्य है।

२. प्राकृतिक कानून—शाश्वत कानून ईश्वर के मस्तिष्क तक ही सीमित है। उसे सृष्टि के प्राणी समझ पाने में असमर्थ हैं। फिर भी सृष्टि के सभी कार्य एवं गति-विधियाँ उसी के अनुसार संचालित हैं। इस संचालन का कारण सृजित प्राणी अथवा वस्तुएँ स्वयं नहीं हैं। इसका एक मात्र कारण है ईश्वरीय विवेक की वह झलक जो प्रकृति की प्रत्येक व्यवस्था में विद्यमान है। प्राकृतिक कानून दैवी विवेक की सृजित वस्तुओं में व्याप्त ऐसी ही एक झलक है। इस रूप में प्राकृतिक कानून शाश्वत कानून की ही उपज है। सृष्टि के प्रत्येक जड तथा चेतन निर्माण अथवा सृजन में अच्छाई की प्राप्ति तथा

खराबी का निराकरण करने, अपने को संरक्षित बनाए रखने तथा अपनी प्रकृति के अनुरूप संभावित रूप से पूर्ण जीवन जीने की प्रवृत्ति में यह निहित है। व्यक्ति के संदर्भ में इसका तात्पर्य---जैसा कि अरस्तू ने लिखा है—एक ऐसे जीवन की स्वाभाविक लालसा से है जिसमें वह अपनी विवेकी प्रकृति को पूर्णतः प्राप्त कर सके। दूसरे शब्दों में, यह व्यक्ति की बुद्धि की ग्राह्य शक्ति का परिचायक है। एक्वीनास के अनुसार, आत्मरक्षा की प्रकृति, यौन संभोग, संतान की शिक्षा, समाज में रहकर जीवन बिताने की इच्छा, सत्य का अन्वेषण और बुद्धि का विकास इसके उदाहरण है।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के कानून ईश्वरीय विवेक से संबंधित हैं। शाश्वत कानून यदि इस विवेक की अभिव्यक्ति है तो प्राकृतिक कानून सृजित वस्तुओं में इस विवेक की एक झलक। और इसीलिए शाश्वत कानून निश्चित एवं अटल हैं। वह हमेशा से हैं और हमेशा रहेंगे।

३. **दैवी कानून**---प्राकृतिक कानून में कुछ ऐसे सिद्धांत होते हैं जो आधारभूत होने के साथ-ही-साथ अति व्यापक है। इन्ही सिद्धांतों के अनुसार व्यक्ति अपने आचरण एव कार्यों को विनियमित करता है। व्यक्ति का आचरण इन सिद्धांतों के कितने और कहाँ तक अनुरूप होगा, यह उसकी विवेक शक्ति पर निर्भर है। इस प्रकार प्राकृतिक कानून मानव बुद्धि की खोज है। इसके दो कारण है—**प्रथम** कि प्राकृतिक कानून व्यक्ति के समक्ष जीवन लक्ष्य रखते हैं, उन लक्ष्यो तक पहुँचने के साधनों का निर्धारण नही करते, इन साधनों का निर्धारण व्यक्ति अपने सीमित विवेक से करता है। परिणामस्वरूप, साधन न तो पूर्णत. उचित हो पाते है और न ही पर्याप्त। **दूसरे**, व्यक्ति अपने सीमित विवेक से इन्हें पूर्णतः समझ पाने में भी असमर्थ है। उसका विवेक उसे उचित तथा अनुचित का सही बोध कराने की क्षमता भी नही रखता। व्यक्ति के अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के संदर्भ मे यह स्थिति और भी कठिन बन जाती है। यहाँ व्यक्ति को दैवी प्रकाश की आवश्यकता है, दैवी कानून ऐसी ही एक व्यवस्था है। दैवी कानून के अंतर्गत ईश्वर के वह आदेश आते है जो कि अंतर्बुद्धि द्वारा व्यक्ति को प्राप्त होते हैं। गैटिल इसे 'ईश्वर द्वारा उद्भासित विधि-संहिताएँ' कहता है। दैवी कानून मानव ज्ञान को पूर्णता प्रदान करता है, किंतु यह व्यक्ति के जीवन के आध्यात्मिक पक्ष से ही संबद्ध है, लौकिक पक्ष से नहीं, क्योंकि एक्वीनास के अनुसार इस लोक मे सुखमय जीवन की प्राप्ति करना लक्ष्य न होकर मोक्ष की प्राप्ति ही व्यक्ति का अंतिम एवं सर्वोच्च लक्ष्य है।

दैवी कानून के संबंध मे दो बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं : प्रथम, दैवी कानून भिन्न-भिन्न जातियों एवं कालों मे रूप तथा तत्त्व में भिन्न-भिन्न होता है। स्पष्ट है, दैवी कानून, प्राकृतिक कानून से, जो मानव मात्र के लिए 'एक' है, भिन्न हैं, तथा, दूसरे, कि दैवी कानून प्राकृतिक कानून का विरोधी नही है। इसलिए कि दोनो ही ईश्वरीय विवेक से संबद्ध हैं। दैवी कानून जबकि धर्मग्रंथों के माध्यम से व्यक्तियों को दिए गए ईश्वरीय आदेश हैं, प्राकृतिक कानून व्यक्तियों में ईश्वरीय विवेक की सहज एवं स्वाभाविक व्याप्ति है। सेबाइन ने लिखा है : "ईश्वर-ज्ञान विवेक को समृद्ध बनाता है, उसे कभी नष्ट नही करता संत टामस की प्रणाली विवेक तथा श्रद्धा पर आधारित है किंतु उसे इस बात में

कभी संदेह नहीं हुआ कि दोनों मिलकर एक भी भवन का निर्माण करते हैं।

४. **मानवीय कानून**—उपर्युक्त तीनों कानून (शाश्वत, प्राकृतिक एवं दैवी) आचरण के नियमों का निर्धारण करते हैं जो यद्यपि कभी-कभी मनुष्यों पर लागू होते हैं, किंतु वह ऐसा कानून भी है जो केवल उन्हीं के लिए बनाया गया है। टामस एक्वीनास उसे 'मानवीय कानून की संज्ञा' देता है। मानवीय कानून इस रूप में एक विशिष्ट कानून भी है जो प्राणियों के एक विशिष्ट वर्ग (मनुष्यों) के जीवन को नियंत्रित करता है। इसमें रूढ़ियाँ एवं मनुष्यों द्वारा निर्मित कानून सम्मिलित होते हैं। एक्वीनास मानवीय कानून के दो भेद बतलाता है : राष्ट्रों के कानून (जस जेंटियम) तथा नागरिकों के कानून (जस सिविल)। मनुष्यों के संबंध में नियमों का निर्धारण विवेक द्वारा होता है। अतः मानवीय कानून मानव-विवेक की ही उपज है।

प्रो० डनिंग ने बड़े ही सुंदर शब्दों में इन चारों प्रकार के कानूनों तथा उनके पारस्परिक संबंधों को इस प्रकार स्पष्ट किया है : "शाश्वत कानून सृष्टि के नियंत्रण की योजना है, जो ईश्वर के मस्तिष्क मे विद्यमान है। प्राकृतिक कानून, एक बुद्धिशील प्राणी के रूप में, व्यक्ति का शाश्वत कानून में भाग लेना है, जिसके द्वारा वह अच्छे और बुरे में अंतर करता है तथा अपने वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति में प्रयत्नशील रहता है। मानवीय कानून मानव-विवेक द्वारा प्राकृतिक कानून के सिद्धांतों का विशिष्ट लौकिक परिस्थितियों में प्रयोग करना है। दैवी कानून द्वारा मानव-विवेक की सीमाओं एवं अपूर्णताओं की पूर्ति की जाती है और व्यक्ति को मोक्ष के पारलौकिक लक्ष्य की ओर निर्दिष्ट किया जाता है।"

इस प्रकार एक्वीनास ने कानून को एक व्यापक परिधि प्रदान की है। यह केवल मानवीय संबंधों की व्यवस्था से संबद्ध नहीं है। यह उस ईश्वरीय सरकार का एक अभिन्न अंग है जिसके अनुसार स्वर्ग तथा पृथ्वी दोनों में प्रत्येक वस्तु शासित है। मूलतः एक धर्मशास्त्र होने के नाते, ईश्वरीय विवेक को वह प्रत्येक वस्तु का स्रोत मानता है।

न्याय संबंधी सिद्धांत :

एक्वीनास की न्याय विषयक मान्यताओं को भी रोम के कानूनवेत्ताओं और अरस्तू की न्यायिक मान्यताओं में खोजा जा सकता है। वह न्याय की परिभाषा इस प्रकार देता है : "प्रत्येक व्यक्ति को उसके अपने अधिकार प्रदान कर देने की निश्चित एवं नित्य इच्छा ही न्याय है।" न्याय की यह परिभाषा रोमन विधिवेत्ताओं की मान्यताओं का अनुसरण करती है, किंतु अरस्तू का अनुकरण करते हुए एक्वीनास 'समानता' को न्याय का आधार स्वीकार करता है।

प्रस्तुत संदर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि एक्वीनास लिखित मानवीय कानूनों को ही अधिकारों एवं न्याय का मूल स्रोत मानता है। वह इस आशय का भी पूर्णरूप से स्पष्टीकरण करता है कि ये कानून लिखित होने के कारण बाध्यकारी नहीं हैं बल्कि वे प्रकृति से ही शक्ति ग्रहण करते हैं। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत से हट जाने पर यह मानवीय कानूनों की बाध्यकारी शक्ति समाप्त हो जाती है या दूसरे शब्दों में तब व्यक्ति

को इनके पालन के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। गैटिल ने लिखा है : "तत्वतः वह विधि को सार्वभौम, अपरिवर्तनशील और प्राकृतिक मानता था और यह भी कहता था कि यदि मानवकृत विधि न्याय के आधारभूत सिद्धांतों के विरुद्ध हो तो उसे विधि की विकृति ही समझना चाहिए।" कानून एवं न्याय विषयक विचार एक्वीनास के दर्शन का एक अति महत्त्वपूर्ण भाग है।

राज्य एवं चर्च के संबंध विषयक सिद्धांत :

राजसत्ता और धर्मसत्ता के बीच संबंधों की क्या व्यवस्था हो, मध्ययुग का यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न था। चर्च के समर्थकों द्वारा संबंधों के इस प्रश्न के समाधान की बहुत पहले व्याख्या की जा चुकी थी। जैसाकि प्रो० डनिंग ने लिखा है : "एक्वीनास इस समाधान में कोई नई चीज न जोड़ सका।" उसने अपने दर्शन में एक ऐसी पूर्ण व्यवस्था का निर्माण किया है जिसमें राजसत्ता और धर्मसत्ता अपने-अपने निर्धारित स्थानों पर व्यवस्थित है। राजसत्ता धर्मसत्ता की पूरक है, विरोधी नहीं है। ईसाई धर्म के कट्टर अनुयायी होने के कारण अन्यथा निष्कर्ष की एक्वीनास से अपेक्षा भी नहीं की जा सकती थी। लौकिक ज्ञान की पारलौकिक ज्ञान से, भौतिक सुख की आध्यात्मिक सुख से, सुखमय जीवन की धारणा मोक्ष प्राप्ति की धारणा से तथा विवेक की श्रद्धा से संबद्धता उसकी इसी आधारभूत मान्यता की एक सहज एवं स्वाभाविक परिणति है। एक दूसरे से न केवल संबद्ध है बल्कि एक दूसरे की पूरक भी है। एक की परिणति दूसरे में होती है, किंतु दूसरी प्रथम से प्रमुख है। उसका निष्कर्ष है, चर्च राज्य से श्रेष्ठ है।

एक्वीनास राज्य की तुलना मे चर्च की श्रेष्ठता ही सिद्ध नहीं करता बल्कि शासकों से कुछ अपेक्षा भी करता है। पुरोहितों की सत्ता लौकिक भी है और पारलौकिक भी। इसलिए नागरिक कल्याण तथा मोक्ष के सभी विषयों में शासकों की तुलना में पोप की आज्ञाओं का पालन करना चाहिए। जहाँ तक निष्कर्षों का प्रश्न है, एक्वीनास का मत है कि "यदि कोई शासक चर्च के आदेशों की अवहेलना करे तो उसे बहिष्कृत कर दिया जाए और उसकी प्रजा को उसकी आज्ञाओं के पालन के कर्त्तव्य से मुक्त कर दिया जाए।"

राज्य तथा चर्च के इन आपसी संबंधों को एक्वीनास ने 'जलपोत' के एक रूपक द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया है : राज्य को यदि एक जलपोत की संज्ञा दी जाए तो राजा उस जलपोत पर एक बढ़ई के समान है, जिसका प्रमुख कार्य यात्रा के समय आवश्यक मरम्मत द्वारा उसे तैयार बनाए रखना है। चर्च की तुलना उसने जलपोत के चालक से की है, जो उसे निर्दिष्ट लक्ष्य की दिशा में ले जाता है। जिस प्रकार जलपोत का बढ़ई चालक के नियंत्रण एवं अनुशासन में रहता है उसी प्रकार राज्य को चर्च के नियंत्रण में रहना चाहिए। चर्च का संबंध यदि लक्ष्य की प्राप्ति से है तो राज्य का संबंध लक्ष्य की प्राप्ति की तैयारी में है। स्पष्ट है, राज्य चर्च की एक अति आवश्यक किंतु पूरक व्यवस्था है।

एक्वीनास की देन

एक्वीनास अपने युग का सबसे महत्त्वपूर्ण विचारक था। फॉस्टर जैसे विद्वान् तो उसे 'संपूर्ण मध्ययुगीन चिंतन का प्रतिनिधि' मानते हैं। उसका समन्वयवाद मध्ययुग को उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण देन थी। अरस्तूवाद को स्वीकार करके जहाँ एक्वीनास ने तात्कालिक मान्यताओं को (विशेषकर धार्मिक मान्यताओं को) अधिक व्यवस्थित, अधिक विवेकपूर्ण एवं अधिक तर्कसंगत बनाया है, वहाँ अरस्तूवाद में धार्मिक निष्कर्षों का पुट देकर उसने उसे समृद्ध बनाया है। एक्वीनास को कैथोलिक चर्च का 'सर्वोत्तम अभिभावक एवं गौरव' माना जाता है। प्रो० गैटिल ने लिखा है : "एक्वीनास ने उत्तर-मध्यकाल के बुद्धिपरक राजनीतिक चिंतन का समारंभ किया, जिसमें धर्मशास्त्रियों के पुराने धर्मतांत्रिक तर्कों का उन सामान्य सिद्धांतों के साथ समन्वय देखने को मिलता है, जो राजनीतिक समाजों के मूल स्वभाव से व्युत्पादित किए गए थे और अरस्तू की **पॉलिटिक्स** पर आधारित थे। उसने ऐतिहासिक भावना का परिचय दिया और तत्कालीन राजनीतिक संस्थाओं से भी सामग्री उपलब्ध की। कई दृष्टियों से उसके विचार विशेष रूप से प्रगतिशील और संयत थे।"

निःसंदेह विचारों का जो 'पिरामिड' संत एक्वीनास ने निर्मित किया था वह अरस्तू के उपरांत एक व्यक्ति की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति मानी जाती है। हूकर, लॉक, बर्क जैसे बाद के राजनीतिक विचारक एक्वीनास के दर्शन से विशेष रूप से प्रभावित हैं।

निकोलो मैकियावेली

[NICOLO MACHIAVELLI]

[१४६९—१५२७]

ैकियावेली राजनीतिक साहित्य के इतिहास में सम्भवत: एकमात्र
जिसे सबसे अधिक एवं सार्वभौमिक रूप से धिक्कारा गया है, वह
के कथनों को यद्यपि सिद्धांततः एवं सार्वभौमिक रूप से अस्वीकार
है किंतु व्यवहार में अबाध रूप से पालन किया गया है ....।"

—सी० सी० मैक्सी

क दृष्टि—

य—(i) स्थान : फ्लोरेंस [इटली]; (ii) जन्म : ३ मई १४६९;
(iii) मृत्यु : २२ जून, १५२७।

—(i) दी प्रिंस;
(ii) डिस्कोर्सेज ऑन दी फर्स्ट टैन बुक्स ऑफ टाइटस लिवियस;
(iii) आर्ट ऑफ वॉर।

विचारों में यह मैकियावेली का युग था जिसकी उपलब्धियों
को तब तक याद रखा जाएगा जब तक कि राजनीति-विज्ञान
अवसरवादिता को स्थान प्राप्त रहेगा।"

—सी० सी० मैक्सी

:

का युग क्रांतिकारी परिवर्तनों का युग था; हर क्षेत्र में परिवर्तन हो
युगों पुरानी मान्यताएँ टूट रही थीं और उनके खंडहरों पर नवीन
रही थीं। नए-नए प्रदेशों की खोज[1] से जहाँ यूरोप (अनुपात में)

[1] शताब्दी के अंत में कोलंबस ने अमेरिका का पता लगाया : विश्व यूरोप की
गया।

सिकुड़ता जा रहा था, वहाँ आवागमन के साधनों में विकास[1] व्यापार की संभावनाओं को आशातीत विस्तार प्रदान करता जा रहा था। विज्ञान के नए-नए आविष्कारों के प्रकाश में मध्ययुगीन धार्मिक मान्यताएँ[2] ध्वस्त होती जा रही थीं। राजनीतिक बोध में सर्वत्र ही मध्ययुगीन संस्थाओं में दरारें पड़ गई थी और वह ढहती जा रही थीं। चर्च और राज्य के बीच क्षेत्र का लंबा विवाद, जो मध्ययुग के राजनीतिक दर्शन की अपनी एक विशिष्टता थी, राज्य के पक्ष मे सुलझता जा रहा था; राज्य एक शक्तिशाली संस्था के रूप में उभर रहा था और उसका यह नया रूप 'राष्ट्रीय राज्य' (Nation State) का स्वरूप था।

डनिंग ने लिखा है: "युग एक शक्तिशाली व्यक्ति का युग था।"[3] और यह आश्चर्य की बात नहीं कि १६वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में ही पश्चिमी यूरोप में 'पूर्ण राजतंत्र' शासन ही मान्य प्रणाली या तो बन गई थी या तेजी से बनती जा रही थी। सेबाइन ने लिखा है: "सर्वत्र ही मध्ययुगीन संस्थाओं का व्यापक स्तर पर विनाश हो रहा था इसलिए कि पूर्ण राजतंत्र (Absolute Monarchy) रक्त और शस्त्रों द्वारा निर्मित था जो बड़ी मात्रा में स्पष्टतः शक्ति पर आधारित था।"[4]

फ्रांस, स्पेन तथा पश्चिमी यूरोप के लगभग अन्य सभी राज्य संगठित होकर पूर्ण राजतंत्र व्यवस्था को अपना चुके थे। एकीकरण की दिशा में इटली सबसे अधिक पिछड़ा हुआ था; यह एकीकरण इटली के एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उदय की प्राथमिक शर्त थी। समस्त इटालियन प्रदेश ५ राज्यों में विभाजित था। एक राष्ट्रीय सम्राट् के अंतर्गत फ्रांस अथवा स्पेन के नमूने पर संपूर्ण राष्ट्र का एकीकरण ही वह आदर्श था जिससे मैकियावेली को प्रेरणा मिली। डायले ने लिखा है: "मैकियावेली ने यह खोजना चाहा कि एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना कैसे संभव है।"[5] और यही कारण है कि मैकियावेली का दर्शन शासन की कला का अध्ययन है, न कि राज्य के सिद्धांत का। उसने शासनतंत्र के विषय में ही लिखा—उन तरीकों के विषय में जिनसे राज्यों को शक्तिशाली बनाया जा सकता है, उन नीतियों के विषय में जिनसे वह अपनी शक्ति बढ़ा सकते हैं, तथा उन गलतियों के विषय में जो उनके पतन या समाप्ति का कारण बन जाती हैं। वह राजनीतिक तथा सैनिक पक्षों से ही अधिक संबद्ध है तथा उसने इन्हें धार्मिक, नैतिक तथा सामाजिक मान्यताओं से बिल्कुल ही अलग कर दिया है।

---

१. लगभग इसी समय वास्को-डि-गामा ने केप-ऑफ-गुड होप का चक्कर लगाया: अंतर-राष्ट्रीय व्यापार को जैसे राजमार्ग मिल गया।

२. मध्ययुग में यह मान्यता थी कि पृथ्वी के नीचे नर्क है और चँदोवे के समान ऊपर स्वर्ग है; पृथ्वी का धरातल चपटा है जिसके कोरों से नीचे लुढ़कने पर मनुष्य नीचे असीम अंधकार के खड्ड में गिर जाता है। इन मान्यताओं को तब गहरा आघात लगा जब वैज्ञानिकों ने घोषणा की कि पृथ्वी गोल है तथा वह सूर्य के चक्कर लगाती है। परिणामस्वरूप नर्क और स्वर्ग की स्थिति एक समस्या बन कर रह गई।

३. डनिंग: "The era was that of a strong man."—ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरीज; Vol. I, पृ० २८६

४. सेबाइन: ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी: पृ० २८७

५. डायले: ए हिस्ट्री ऑफ [illegible] थॉट पृ० १२६

मैकियावेली का जन्म इटली के एक प्रसिद्ध नगर फ्लोरेंस में ३ मई, १४६६ को एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। उसके पिता का नाम बर्नार्डो-डि निकोलो था। निकोलो फ्लोरेंस के एक सामान्य वकील थे। बालक मैकियावेली की प्रारंभिक शिक्षा फ्लोरेंस मे ही हुई। १४९४ में २५ वर्ष की आयु में उसने एक लिपिक के रूप में शासकीय सेवा में प्रवेश किया। मैकियावेली के इस सार्वजनिक जीवन में क्रमबद्धता नहीं रही। इस अवधि को (जो ३३ वर्ष की रही) तीन कालों मे विभक्त किया जा सकता है—

(i) १४९४ से १५१२ तक
(ii) १५१२ से १५२१ तक
(iii) १५२१ से मृत्युपर्यन्त

१४९४ में शासकीय सेवा में आने के उपरांत ४ वर्ष की अत्यंत अल्पावधि में ही वह शासन के एक महत्त्वपूर्ण पद पर पहुँच गया। यह था द्वितीय चांसलर तथा सचिव का पद। इस महत्त्वपूर्ण पद पर मैकियावेली १४ वर्ष तक रहा। मैकियावेली की योग्यता वाले व्यक्ति को अपनी क्षमता के प्रदर्शन और परिणामस्वरूप ख्याति प्राप्ति के लिए यह अवधि पर्याप्त से कहीं अधिक थी; फ्लोरेंस की स्थिति ने भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया (फ्लोरेंस इस अवधि में एक स्वतंत्र गणराज्य था)। राज्य के अनेकानेक महत्त्वपूर्ण दायित्वों का निर्वाह उसने बड़ी ही सफलता के साथ किया। कहा जाता है, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में वह राजदूत के पद पर भी रहा। इसी अवधि में वह वैलेंटिना के ड्यूक सीजर बोर्जिया के संपर्क में आया। बोर्जिया एक योग्य एवं सफल प्रशासक था किंतु उसकी परपरागत नैतिक मान्यताओं में कोई आस्था नहीं थी तथा उसने तात्कालिक इटली मे ही सर्वश्रेष्ठ प्रकार से प्रशासित एक राज्य का निर्माण किया था। कुछ लेखकों का कथन है कि मैकियावेली ने बोर्जिया को ही अपनी महान् रचना **दी प्रिंस** में आदर्श राजा के रूप मे चित्रित किया है। मैक्सी ने लिखा है कि यदि ऐसा है तो इसमें संदेह के लिए स्थान नहीं है क्योंकि बोर्जिया ने युग के किसी अन्य शासक की तुलना में व्यावहारिक व्यक्ति के विचारों का कहीं अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया था।"[1] यह काल उसके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण काल था।[2] इस अवधि में शासितों की प्रकृति तथा शासन की समस्याओं का अध्ययन करने एवं देश-विदेश की व्यावहारिक राजनीति के विभिन्न पहलुओं को समीप से देखने और समझने का उसे पर्याप्त अवसर मिला और जिसका उसने भरपूर लाभ उठाया। प्रो० डनिंग ने लिखा है : "शासन के वास्तविक संचालन के उसके विस्तृत, गहरे एवं तीक्ष्ण निरीक्षण ने उसके विचारों एवं रचनाओं पर स्पष्ट छाप छोड़ी है।"[3]

१५१२ का वर्ष मैकियावेली के सार्वजनिक जीवन की आकस्मिक समाप्ति लेकर

---

१. मैक्सी : "If he serve as a model for Machiavelli's fictional prince, it was doubtless because he exemplified the ideas of practical men more perfectly than any other ruler of the period."—पोलिटीकल फिलॉसफीज; पृ० १२७

२. फॉस्टर ने लिखा है : "These years comprise the period of his active political life"—मास्टर्स ऑफ पोलिटीकल थॉट: पृ० २६७

३ डनिंग ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरीज Vol I. पृ० २८१

सिकुड़ता जा रहा था, वहाँ आवागमन के साधनों मे विकास[1] व्यापार की संभावनाओं को आशातीत विस्तार प्रदान करता जा रहा था। विज्ञान के नए-नए आविष्कारों के प्रकाश में मध्ययुगीन धार्मिक मान्यताएँ[2] ध्वस्त होती जा रही थीं। राजनीतिक बोध में सर्वत्र ही मध्ययुगीन संस्थाओं में दरारे पड़ गई थीं और वह ढहती जा रही थीं। चर्च और राज्य के बीच क्षेत्र का लंबा विवाद, जो मध्ययुग के राजनीतिक दर्शन की अपनी एक विशिष्टता थी, राज्य के पक्ष में सुलझता जा रहा था; राज्य एक शक्तिशाली संस्था के रूप में उभर रहा था और उसका यह नया रूप 'राष्ट्रीय राज्य' (Nation State) का स्वरूप था।

डनिंग ने लिखा है: "युग एक शक्तिशाली व्यक्ति का युग था।"[3] और यह आश्चर्य की बात नहीं कि १६वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में ही पश्चिमी यूरोप मे 'पूर्ण राजतंत्र' शासन ही मान्य प्रणाली या तो बन गई थी या तेजी से बनती जा रही थी। सेबाइन ने लिखा है: "सर्वत्र ही मध्ययुगीन संस्थाओं का व्यापक स्तर पर विनाश हो रहा था इसलिए कि पूर्ण राजतंत्र (Absolute Monarchy) रक्त और शस्त्रों द्वारा निर्मित था जो बड़ी मात्रा मे स्पष्टत: शक्ति पर आधारित था।"[4]

फ्रांस, स्पेन तथा पश्चिमी यूरोप के लगभग अन्य सभी राज्य संगठित होकर पूर्ण राजतंत्र व्यवस्था को अपना चुके थे। एकीकरण की दिशा में इटली सबसे अधिक पिछड़ा हुआ था; यह एकीकरण इटली के एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उदय की प्राथमिक शर्त थी। समस्त इटालियन प्रदेश ५ राज्यों में विभाजित था। एक राष्ट्रीय सम्राट् के अंतर्गत फ्रांस अथवा स्पेन के नमूने पर संपूर्ण राष्ट्र का एकीकरण ही वह आदर्श था जिसमे मैकियावेली को प्रेरणा मिली। डायले ने लिखा है: "मैकियावेली ने यह खोजना चाहा कि एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना कैसे संभव है।"[5] और यही कारण है कि मैकियावेली का दर्शन शासन की कला का अध्ययन है, न कि राज्य के सिद्धात का। उसने शासनतंत्र के विषय में ही लिखा—उन तरीकों के विषय में जिनसे राज्यों को शक्तिशाली बनाया जा सकता है, उन नीतियों के विषय मे जिनसे वह अपनी शक्ति बढ़ा सकते हैं, तथा उन गलतियों के विषय में जो उनके पतन या समाप्ति का कारण बन जाती हैं। वह राजनीतिक तथा सैनिक पक्षों से ही अधिक संबद्ध है तथा उसने इन्हें धार्मिक, नैतिक तथा सामाजिक मान्यताओं से बिल्कुल ही अलग कर दिया है।

---

१. लगभग इसी समय वास्को-डि-गामा ने केप-ऑफ-गुड होप का चक्कर लगाया: अंतरराष्ट्रीय व्यापार को जैसे राजमार्ग मिल गया।

२. मध्ययुग मे यह मान्यता थी कि पृथ्वी के नीचे नर्क है और चँदोवे के समान ऊपर स्वर्ग है; पृथ्वी का धरातल चपटा है जिसके कोरों से नीचे लुढ़कने पर मनुष्य नीचे असीम अंधकार के खड्ड में गिर जाता है। इन मान्यताओं को तब गहरा आघात लगा जब वैज्ञानिकों ने घोषणा की कि पृथ्वी गोल है तथा वह सूर्य के चक्कर लगाती है। परिणामस्वरूप नर्क और स्वर्ग की स्थिति एक समस्या बन कर रह गई।

३. डनिंग: "The era was that of a strong man."—ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरीज; Vol. I, पृ० २८६

४. सेबाइन · ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी· पृ० २८७

५ डायले ए हिस्ट्री ऑफ पॉट पृ० १२६

मकियावली का जन्म इटली के एक प्रसिद्ध नगर फ्लोरेंस में ३ मई १४६९ को एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। उसके पिता का नाम बर्नार्डो-डि निकोलो था। निकोलो फ्लोरेंस के एक सामान्य वकील थे। बालक मैकियावेली की प्रारंभिक शिक्षा फ्लोरेंस में ही हुई। १४९४ में २५ वर्ष की आयु में उसने एक लिपिक के रूप में शासकीय सेवा में प्रवेश किया। मैकियावेली के इस सार्वजनिक जीवन में क्रमबद्धता नहीं रही। इस अवधि को (जो ३३ वर्ष की रही) तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है—

(i) १४९४ से १५१२ तक
(ii) १५१२ से १५२१ तक
(iii) १५२१ से मृत्युपर्यन्त

१४९४ में शासकीय सेवा में आने के उपरांत ४ वर्ष की अत्यंत अल्पावधि में ही वह शासन के एक महत्त्वपूर्ण पद पर पहुँच गया। यह था द्वितीय चांसलर तथा सचिव का पद। इस महत्त्वपूर्ण पद पर मैकियावेली १४ वर्ष तक रहा। मैकियावेली की योग्यता वाले व्यक्ति को अपनी क्षमता के प्रदर्शन और परिणामस्वरूप ख्याति प्राप्ति के लिए यह अवधि पर्याप्त से कहीं अधिक थी; फ्लोरेंस की स्थिति ने भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया (फ्लोरेंस इस अवधि में एक स्वतंत्र गणराज्य था)। राज्य के अनेकानेक महत्त्वपूर्ण दायित्वों का निर्वाह उसने बड़ी ही सफलता के साथ किया। कहा जाता है, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में वह राजदूत के पद पर भी रहा। इसी अवधि मे वह वैलेंटिना के ड्यूक सीजर बोर्जिया के संपर्क मे आया। बोर्जिया एक योग्य एवं सफल प्रशासक था किन्तु उसकी परंपरागत नैतिक मान्यताओं में कोई आस्था नहीं थी तथा उसने तात्कालिक इटली मे ही सर्वश्रेष्ठ प्रकार से प्रशासित एक राज्य का निर्माण किया था। कुछ लेखकों का कथन है कि मैकियावेली ने बोर्जिया को ही अपनी महान् रचना **दी प्रिंस** में आदर्श राजा के रूप मे चित्रित किया है। मैक्सी ने लिखा है कि यदि ऐसा है तो इसमें संदेह के लिए स्थान नहीं है क्योंकि बोर्जिया ने युग के किसी अन्य शासक की तुलना में व्यावहारिक व्यक्ति के विचारों का कहीं अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया था।"[1] यह काल उसके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण काल था।[2] इस अवधि में शासितों की प्रकृति तथा शासन की समस्याओं का अध्ययन करने एवं देश-विदेश की व्यावहारिक राजनीति के विभिन्न पहलुओं को समीप से देखने और समझने का उसे पर्याप्त अवसर मिला और जिसका उसने भरपूर लाभ उठाया। प्रो० डनिंग ने लिखा है : "शासन के वास्तविक संचालन के उसके विस्तृत, गहरे एवं तीक्ष्ण निरीक्षण ने उसके विचारों एवं रचनाओं पर स्पष्ट छाप छोड़ी है।"[3]

१५१२ का वर्ष मैकियावेली के सार्वजनिक जीवन की आकस्मिक समाप्ति लेकर

---

१. मैक्सी : "If he serve as a model for Machiavelli's fictional prince, it was doubtless because he exemplified the ideas of practical men more perfectly than any other ruler of the period."—पोलिटीकल फिलॉसफीज; पृ० १२७

२. फॉस्टर ने लिखा है : "These years comprise the period of his active political life"—मास्टर्स ऑफ पोलिटीकल थॉट: पृ० २६७

३ डनिंग ए हिस्ट्री ऑफ प्योरीज Vol I. पृ० २८१

आया और जिसका मूल कारण फ्लोरेंस में सत्ता का परिवर्तन था। मेदिची परिवार, जिसे कुछ वर्ष पूर्व शासन से हटा दिया गया था, स्पेन की मदद से पुनः सत्ता में आ गया। अपदस्थ शासन से संबद्ध होने के कारण मैकियावेली नई सरकार का स्वाभाविक रूप से कोपभाजन बना। उसे न केवल पद से अलग कर दिया गया बल्कि मेदिची सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र के संदेह में हवालात में बंद कर दिया गया। किंतु लगभग १ वर्ष में ही उसे इस शर्त पर रिहा कर दिया गया कि वह सार्वजनिक जीवन से तथा सभी प्रकार की राजनीतिक गतिविधियों से संन्यास ले लेगा। सेन कैसियानो (San Casciano) में मैकियावेली ने अपना यह नया जीवन प्रारंभ किया। सार्वजनिक एवं राजनीतिक गतिविधियों की दृष्टि से मैकियावेली के इस जीवन को 'बहिष्कृत' जीवन कहा जाएगा किंतु राजनीतिक दर्शन की दृष्टि से यह काल ही उसके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण काल था। अवकाश के इस जीवन में उसने पूर्ववर्ती महत्त्वपूर्ण विचारकों एवं लेखकों की कृतियों का विस्तृत अध्ययन किया और अपने उन अमर ग्रंथों की रचना की जिन्होंने मैकियावेली को राजनीतिक दर्शन के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान प्रदान किया है।

समय सभी प्रकार की अप्रसन्नता एवं विरोध को शांत कर देता है। मैकियावेली के प्रति मेदिची सरकार की अप्रसन्नता भी कम हुई और सार्वजनिक जीवन में पुनः प्रवेश की उसे स्वीकृति प्रदान कर दी गई। मैकियावेली की योग्यता, प्रशासनिक क्षमता एवं ख्याति किसी भी शासन के लिए आवश्यक थी। १५२१ में वह कूटनीतिक कार्यों में पुनः संलग्न हुआ। अपने इन दायित्वों का निर्वाह करते हुए २२ जून, १५२७ को उसकी मृत्यु हो गई।

प्रमुख रचनाएँ :

मैकियावेली ने राजनीति के अतिरिक्त साहित्य एवं इतिहास पर भी ग्रंथों की रचना की है। जहाँ साहित्य में उसने अनेक उपन्यासों, गीतों, कविताओं एवं सुखांत नाटकों की रचना की है वहाँ इतिहास के क्षेत्र में 'फ्लोरेंस का इतिहास' एक ऐसी अधिकृत रचना है जिसका समुचित स्वागत हुआ। राजनीति के क्षेत्र में मैकियावेली ने जिन ग्रंथों की रचना की है, उनमें उल्लेखनीय है—

(१) दी प्रिंस (The Prince)
(२) डिस्कोर्सेज ऑन दी फर्स्ट टैन बुक्स ऑफ टाइटस लिवियस (Discourses on the First Ten Books of Titus Livius)
(३) आर्ट ऑफ वॉर (Art of War)

प्रथम दो कृतियों की रचना सेन कैसियानो में निवास के दौरान हुई थी (जहाँ वह राजनीतिक वास्तविकताओं की समस्या पर विचार करने के लिए अपने अभाग्य द्वारा प्रेरित हुआ था)।[1] जिस अवधि में तथा जिन परिस्थितियों में (जब वह अपदस्थ होने के उपरांत 'अवकाश का जीवन' व्यतीत कर रहा था) इन ग्रंथों का—विशेषकर दी प्रिंस का

१ सी० सी० मैक्सी पृ० १२८

निमाण हुआ वह मकियावली पर इस आरोप को नितांत ही गलत सिद्ध नहीं कर पाता कि वह इन कृतियों के माध्यम से फ्लोरेंस के मेदिची शासकों का कृपापात्र बनना चाहता था, उसने **दी प्रिंस** को 'लॉरेंजो दी मेदिची' (Lorenzo de Medici)---फ्लोरेंस का तात्कालिक सम्राट्---को समर्पित भी किया था।

समय की दृष्टि से **डिस्कोर्सेज** की रचना का प्रारंभ उसने **दी प्रिंस** के पहले किया था किंतु उसे **प्रिंस** के उपरांत ही वह पूरा कर पाया। **प्रिंस** को उसने १५१३ के अंत में पूरा कर लिया था। दोनों ही ग्रंथ एक ही विषय से संबद्ध हैं। अंतर केवल इतना है कि दोनों में विषय का प्रतिपादन अलग-अलग ढंग से हुआ है—एक में जहाँ राज्यों के उत्थान और पतन के कारणों की खोज की गई है वहाँ दूसरे में उन साधनों का उल्लेख है जिनके प्रयोग से राजनेता उन्हें स्थायी बना सकता है; एक जहाँ रोमन गणराज्य के इतिहास पर टीका है वहाँ दूसरा राजतंत्र एवं तानाशाही शासनों पर; **डिस्कोर्सेज** में जहाँ मैकियावेली का राज्य का दर्शन है वहाँ **प्रिंस** शासकों—विशेषकर इटली के तानाशाह लॉरेंजो दी मेदिची के लिए लिखा गया निर्देशन ग्रंथ।[1] मैक्सी जैसे विद्वान् **डिस्कोर्सेज** को **प्रिंस** का एक भाग मानते हैं।[2] **डिस्कोर्सेज** में वह उन शक्तियों की खोज में है जिन्होंने मनुष्यों को समाज और राज्य के निर्माण के लिए बाध्य किया; प्रिंस में वह (राज्य के निर्माण के उपरांत) मूलतः शासन और उसकी समस्याओं से संबद्ध है।

मैकियावेली की पद्धति :

मैकियावेली राजनीतिक दर्शन से संबंधित न होकर 'राजनीति' से संबंधित था; वह सिद्धांतवादी न होकर ठोस व्यावहारिक एवं पूर्णतः यथार्थवादी था। उसका दर्शन के प्रति कोई लगाव नहीं था। यही कारण है, उसके राजनीतिक सिद्धांतों में क्रमबद्धता की कमी है। सेबाइन का यह कथन पूर्णतः सही है कि "मैकियावेली की राजनीतिक रचनाएँ राजनीतिक सिद्धांत की अपेक्षा राजनीतिक साहित्य की श्रेणी में अधिक आती हैं।"[3] मैकियावेली इसी कारण राजनयिकों का प्रिय लेखक रहा है। किसी राजनीतिक सिद्धांत का प्रतिपादन करना उसका लक्ष्य भी नहीं था। उसका साध्य तो सशक्त, संगठित एवं समृद्धशाली इटली था। इसके लिए एक ऐसे विशिष्ट गुणसंपन्न शासक की आवश्यकता थी जो युग की—और विशेषकर इटली की—तात्कालिक परिस्थितियों में इस लक्ष्य की प्राप्ति कर सके। इटली तथा युग की तात्कालिक परिस्थितियों का पूर्ण जानकार होने के कारण वह शासक की इन विशिष्टताओं को स्पष्ट करने में पूर्णतः समर्थ था। सेबाइन ने लिखा है : "इटली को मैकियावेली से अधिक कोई अन्य नहीं

---

१ फिलिस डायले : "The Discorsi was Machiavelli's philosophy of the State, the Prince a manual for the guidance of rulers, in particular the Italian tyrant, Lorenzo de Medici."—ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थॉट; पृ० १२८

२. सी० सी० मैक्सी : पोलिटीकल फिलॉसफीज; पृ० १२८

३ सेबाइन ए हिस्ट्री ऑफ थ्योरी पृ० २६१

जानता था।[1] वह अपने युग की परिस्थितियों का सही ज्ञाता था। यही नहीं, उसे इतिहास का विशद अध्ययन था। मैक्सी ने लिखा है : "यदि आप आवश्यक समझते हैं तो प्रिंस के रचयिता की उसे निंदाशील अथवा कुटिल कहकर आलोचना कर लीजिए किंतु इतिहास और जीवन-वृत्तांत विषयक उसके ज्ञान के विषय में संदेह करने की गलती न कीजिए। उसके ग्रंथ के पृष्ठ आधिकारिक ऐतिहासिक तथ्यों से ठसाठस भरे हैं, जो उसके विषय की प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं और इसमें तब तक उसे संतोष नहीं होता जब तक कि वह प्रमाणों का पहाड़ ही न जुटाकर रख दे, जो पाठक को उसकी इच्छा के विरुद्ध भी इस पर विश्वास करा देते हैं।"[2] इस प्रकार, इतिहास का उसने भरपूर प्रयोग किया है; यह सही एवं स्पष्ट है। किंतु यह भी उतना ही स्पष्ट है कि उसने इसका प्रयोग अपने निष्कर्षों की पुष्टि के लिए ही किया।

मैकियावेली की रचना-शैली के विषय में लेखकों में विवाद का यही कारण है। कुछ का कथन है कि मैकियावेली ने ऐतिहासिक पद्धति का अनुगमन किया है। मैकियावेली की स्वयं की यह मान्यता थी कि राजनीति के विज्ञान की सही पद्धति ऐतिहासिक पद्धति ही है। मनुष्य की न केवल प्रकृति बल्कि उद्देश्य एवं समस्याएं प्रत्येक युग में अपरिवर्तन-शील रही हैं। वर्तमान को समझने में भूतकाल हमारी मदद कर सकता है। उसका विश्वास है कि भूतकाल की घटनाओं की जानकारी के आधार पर भविष्य का अनुमान लगाया जा सकता है; व्यक्तियों ने जो भूतकाल में किया है वह निर्देशित करता है कि उन्हें भविष्य में क्या करना चाहिए; भूतकाल ही हमें बतलाता है कि हमारी सफलताओं और असफलताओं का क्या कारण था। इसी मान्यता ने उसकी पद्धति का निर्धारण किया है। उसे इस बात का गर्व है कि उसने इस पद्धति (ऐतिहासिक पद्धति) का अनुगमन किया है।

कुछ विद्वानों को उसके इस दावे पर संदेह है। इसका एक ठोस कारण वह यह बतलाते हैं कि जिस तुलनात्मक पद्धति को ऐतिहासिक पद्धति की सहयोगी पद्धति माना जाता है, मैकियावेली ने उसका प्रयोग नहीं के बराबर किया है। डनिंग ने लिखा है कि मैकियावेली की पद्धति वास्तव में ऐतिहासिक पद्धति नहीं है, यद्यपि ऊपरी तौर पर ऐसी ही प्रतीत होती है। **डिस्कोर्सेज** का उदाहरण देकर वह लिखता है कि "उसने (मैकियावेली ने) 'लिवी' का प्रयोग सिद्धांतों को खोजने के लिए नहीं किया बल्कि अपने उन सिद्धांतों की पुष्टि के लिए किया है, जिन्हें उसने अपने उन स्वयं के निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण से प्राप्त किया था। सेबाइन तो स्पष्ट शब्दों में कहता है : "यह कहना गलत है कि मैकियावेली ने ऐतिहासिक पद्धति का अनुसरण किया है।"[3] मैकियावेली की व्यक्ति की प्रकृति विषयक धारणा पर टिप्पणी करते हुए वह आगे लिखता है : "एक अर्थ में तो वह बिलकुल ही ऐतिहासिक नहीं है। वह स्पष्ट रूप से कहता है कि मानव प्रकृति

---

१. सेबाइन : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी; पृ० २८८
२. सी० सी० मैक्सी : पोलिटीकल फिलॉसफीज; पृ० १३४
३. सेबाइन : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी पृ० २९१

हमेशा एवं सर्वत्र ही एक जैसा है और इसके लिए उसने जहाँ से भी प्राप्त हुए उदाहरण जुटाए हैं।"[1]

स्पष्ट है, मैकियावेली की पद्धति विशुद्ध रूप में ऐतिहासिक नहीं है, यद्यपि उसकी रचनाएँ अधिकाधिक ऐतिहासिक तथ्यों से ओत-प्रोत हैं। उसकी पद्धति मूलत: 'पर्यवेक्षणात्मक' है और इस रूप में अरस्तू की पद्धति से समानता रखती है, वास्तव में "अरस्तू के बाद राजनीतिक गवेषणा के क्षेत्र में पर्यवेक्षणात्मक पद्धति को अपनाने वाला मैकियावेली प्रथम विचारक था।"

प्रमुख प्रभाव :

डनिंग ने लिखा है . "राजनीतिक दर्शन की किसी भी अन्य व्यवस्था में वातावरण का प्रभाव इतना स्पष्ट नहीं जितना कि मैकियावेली में। संपूर्ण अर्थ में यह योग्य फ्लोरेंटीन अपने युग का शिशु था।"[2] वैसे तो कोई भी विचारक अपने देश और काल की परिस्थितियों के प्रभाव से अछूता नहीं रहता; यह प्रभाव किसी-न-किसी रूप में प्रत्येक रचनाकार की रचनाओं में देखा जा सकता है, किंतु मैकियावेली के ग्रंथों में यह प्रभाव अपने अत्यधिक रूप में है, इस प्रभाव को तीन रूपों में देखा जा सकता है—

(i) युग की परिवर्तित मान्यताओं का प्रभाव।
(ii) इटली के तात्कालिक राजनीतिक वातावरण का प्रभाव।
(iii) पुनरुत्थानवाद (नवजागरणवाद) का प्रभाव।

युग की परिवर्तित मान्यताओं का प्रभाव—१५वीं शताब्दी के कुछ अंतिम दशक तथा १६वीं शताब्दी के प्रारंभिक दो-तीन दशक पाश्चात्य सभ्यता के इतिहास में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं और ये उन परिवर्तनों की गति, गंभीरता एवं व्यापकता के कारण हैं जो इस अवधि में हुए। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप जहाँ कुछ नवीन मान्यताएँ सामने उपस्थित हो रही थीं जिन्हें बाद के दर्शनशास्त्रियों ने महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों के रूप में प्रतिपादित किया, वहाँ कुछ ऐसी मान्यताएँ समाप्त हो रही थीं जिन्हें एक लम्बे समय तक मौलिक माना जाता रहा था। मध्ययुगीन मान्यताओं एवं संस्थाओं की तोड़फोड़ सर्वत्र ही जारी थी। परिवर्तनों से उत्पन्न अस्थिरता के इस युग में मध्ययुग की प्रतिनिधि संस्थाओं की समाप्ति प्राय: निश्चित हो गई थी और सरकार तथा सरकार संबंधी विचारों में परिवर्तनों का बाहुल्य-सा आ गया था ; जो राजनीतिक शक्ति मध्ययुग में विभिन्न सामंतों के बीच विभाजित थी, अब एक राजा के हाथों में केंद्रित हो गई थी। १६वीं शताब्दी के राजनीतिक दर्शन की यह एक सामान्य मान्यता बन गई थी कि राजा ही राजनीतिक सत्ता का प्रधान है। इंग्लैंड को छोड़कर, यूरोप के लगभग सभी राज्यों में पूर्ण राजतंत्र व्यवस्थाएँ स्थापित हो गई थी।

यह युग राजनीति ही नहीं, भौगोलिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक आदि सभी क्षेत्रों में आश्चर्यजनक परिवर्तनों का युग था। परिणामस्वरूप ये परिवर्तन एक देश तक सीमित न रहकर ज्ञात विश्व के सभी देशों में व्याप्त हो गए।

---

१. सेबाइन : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी ; पृ० ९६३-९६४
२. डनिंग : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरीज Vol I पृ० २८५

मैकियावेली अपने युग का वह प्रथम राजनीतिक दार्शनिक था जिसने इन परिवर्तनों को गंभीरता से देखा, अध्ययन किया और समझा। राजनीतिक विकास की उस दिशा को देखा जो समस्त यूरोप में व्याप्त होती जा रही थी; इटली तथा निर्मित हो रही संस्थाओं में व्याप्त अराजकता के तत्त्व का तथा उस शक्ति का, जो इस प्रक्रिया में सक्रिय रूप से हाथ बँटा रही थी, अध्ययन किया। राष्ट्रीयता के उस तथ्य को समझा जिस पर यह शक्ति आधारित थी। मैकियावेली का राजनीतिक दर्शन इन्हीं मान्यताओं का तार्किक परिणाम है।

इटली के तात्कालिक राजनीतिक वातावरण का प्रभाव—इटली युग के इन परिवर्तनों से अछूता नहीं था। अन्तर केवल इतना था कि जहाँ यूरोप के अन्य देशों में इन पुरानी संस्थाओं एवं मान्यताओं का स्थान नई संस्थाओं एवं नई मान्यताओं ने या तो ले लिया था या लेती जा रही थीं, वहाँ इटली में इन पुरानी संस्थाओं एवं मान्यताओं के स्थान पर नवीन संस्थाएँ एवं मान्यताएँ निर्मित नहीं हो पा रही थीं। प्रत्येक क्षेत्र में अस्थिरता का वातावरण व्याप्त था, जिसके परिणामस्वरूप लगभग अराजकता की स्थिति बनती जा रही थी।

मैकियावेली अपने देश की इस स्थिति से बेहद दुखी था और उन कारणों के प्रति बेहद क्षुब्ध था जिन्होंने इटली को इस दयनीय और अराजकता की स्थिति में ला पटका था। इस स्थिति के लिए उसने चर्च को पूर्णतः उत्तरदायी ठहराया था। उसका निष्कर्ष है: "चर्च ने हमारे देश को विभाजित रखा है और आज भी विभाजित रखे हुए है। कोई भी देश कभी भी तब तक संगठित एवं सुखी नहीं हो सकता जब तक कि वह एक ही सरकार की आज्ञा का पालन नहीं करता, फिर चाहे वह गणतंत्र हो अथवा राजतंत्र, जैसा कि फ्रांस और स्पेन में है और इसका एक मात्र कारण चर्च है। चर्च इतना शक्तिशाली नहीं कि वह समूचे देश पर शासन कर सके और न ही उसने किसी एक शक्ति को ऐसा करने दिया है। इटली के कभी भी एक प्रधान के अधीन संगठित न हो पाने और हमेशा ही अनेकानेक राजाओं एवं प्रधानों के अधीन रहने के लिए चर्च ही पूर्णतः जिम्मेदार है।"[1]

मैकियावेली के अनुसार इटली का समाज बौद्धिक दृष्टि से योग्य तथा कलात्मक दृष्टि से सृजनशील था। विश्व की समस्याओं को संतुलित ढंग से समझने की क्षमता उसमें थी, किंतु नैतिक एवं राजनीतिक दृष्टि से वह पतित हो गया था। इस प्रवृत्ति ने शासन को भी भ्रष्ट बना दिया था। सच्चा देशभक्त होने के नाते मैकियावेली इटली को पतन के इस गर्त से निकालना चाहता था। उसके अनुसार एक शक्तिशाली केंद्रीय शासन-व्यवस्था के अंतर्गत इटली का एकीकरण ही इसका एकमात्र समाधान था। **दी प्रिंस** इसी दिशा मे किया गया एक महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय प्रयास है।

पुनरुत्थानवाद (नवजागरणवाद) का प्रभाव—जिन दो आंदोलनों द्वारा

---

१. इटली जिन पाँच राज्यों [निपल्स, रोम का चर्च का क्षेत्र, मिलान की डची, वेनिस का गणराज्य तथा फ्लोरेंस का गणराज्य] में विभाजित था उनके आपसी संबंध भी सौहार्दपूर्ण नहीं थे तथा यह सभी राज्य बाह्य हस्तक्षेप के प्राय शिकार होते रहते थे

आधुनिक युग का समारंभ हुआ वे थे : 'सुधार आंदोलन' (Reformation) तथा 'पुनरुत्थान अथवा नवजागरण' (Renaissance)। सुधारवाद जहाँ ईसाई मत में सुधार से संबद्ध था, वहाँ नवजागरण वस्तुतः प्राचीन मान्यताओं का पुनर्जन्म था—उस प्राचीनतम संस्कृति का पुनर्जन्म जो मध्ययुग में ईसाईयत के प्रभाव से दबकर रह गया था और अब जबकि मध्ययुग समाप्त हो रहा था यह प्राचीनतम सांस्कृतिक (यूनानी तथा रोमन) मान्यताएँ उभरकर पुनः सामने आ गई ; कला, साहित्य, दर्शन, विज्ञान—सभी क्षेत्रों में बौद्धिक अन्वेषण प्रारंभ हुए। किंतु यह बौद्धिक गवेषणा मात्र नहीं थी; इसका संबंध कुछ उससे था जिसे व्यक्ति अपने में महसूस कर रहे थे। परिणामस्वरूप व्यक्ति के विचारों एवं कार्यों पर मध्ययुगीन बंधन (धार्मिक अंधविश्वास) टूटने लगे; स्वर्ग और नरक की मान्यताओं का स्थान सांसारिक मान्यताएँ ले रही थीं तथा मोक्ष की प्राप्ति के स्थान पर सुखमय जीवन की प्राप्ति व्यक्ति का लक्ष्य बनता जा रहा था।

इटली इस नवजागरणवाद का केंद्र था, मैकियावेली एक विशुद्ध इटालियन होने के नाते इस नए आंदोलन से पूर्णतः प्रभावित था। फॉस्टर उसे 'नवजागरणवाद का प्रतिनिधि' मानता है।[1] प्राचीन साहित्य—विशेषकर इतिहास के अध्ययन से उसने अपने उन निष्कर्षों को पुष्ट किया जो युगीन मान्यताओं के संदर्भ में उसने निर्मित किए थे।[2] मैकियावेली पर समसामयिक (युगीन तथा इटालियन) राजनीतिक परिस्थितियों के अत्यधिक प्रभाव को स्वीकार करते हुए डनिंग ने लिखा है : "मैकियावेली का दर्शन उससे कहीं अधिक प्राचीनता के प्रति उस अत्यधिक लगाव का परिणाम था जो नवजागरणवाद का प्रमुख लक्षण था।"[3]

मैकियावेली की प्रमुख समस्या :

मैकियावेली इटली और उसकी समस्याओं से न केवल पूर्णतः परिचित था बल्कि इन समस्याओं के कटु परिणामों को उसने स्वयं भोगा भी था। विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे आविष्कारों के परिणामस्वरूप जहाँ यूरोप के अन्य देश समृद्धि को दोनों हाथों से बटोर रहे थे, वहाँ इटली के राज्य अपने आपसी विवादों एवं संघर्षों में ही अपनी शक्ति नष्ट कर रहे थे। इटली के आंतरिक मामलों में यूरोप के अन्य राज्यों का हस्तक्षेप नित्य का काम बन गया था, परिणामस्वरूप राजनीतिक अस्थिरता और प्रशासनिक अनिश्चितता का वातावरण व्याप्त था। अनाचार, हत्याएँ जहाँ शासन के कृत्य बन गए थे वहाँ चापलूसी स्वार्थपरता, धोखाधड़ी व्यक्ति के दायित्व। शासक एवं शासित दोनों ही भ्रष्ट थे।

नवजागरण के प्रभाव में, यहाँ भी संस्थाओं एवं मान्यताओं की तोड़फोड़ जारी थी किंतु उनके स्थान पर नई संस्थाओं एवं नई मान्यताओं के निर्मित न हो पाने के कारण

---

१. फॉस्टर : मास्टर्स ऑफ पोलिटीकल थॉट; पृ० २६६

२. मैक्सी ने लिखा है : "Machiavelli ransacks history, particularly the history of the Greek, Roman and Italian States for instance to prove his points."— पोलिटीकल फिलॉसफीज - पृ० १२९

३ डनिंग ए हिस्ट्री आफ पोलीटिकल थ्योरीज Vol I पृ० २८९

देश में शून्यता की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। सेबाइन ने इसे 'प्रतिबंधित राजनीतिक विकास' (arrested political development) कहा है।[1] मैकियावेली इस पर बेहद दुखी था। इसके लिए वह चर्च को ही दोषी मानता है—वह चर्च जो स्वयं इतना शक्तिशाली एवं प्रभावशाली नहीं कि इटली को अपने अधीन संगठित करके उसे एक स्थायी एवं सुदृढ़ सरकार प्रदान कर सके किंतु जो स्वयं इतना शक्तिहीन भी नहीं कि अन्य किसी के द्वारा ऐसी स्थायी एवं सुदृढ़ सरकार स्थापित की जा सके।

स्पष्ट है, मैकियावेली की समस्याएँ राष्ट्रीय समस्याएँ हैं जो आपस मे घनिष्ठ रूप से संबद्ध है।

प्रमुख समाधान :

मैकियावेली यदि एक आदर्शवादी विचारक होता तो प्लेटो के समान ही, अपनी कल्पना मे, एक आदर्श राज्य का निर्माण करता। किंतु वह तो एक यथार्थवादी राजनीतिज्ञ था जो इटली की तात्कालिक समस्याओंसे संबद्ध था और उनका समुचित समाधान ढूँड़ना चाहता था। उसका उद्देश्य ऐसे शासन की कला की विवेचना करना था जिसका अनुगमन करके शासक इटली के एकीकरण द्वारा न केवल एक सुदृढ़ एवं स्थायी शासन का गठन कर सकें वल्कि देश को विस्तार भी प्रदान करें। मैकियावेली के विचार इसी एक समाधान पर केंद्रित हैं। सेबाइन लिखता है : "राजनीति, राजनीति की कला तथा युद्ध की कला के अतिरिक्त वह किसी अन्य चीज के बारे में न तो लिखता है और न किसी अन्य चीज के बारे मे सोचता है।"[2] इसके लिए उसने दो समाधान सुझाए हैं—(१) निरंकुश राजतंत्र की स्थापना, और (२) राजनीति की धर्म एवं नैतिकता से पृथकता।

निरंकुश राजतंत्र की स्थापना—इटली के लिए एक शक्तिशाली राजा का समर्थन उसकी इस धारणा पर आधारित था कि इटली की तात्कालिक राजनीतिक परिस्थितियाँ इसके अनुकूल थीं; शक्तिशाली नेतृत्व ही इटालियन जनता को एक संगठित राष्ट्र का रूप दे सकता था। उसने लिखा है : "इटली में मौजूद परिस्थितियों में किसी भी प्रकार की व्यवस्था के निर्धारण के लिए राजतंत्रात्मक सरकार की स्थापना आवश्यक है क्योंकि जहाँ जनता इतनी भ्रष्ट हो जाए कि प्रतिरोध के लिए कानून निष्क्रिय हो जाएँ तब यह आवश्यक हो जाता है कि किसी बड़ी शक्ति की स्थापना की जाए जो पूर्ण एवं अंतिम सत्ता के प्रयोग द्वारा इसमें कमी लाए।" ऐसी परिस्थितियों में गणतंत्रीय सरकार को उसने सर्वथा ही अनुपयुक्त माना है, किंतु इससे यह आशय नहीं कि वह गणतंत्रीय सरकार को हेय दृष्टि से देखता है। उसकी मान्यता है कि किन्हीं परिस्थितियों में गणतंत्रीय सरकार ही सर्वश्रेष्ठ सरकार होती है। संक्षेप में, सुरक्षा की दृष्टि से जहाँ राजतंत्रात्मक सरकार श्रेष्ठ होती है वहाँ समृद्धि की दृष्टि से गणतंत्रात्मक सरकार। अतः गणतंत्रीय सरकार राजतंत्रीय सरकार की अनुगामिनी है, अग्रगामिनी नहीं।

---

१. सेबाइन : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी; पृ० २८९
२ वही पृ० ३०१

राजनीति का धर्म एवं नैतिकता से पृथकता—निरंकुश राजतंत्र की स्थापना मात्र से इटली अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर लेगा। उसने राजा के लिए एक ऐसी आचार-संहिता का भी निर्माण किया है जिसके लिए मैकियावेली की भर्त्सना की गई है। वह राजा को धर्म तथा नैतिकता से ऊपर प्रतिष्ठित करता है। राज्य का हित ही उनका सर्वोपरि लक्ष्य है और हर तरीका, जिससे इस लक्ष्य की प्राप्ति होती है, नैतिक है। वह स्पष्ट शब्दों में घोषणा करता है: "जहाँ देश की सुरक्षा ही खतरे में हो वहाँ उचित अथवा अनुचित, दयालुता अथवा क्रूरता, सम्मानजनक अथवा शर्मनाक जैसी धारणाओं के लिए कोई स्थान नहीं है।" राजा के कार्यों का एकमात्र मापदंड राज्य की सुरक्षा एवं समृद्धि ही है। वह लिखता है: "राजा को तो राज्य की सुरक्षा की चिंता करनी चाहिए, साधन तो सदैव आदरणीय ही समझे जाएँगे और उनकी सामान्य रूप से प्रशंसा की जाएगी।"

प्रमुख आधार :

मैक्सी ने लिखा है: "निकोलो मैकियावेली राजनीतिक साहित्य के इतिहास में सम्भवतः एकमात्र व्यक्ति है जिसे सबसे अधिक एवं सार्वभौमिक रूप से धिक्कारा गया है, वह व्यक्ति जिसके कथनों को यद्यपि सिद्धांततः एवं सार्वभौमिक रूप से अस्वीकार किया गया है किंतु व्यवहार में अबाध रूप से (जिनका) पालन किया गया है।[1] सेबाइन मैकियावेली और उसके दर्शन के सही स्वरूप को आधुनिक इतिहास की 'पहेली' कहता है। उसे अलग-अलग नामों से पुकारा गया है, यथा—एक कट्टर राष्ट्रवादी, महान् देशभक्त, प्रजातंत्र में गहरी आस्था वाला, तानाशाहों के समर्थन का प्रबल आकांक्षी, कुटिल एवं निंदाशील राजनीतिज्ञ आदि। अलग-अलग संदर्भों में इनमें से प्रत्येक सही है किंतु यह भी सही है कि इनमें से कोई भी एक न तो मैकियावेली[2] को और न उसके दर्शन को स्पष्ट करता है। मैकियावेली ने क्रमबद्ध राजनीतिक दर्शन का निर्माण नहीं किया है; वह तो केवल उन 'राजनीतिक सूत्रों' की चर्चा करता है जो किसी भी राजनीतिज्ञ के लिए उपयोगी हो सकते हैं, किंतु जिनका निर्माण उसने इटली के ही विशेष संदर्भ में किया था। मैकियावेली और उसके दर्शन को ठीक ढंग से समझने के लिए इन सभी 'सूत्रों' का अध्ययन आवश्यक है, जिन्हें सुविधा के लिए निम्न शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है—

(१) मानव प्रकृति विषयक विचार।
(२) राजनीति, धर्म एवं नैतिकता विषयक विचार।
(३) राज्य विषयक विचार।
(४) सरकार विषयक विचार।
(५) राज्य का संरक्षण एवं विस्तार।

---

१. मैक्सी : पोलिटीकल फिलॉसफीज; पृ० १२६
२ सेबाइन मैकियावेली को एक कठिन एवं व्यक्ति कहता है " D fficult at most the contradictory figure of Machiavel

(६) मैकियावेली की सामान्य राजनीतिक मान्यताएं :

(क) संप्रभुता विषयक मान्यता।

(ख) राष्ट्रीय राज्य विषयक मान्यता।

(ग) विधि विषयक मान्यता।

मैकियावेली के मानव प्रकृति विषयक विचार :

मैकियावेली दी प्रिंस में मानव प्रकृति की चर्चा करता है। वह मनुष्य को प्रकृतिश बुरा मानता है। उसमे पाशविक वृत्तियों की प्रधानता है जिनके कारण वह अच्छाई की अपेक्षा बुराई की तरफ अधिक आसानी से आकृष्ट हो जाता है; अच्छा कार्य वह विवश होकर ही करता है। उसी के शब्दों में : "मनुष्य कृतघ्न, चंचल, धोखेबाज, कायर तथा लोभी है।' मनुष्य न तो उपकार करना जानता है और न उपकार का प्रतिफल देना। उसके कार्य अनिश्चित होते हैं ; वह कब क्या करेगा, इसका आभास पहले नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वह प्रकृतिश: चंचल है। वह धोखेबाज ही नहीं, आक्रामक भी है। दूसरो पर आक्रमण करने में, उनकी सम्पत्ति छीनने में उसे सुख मिलता है। किंतु इससे तात्पर्य यह नहीं कि वह साहसी है। वह प्रकृति से कायर एवं डरपोक है। उसे शक्ति से आसानी के साथ अपने अधीन किया जा सकता है। मैकियावेली के अनुसार मनुष्य की प्रकृति का आधारभूत लक्षण उसका लोभी होना है। मनुष्य की इच्छाएँ असीमित हैं। जो उसके पास है उसे पूर्णत: सुरक्षित रखकर वह और अधिक प्राप्त करना चाहता है। शक्ति, संपत्ति तथा आधिपत्य की मानवीय इच्छाएँ सीमा नहीं जानतीं। इच्छाओं की यही अपरिमितता एवं असीमितता प्रतिस्पर्धा एवं संघर्षो का कारण बन जाती हैं। समाज मे अपराधों की यही पृष्ठभूमि है। यदि कानून की शक्ति के द्वारा व्यक्ति की इच्छाओं एवं कार्यों को सीमित न किया जाए तो राज्य में अराजकता फैल जाती है।

मैकियावेली का निष्कर्ष है कि मनुष्य को डर दिखाकर ही वश में किया जा सकता है, प्रेम से नही। प्रेम एक ऐसा बंधन है जिसे स्वार्थी मनुष्य आवश्यकता के क्षणो में तोड़ देता है। इसलिए वह सुझाव देता है कि राजा ऐसा हो जिससे व्यक्ति प्रेम करने की अपेक्षा डरें अधिक। मरे ने लिखा है : "वह मनुष्यों की दुर्बलता, मूर्खता एवं दुष्टता का सम्मिश्रण मानता है जो प्रकृतिश: चालाक के हाथ का खिलौना एवं निरंकुशता का शिकार बनने के लिए बना है।" मैकियावेली शासक को सचेत करता है कि वह व्यक्तियों की संपत्ति का अपहरण न करे क्योंकि "मनुष्य अपनी संपत्ति के अपहरण की अपेक्षा अपने पिता की मृत्यु को जल्दी भूल जाते हैं।"

मैकियावेली के मानव प्रकृति विषयक विचारों में एक विशेष महत्त्वपूर्ण तथ्य उसकी यह धारणा है कि मनुष्य की प्रकृति अपरिवर्तनशील है। वह कहता है : "संपत्ति, सम्मान और सुरक्षा हमेशा ही समस्त मनुष्य मात्र के लक्ष्य रहे हैं।"

प्रस्तुत संदर्भ में दो अन्य संबंधित स्पष्टीकरण उल्लेखनीय हैं : प्रथम, मनुष्य का प्रकृतिश: बुरा होना मैकियावेली की एक 'मान्यता' मात्र है। कालातर में वैज्ञानिक वश्लेषण पाकर यही हॉब्स का दशन बन गई है दूसरे उसने

इटली के संदर्भ में ही मानव प्रकृति का ऐसा चित्रण किया है, तात्कालिक फ्रांस तथा स्पेन के समाजों की इटली से तुलना करते हुए एक स्थान पर वह लिखता है, "यदि हम इन देशों में इतनी अव्यवस्था एवं परेशानियाँ नहीं देखते जितनी कि इटली में आए दिन देखने को मिलती हैं तो यह इसलिए नहीं कि उनके लोग अच्छे हैं बल्कि इसलिए कि इनमें प्रत्येक में ऐसा राजा है जो उन्हें संगठित रखे हुए हैं।" वह इटली में ऐसे ही राजा को आवश्यक मानता है जो इस व्याप्त अव्यवस्था को समाप्त करके उसे संगठित रख सके।

आलोचना—मैकियावेली के इन विचारों की कटु आलोचना की गई है। लेखकों का कहना है कि मनुष्य इतना बुरा नहीं है जितना कि मैकियावेली ने चित्रित किया है। बौद्धिक प्राणी होने के नाते उसमें अनेक सद्गुण भी है जिन्हें मैकियावेली ने या तो देखा नहीं या फिर देखकर भी उनकी अनदेखी कर दी है।

मैकियावेली की मानवचरित्र विषयक धारणाएँ अवैज्ञानिक है क्योंकि उसके विचारों में क्रमबद्धता का सर्वथा ही अभाव है।

मैकियावेली की यह एक मान्यता मात्र है, इसे उसने एक सिद्धांत का रूप नहीं दिया है। मनुष्य की इसी प्रकृति का हॉब्स ने वैज्ञानिक विश्लेषण किया और एक सिद्धात के रूप में इसका प्रतिपादन किया।

राजनीति, धर्म एवं नैतिकता विषयक विचार :

यूनानी दार्शनिकों ने राजनीति तथा नैतिकता में विभेद नहीं किया था, वह राज्य को एक नैतिक संस्था मानते थे। इनमें अरस्तू ही एक ऐसा दार्शनिक है जिसके दर्शन में एक स्थल ऐसा है जहाँ उसने नैतिकता से तटस्थ होकर राज्य-नीति की चर्चा की है। यह स्थल है, उसके क्रांति विषयक विचार, जहाँ वह क्रांतियों को रोकने के उपायों की निरपेक्ष रूप से चर्चा करता है। किन्तु, जैसा कि स्पष्ट है, यह अरस्तू के दर्शन की कोई मौलिक अथवा आधारभूत विशेषता नहीं थी; यह मात्र प्रासंगिक थी। जिन परपराओं में अरस्तू पला था उनमें नैतिकता से पूर्णतः विलग होने की कल्पना ही कठिन थी।

मध्ययुगीन राजदर्शन में राजनीति धर्म से पूर्णतः आच्छादित रही; धर्म ने राजनीति में निर्णायक भूमिका निभाई। मैकियावेली से पूर्व मॉरसीलियो (Marcilio of Padua) ही एक मात्र ऐसा दार्शनिक था जिसने इस दिशा में (राजनीति को धर्म से अलग करने की दिशा में) प्रारंभिक कदम उठाया। वह राज्य को चर्च के नियंत्रण से मुक्त कर देने के आग्रह के कारण धर्मनिरपेक्ष राजनीति का प्रणेता तो बन जाता है किंतु दोनों को पूर्णतः पृथक् नहीं करता। इसका श्रेय मैकियावेली को मिला। सेबाइन ने इस सदर्भ में दोनों की तुलना करते हुए लिखा है: "मॉरसीलियो ने ईसाई नैतिकता को पारलौकिक कहकर विवेक की स्वायत्तता का समर्थन किया; मैकियावेली (उन्हें) पारलौकिक कहकर उनका खंडन करता है।"[1]

---

१ सेबाइन ए हिस्ट्री आफ थ्योरी पृ० २९७

मैकियावेली ही वह प्रथम विचारक है, जो राजनीति को धर्म तथा नैतिकता से पूर्णत: पृथक् करता है। उसने कहा है कि ईसाईयत का व्यक्ति के चरित्र पर दासवत् प्रभाव पड़ा है, इसने व्यक्ति को कायर एवं भीरू बना दिया है, जिसके कारण वह बड़ी आसानी से दुष्टता का शिकार बन जाते है। स्वर्ग प्राप्ति की लालसा में फंसे यह धर्म-भीरू व्यक्ति दुष्ट व्यक्तियों की चोटें तो सहते रहते हैं, बदला नहीं लेते। धर्म तो उदात्त विचारों द्वारा आत्मा का परिष्कार करता है; उसे श्रेष्ठ बनाता है, निकृष्ट नहीं। इटली की दुर्दशा के लिए मैकियावेली धर्म को दोषी ठहराता है। उसने लिखा है: "हम इटली के निवासी अपने अधार्मिक और बुरे बन जाने के लिए रोम के चर्च और उसके पादरियों के ऋणी है।"

वह दी प्रिंस मे राजा को धार्मिक एवं नैतिक बंधनों से पूर्णत मुक्त कर देता है। वह मानता है कि राजा का अच्छा होना प्रशंसनीय है। वह यही कहता है कि राजा का व्यवहार में उचित, मानवतावादी, धार्मिक एवं नैतिक प्रतीत होना आवश्यक है किंतु आवश्यकता पड़ने पर वह (विशेषकर जब राज्य की सुरक्षा अथवा राज्य का अस्तित्व ही खतरे में हो) राजा को इनके विपरीत कार्य करने की पूरी-पूरी छूट देता है। उसका निष्कर्ष है: "ईश्वर और सीजर (राजा) दोनों के समर्थन का दिखावा क्यों, जबकि आप जानते है कि ऐसा (करना) संभव नहीं है? नैतिक औचित्य के प्रति इतनी परेशानी क्यों?"

उपर्युक्त से यह तात्पर्य निकालना कि मैकियावेली अनैतिक एवं अधार्मिक है तथा उसकी इन्ही आधारों पर आलोचना करना उसके साथ अन्याय करना है। राजनीति को धर्म तथा नैतिकता से पृथक् करके एक स्वतन्त्र पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित कर देना ही अनैतिकता एवं अधार्मिकता नहीं है। वह यह मानता है कि मनुष्य की पाशविक वृत्तियों पर धर्म तथा नैतिकता नियंत्रण रखती है; कानून का पालन व्यक्ति दंड के डर से करता है; धर्म तथा नैतिक नियमों का पालन वह स्वभावत: करता है। अपने दूसरे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ **डिस्कोर्सेज** में वह लिखता है: "जो राजा और गणराज्य अपने को भ्रष्टाचार से मुक्त रखना चाहते हैं उन्हें सबसे पहले समस्त धार्मिक संस्कारों की विशुद्धता को सुरक्षित रखना चाहिए और उनके प्रति उचित श्रद्धा भाव रखना चाहिए, क्योंकि धर्म की हानि देखने से बढ़कर किसी देश के विनाश का कोई अन्य लक्षण नहीं है।" मैकियावेली को इस बात में तनिक भी सदेह नही था कि जिस देश की जनता नैतिक दृष्टि से पतित हो वहाँ श्रेष्ठ शासन संभव नहीं।

उपर्युक्त विवरण से यह भलीभाँति स्पष्ट है कि मैकियावेली नैतिकता के संबंध मे दुहरे मापदंड को लेकर चलता है—एक राजा के लिए, और दूसरा नागरिकों के लिए। राजा की नैतिकता का संबंध राज्य की सुरक्षा एवं उसकी शक्ति मे है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शासन जो भी कार्य करता है वह सभी नैतिक है। मैकियावेली के लिए धर्म और नैतिकता का (राज्य के संदर्भ में) साधन के रूप मे ही महत्त्व है। उसने लिखा है: 'राज्य किसी नीतिशास्त्र को नहीं जानता जो कुछ भी वह करता है वह न तो नैतिक है और न अनैतिक बल्कि वह नैतिकता से रहित है इस प्रकार राजा का [illegible]

का कोई धर्म नहीं, कोई नैतिकता नहीं, उसका यदि कोई धर्म है भी तो वह राज्य की सुरक्षा एवं समृद्धि ही है। दूसरे शब्दों में, राजा ईसाई धर्म का प्रयोग साधन के रूप में कर सकता है। "राजा को चाहिए कि वह प्रजा को सच्चा ईसाई बनाए लेकिन स्वयं ऐसा न बन जाए कि सच्ची ईसाईयत उसे ही निगल जाए।"

इस प्रकार मैकियावेली के दर्शन में धार्मिक एवं नैतिक मान्यताएँ राज्य के अस्तित्व एवं कल्याण के पूर्णतः अधीनस्थ मान्यताएँ हैं।

आलोचना—मैकियावेली के धर्म एवं नैतिकता विषयक विचारों की कटु आलोचना की गई है; अधार्मिक एवं अनैतिक कहकर उसकी भर्त्सना की गई है। किन्तु ऐसी आलोचनाएँ उनके द्वारा ही की गई हैं जिन्होंने मैकियावेली के दर्शन को युगीन परिस्थितियों से अलग करके देखा है। वास्तविकता तो यह है कि वह न तो अधार्मिक है और न अनैतिक।

उसकी सबसे अधिक आलोचना राजा को नैतिकता एवं धार्मिकता के सामान्य नियमों के उल्लंघन की खुली छूट है। इन आलोचकों का मत है कि नैतिकता और धार्मिकता के नियम शासित तथा शासक पर समान रूप से लागू होते हैं। किन्तु मैकियावेली के समर्थकों का कथन है कि ऐसा न तो संभव है और न व्यावहारिक। फिर मनुष्यों के जिन भ्रष्ट आचरणों एवं पतित प्रकृति के संदर्भ में मैकियावेली राजा को नैतिक, अनैतिक, धार्मिक, अधार्मिक कार्य करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है उन्हें वह अनैतिक मानता है। अत. इसका लक्ष्य व्यक्ति को नैतिक बनाना ही है और चूँकि मैकियावेली के अनुसार शासन के संबंध में किसी कार्यवाही के स्वरूप के बारे में निर्णय लेने की एकमात्र कसौटी उससे निकलने वाला परिणाम है, इसलिए इन कार्यों को अनैतिक एवं अधार्मिक कहना भी उचित प्रतीत नहीं होता, बल्कि 'धर्मनिरपेक्षता' के स्वरूप के प्रतिपादन के लिए उसकी प्रशंसा की जानी चाहिए। मैक्सी ने लिखा है: "जब कोई राजनीतिक विचारक शक्कर की तह चढ़ी (कड़वी) गोलियों की नीति से बिलग होकर हमसे कटु सत्य कहता है तो हम उसे धन्यवाद नहीं देते, अक्सर उसके खिलाफ आवाज उठाते हैं और झूठे भविष्यवक्ता की तरह उस पर पत्थर फेंकते हैं।"[1]

मैकियावेली की प्रशंसा में वह आगे लिखते हैं: "राजनीति और नैतिकता को अलग-अलग करने तथा शासन कला के निर्देशक सिद्धांत के रूप में औचित्य के नियम को प्रस्तावित करने में मैकियावेली ने एक कठोर कदम उठाया है किंतु राजनीति विज्ञान के लिए यह एक अमूल्य सेवा थी; वैज्ञानिक राजनीतिक विचार-विमर्श की दिशा में यथार्थवाद पहला कदम है।"[2]

राज्य विषयक विचार :

मैकियावेली राजनीतिक दर्शनशास्त्री नहीं था; उसने राजनीतिक दर्शन का क्रमबद्ध विवेचन नहीं किया है। राज्य का स्वरूप, राज्य की उत्पत्ति, राज्य की प्रकृति

१ **मैक्सी** पृ० १३२
२ **वही** पृ० १३६

जैसे सैद्धान्तिक विश्लेषण उसकी परिधि के बाहर थे। उसके ग्रंथों में जहाँ-कहीं भी हम इन विषयों की चर्चा पाते हैं, वह मात्र प्रासंगिक है; यह चर्चा संबंधित विषयों अथवा निष्कर्षों की पुष्टि के लिए ही की गई है।

राज्य की उत्पत्ति—मैकियावेली के अनुसार राज्य प्राकृतिक संस्था नहीं है, जैसा कि अरस्तू का निष्कर्ष था। यह एक मानवीय संस्था है। किंतु इसका निर्माण किसी पूर्व योजना के अनुसार नहीं हुआ है। राज्य की उत्पत्ति मात्र एक 'संयोग' है। इतिहास के संदर्भ में इस संयोग को वह इस प्रकार स्पष्ट करता है—

राज्य के निर्माण के पूर्व मनुष्य जानवरों की तरह रह रहे थे। उनका जीवन 'जंगली' एवं 'बिखराव' का जीवन था। जंगली जानवरों की तरह मनुष्य अपना जीवन यापन कर रहा था। सामाजिकता और संगठन का आविर्भाव नहीं हुआ था। यह स्थिति उस समय तक चलती रही जब तक कि जनसंख्या में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो गई और परिणामस्वरूप सुरक्षा के लिए बचाव-व्यवस्था आवश्यक बन गई। सामाजिक संबंधों की स्थापना के तुरंत बाद यह स्पष्ट हो गया कि समुचित व्यवस्था का दायित्व किसी एक अधिकारी को सौंप दिया जाए। व्यवस्था में गड़बड़ी जितनी कम होगी सुरक्षा की मात्रा उतनी ही अधिक। आंतरिक अव्यवस्था को रोकने के लिए कानूनों को जन्म दिया गया। समय के साथ-ही-साथ अव्यवस्था के प्रति जागरूकता बढ़ती गई; सही और गलत की धारणाओं का प्रादुर्भाव हुआ। समुदाय के हित में काम करने को 'अच्छा' कहा गया और विरोध में काम करने को 'गलत'। सही-गलत की इन्हीं मान्यताओं ने न्याय की धारणा को जन्म दिया। समुदाय का हित व्यक्ति के हित से अधिक महत्त्वपूर्ण है और विरोध की स्थिति में, समुदाय के हित में व्यक्ति के हित का बलिदान दे देने में मैकियावेली को कोई आपत्ति नहीं। डायले ने लिखा है : "ऐसी स्थिति में मैकियावेली इस संभावना को स्वीकार करने के लिए बाध्य था और वास्तव में इसे स्वीकार भी किया कि ऐसा होना आवश्यक है।"[1] मैकियावेली के राज्य विषयक इन विचारों से कुछ स्पष्ट निष्कर्ष इस प्रकार निकलते हैं—

(क) भौतिक समृद्धि ही व्यक्तियों के राजनीतिक जीवन का प्रमुख आधार है।

(ख) राज्य ईश्वर-कृत संस्था न होकर मनुष्य-कृत संस्था है। मैकियावेली का यह कथन मध्ययुग की इस मान्यता का स्पष्ट रूप से खंडन करता है कि राज्य एक ईश्वर-कृत संस्था है और यूनानी युग की इस मान्यता का भी कि राज्य एक स्वाभाविक संस्था है।

(ग) राज्य की उत्पत्ति का प्राथमिक कारण मनुष्य का 'बुरा' होना है; राज्य मनुष्य की पाशविक वृत्तियों को नियंत्रित रखता है।

(घ) राज्य मनुष्य एवं मनुष्य-कृत सभी संस्थाओं से श्रेष्ठ है। राज्य-हित व्यक्ति-हित से श्रेष्ठ है; व्यक्ति-हित का राज्य-हित में बलिदान किया जा सकता है। राज्य 'सामान्य हित' का संरक्षक है। राज्य एक सर्वोच्च एवं सर्वश्रेष्ठ संस्था होने के कारण किसी अन्य के प्रति न तो उत्तरदायी है और न किसी अन्य की आज्ञाओं का पालन करने के लिए बाध्य।

---

१. फिलिप डायले : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थॉट पृ० १३१-१३२

सरकार विषयक विचार :

मैकियावेली ने 'सरकार' की विस्तार से चर्चा की है। वह इसका वर्गीकरण भी करता है। अपने वर्गीकरण में वह अरस्तु द्वारा निर्धारित परिपाटी का ही अनुसरण करता है। उसके अनुसार सरकारों के प्रमुख तीन प्रकार हैं : राजतंत्र, सामंततंत्र तथा संवैधानिक प्रजातंत्र। अरस्तू के समान ही वह इन सरकारों के तीन भ्रष्ट प्रकार भी बतलाता है। यह हैं : निरंकुशतंत्र, कुलीनतंत्र तथा लोकतंत्र। इस प्रकार मैकियावेली सरकारों के कुल ६ प्रकार बतलाता है—

(१) राजतंत्र (Monarchy)
(२) सामंततंत्र (Aristocracy)
(३) संवैधानिक प्रजातंत्र (Constitutional Democracy)
(४) निरंकुशतंत्र (Tyranny)
(५) कुलीनतंत्र (Oligarchy)
(६) प्रजातंत्र (Democracy)

राज्यों के वर्गीकरण में जहाँ मैकियावेली अरस्तू का अनुसरण करता है वहाँ श्रेष्ठ एवं स्थायी सरकार के संबंध में पॉलिबियस एवं सिसरो का। इन (पॉलिबियस एवं सिसरो) रोमन दार्शनिकों के समान मैकियावेली भी मिश्रित सरकार को श्रेष्ठ तथा स्थायी सरकार बतलाता है। किंतु इस विचार-श्रृंखला को आगे नहीं बढ़ाया गया है। स्पष्ट है, मैकिया-वेली इस संदर्भ में किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचना चाहता था। फिर भी राज-तंत्रात्मक एवं गणतंत्रात्मक सरकारों पर उसने गंभीरतापूर्वक विचार किया है और इन सरकारों के लक्षणों एवं सापेक्ष लाभों की वह विस्तार से चर्चा करता है।

राजतंत्र—**प्रिंस** में वह 'राजतंत्र' की चर्चा करता है और **डिस्कोर्सेज** में 'गणतंत्र' की। दोनों प्रकार की सरकारों का उसने खुलकर समर्थन किया है और दोनों को ही न केवल श्रेष्ठ बल्कि 'एकमात्र' शासन-व्यवस्था (the only Form of Government) माना है। मैकियावेली के अनुसार तात्कालिक परिस्थितियाँ ही इस श्रेष्ठता का निर्णायक होती हैं। डनिंग ने लिखा है : "वह (मैकियावेली) इसे पूर्णतः स्वीकार करता है कि विभिन्न समयों एवं विभिन्न स्थानों में परिस्थितियाँ विभिन्न शासन-व्यवस्थाओं को आवश्यक बना देती हैं।"[1] राष्ट्र के जीवन में कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनमें मनुष्य की भ्रष्ट प्रकृति एवं पतित व्यवहार स्वच्छंद बन जाते हैं। कानून एवं व्यवस्था लगभग समाप्त हो जाती है और राज्य तथा समाज में लगभग अराजकता की स्थिति पैदा हो जाती है। उनका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। मैकियावेली के अनुसार इन परिस्थितियों में राजतंत्र ही एकमात्र उपयुक्त शासन-व्यवस्था है। **डिस्कोर्सेज** में वह लिखता है : "किसी भी प्रकार की व्यवस्था को लागू करने का एकमात्र तरीका राजतंत्र शासन की स्थापना है।"

शक्ति के साथ अवांछनीय तत्वों का दमन करके कानून एवं व्यवस्था की स्थापना

---

१. डनिंग : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरीज Vo I पृ० ३०६

में अन्य किसी शासन की राजतन्त्र से कोई समानता नहीं की जा सकती। मनुष्य की इच्छाओं एवं उनके कार्यों को प्रतिबंधित रखकर उन्हें संगठित रखने के लिए राजतंत्र की उपयुक्तता संदेह से परे है। उसके अनुसार फ्रांस तथा स्पेन में इटली जैसी स्थिति "इसलिए नहीं है कि उनके नागरिक अच्छे हैं बल्कि इसलिए कि उनमें प्रत्येक के यहाँ एक ऐसा राजा है जो उन्हें संगठित रखता है।"

यही नहीं, राज्य के निर्माण की प्रारंभिक स्थिति में भी वह राजतंत्रात्मक शासन को उपयुक्त बतलाता है। सेबाइन ने लिखा है : "एक सफल राज्य की स्थापना एक व्यक्ति द्वारा होना आवश्यक है और उसके द्वारा निर्मित कानून तथा सरकार जनता के राष्ट्रीय चरित्र का निर्धारण करती है।"[1] विधि (कानून) नैतिक एवं नागरिक सद्गुणों का उद्गम है। इसी संदर्भ में वह आगे लिखता है कि राजतंत्र की स्थापना अपेक्षाकृत अधिक आसानी से हो जाती है और दूसरे राजतंत्र राजनीतिक विकास का प्रथम स्तर है इसलिए नए राज्य के लिए सर्वथा ही उपयुक्त है। **डिस्कोर्सेज** में वह लिखता है : "सामान्य रूप से हमें इस धारणा को लेकर चलना चाहिए कि ऐसा प्रायः नहीं होता और यदि होता भी है तो बहुत ही कम कि गणराज्य अथवा राजतंत्र अच्छे ढंग से गठित हो जाए या उसकी संस्थाओं में पूर्ण सुधार हो जाए, यदि उसे एक ही व्यक्ति ने नहीं किया है तो। यह और भी आवश्यक है कि जिस व्यक्ति के मस्तिष्क की यह उपज है वही इसे कार्यान्वित करे।"

मैकियावेली ने राजा में जिन लक्षणों अथवा गुणों की कल्पना की है उन्हीं के कारण उसकी कटु आलोचना की गई है।

मैकियावेली को एक योग्य राजा की सामर्थ्य में अटूट आस्था थी। वह कुछ भी कर सकने में समर्थ है : पुराने राज्यों के स्थान पर नए राज्यों का निर्माण कर सकता है; सरकार के स्वरूप में परिवर्तन कर सकता है; अपनी जनता में नए सद्गुणों को निर्मित कर सकता है। "वह न केवल राज्य का बल्कि सभी नैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक संस्थाओं सहित समाज का भी निर्माता है।"

गणतंत्र—मैकियावेली ने निरंकुश राजतंत्र का समर्थन, अपेक्षाकृत दो विशिष्ट अवसरों के लिए किया है—

(*i*) नए राज्य का निर्माण अथवा स्थापना तथा

(ii) भ्रष्ट राज्य का सुधार।

राज्य के निर्माण अथवा स्थापना के समय राजा में उन सभी शक्तियों का निहित होना जरूरी है जो सुरक्षा में लिए आवश्यक विधियों के निर्माण एवं व्यवस्था के निर्धारण के लिए जरूरी हैं। एक बार जैसे ही इन विधियों की स्थापना हो जाती है, मैकियावेली शासन में जनता की भागीदारी की—गणतंत्रीय धारणा—सामान्य धारणा पर आ जाता है, क्योंकि उसकी मान्यता है कि शासन में जनता की भागीदारी राज्य और शासन को स्थायित्व प्रदान कर सकती है। मैक्सी ने लिखा है : "किसी भी देश में गणतंत्र तब तक संभव नहीं जब तक कि परिस्थितियाँ निश्चित न हो गई हों, जनता संगठित एवं सुरक्षित

---

१. **सेबाइन : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी** पृ० २१६

न हो गई हो और शिक्षा तथा अनुभव द्वारा सामंजस्य स्थापित करने की आदतें निश्चित न बन गई हों।"[१]

मैकियावेली की इसीलिए मान्यता है कि गणतंत्र की स्थापना राजतंत्र की स्थापना के उपरांत होनी चाहिए। राज्य में स्थायित्व एवं समृद्धि गणतंत्र की स्थापना की आवश्यक पृष्ठभूमि है। उसका कथन है कि ऐसी परिस्थितियों में गणतंत्रीय सरकार न केवल एक श्रेष्ठ सरकार है बल्कि वही 'एकमात्र' सरकार है। यही नहीं, वह गणतंत्र में उन विशिष्टताओं का उल्लेख करता है जो राजतंत्र में देखने को नहीं मिलती। यथा—अन्य किसी भी शासन की तुलना में गणतंत्र में आर्थिक समृद्धि अधिक व्यापक एवं लगभग समान होती है; गणतंत्र उपलब्धि के अवसरों में समानता ला देता है; यह राजतंत्र की तुलना में अधिक विश्वसनीय सरकार है; गणतंत्र में अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना लेने अथवा ढाल लेने की अधिक क्षमता होती है; अधिकारियों के चयन जैसे मामलों में जनता का निर्णय अधिक सही होता है; स्वतंत्रता गणतंत्र का प्रमुख लक्षण है, राजतंत्र का नहीं; राजतंत्र की तुलना में गणतंत्र सरकार अधिक स्थायी होती है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि मैकियावेली ने राजतंत्र का समर्थन किया है और गणतंत्र का भी। दोनों को वह अच्छी सरकारें मानता है, किंतु भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में। राजतंत्र राज्य की स्थापना की सरकार है और गणतंत्र उसके स्थायित्व एवं समृद्धि की।

सामंततंत्र (Aristocracy)—मैकियावेली इस शासनतंत्र (सामंततंत्र) का घोर विरोधी है। उसकी मान्यता है कि राज्य को सबसे अधिक खतरा समाज के इसी अपेक्षाकृत छोटे किंतु संपन्न एवं शक्तिशाली वर्ग से है। उसका कथन है कि इस वर्ग की शासन-सत्ता में विशेष दिलचस्पी होती है। जबकि आम जनता शांति एवं व्यवस्था से ही संबंधित है। विशेषकर जमींदार स्वतंत्र सरकार को बिल्कुल ही निष्क्रिय बना देते हैं। उनके हित राजतंत्र तथा मध्यवर्ग के हितों से सर्वदा ही विरोधी होते हैं। ये दूसरों के परिश्रम पर न केवल सुख भोगते हैं बल्कि उनका शोषण भी करते हैं। न तो समाज को इनकी उपयोगिता है और न राज्य को। किसी भी व्यवस्थित सरकार का प्रथम कर्त्तव्य इस वर्ग का दमन करना अथवा इस वर्ग को समाप्त कर देना है। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा है : "ये सर्वत्र ही नागरिक सरकार के शत्रु हैं।"

अभिजात्य वर्ग के प्रति मैकियावेली की घृणा का कारण तात्कालिक इटली की व्यवस्था में खोजा जा सकता है। इटली के पतन में इस वर्ग की विशेष महत्त्वपूर्ण भूमिका रही थी।

राज्य का संरक्षण एवं विस्तार :

मैकियावेली विश्व की गतिशीलता में आस्थावान् है। इस विश्व में कुछ भी स्थायी नहीं है। प्रत्येक वस्तु गतिशील है। राजनीतिक संस्थाएँ भी स्थायी नहीं हैं। वह परिवर्तन के नियमों से बँधी हैं। परिवर्तन वृत्ताकार है। तात्पर्य यह कि एक शासन-व्यवस्था

१. मैक्सी : पोलिटीकल फिलॉसफीज : पृ० १३६

पतित होकर दूसरी शासन व्यवस्था में दूसरी तीसरी में और तीसरी चौथी में परिवर्तित होकर पुन प्रथम अवस्था को प्राप्त कर लेती है। यथा—राजतंत्र (प्रारंभिक शासन-व्यवस्था राजतंत्रात्मक ही थी) पथभ्रष्ट होकर तानाशाही शासन में परिवर्तित हो जाता है; तानाशाही सामंततंत्र में परिवर्तित हो जाती है; सामंततंत्र कुलीनतंत्र में परिवर्तित हो जाता है और कुलीनतंत्र जन-शासन-व्यवस्था का रूप धारण कर लेता है। प्रारंभ में तो यह व्यवस्था (जन-शासन) श्रेष्ठ होती है किंतु कालांतर में चलकर यह भी भ्रष्ट हो जाती है और अंततः यह भ्रष्ट जन-शासन राजतंत्र में परिवर्तित हो जाता है। परिवर्तन के इस क्रम में शासन कभी 'अच्छे' और कभी 'खराब' बनते रहते हैं। चूँकि परिवर्तन का यह नियम सभी राज्यों में समान रूप से प्रभावी नहीं होता इसलिए किसी एक समय में हम वास्तविक शासनों में अंतर पाते हैं।

परंतु मनुष्यों में 'स्वतंत्र इच्छा' एक ऐसी शक्ति है जो गिरावट की शक्तियों का सामना कर सकती है और इस प्रकार गिरावट तथा विकास की शक्तियों के बीच संतुलन स्थापित हो जाता है। किंतु मैकियावेली का निष्कर्ष है कि यह संतुलन कुछ समय तक ही प्रभावी रहता है। गिरावट स्वाभाविक है; यह (गिरावट) प्रत्येक राज्य की नियति है। इसी संदर्भ में मैकियावेली राज्यों के संरक्षण की चर्चा करता है। उसने राजतंत्र के संरक्षण तथा गणतंत्र के संरक्षण की अलग-अलग चर्चा की है, तथापि कुछ तरीके ऐसे भी हैं जो समान रूप से दोनों पर लागू होते हैं।

वह राजतंत्र सरकार के संरक्षण के लिए राजा को किन्हीं **विशिष्ट नियमों** के परिपालन का परामर्श देता है। यथा—

प्रथम नियम है—प्रचलित परंपराओं, लोकमर्यादाओं तथा संस्थाओं का समुचित सम्मान। इन परंपराओं तथा संस्थाओं की जड़ें जन-जीवन में गहरी होती हैं। इनके समुचित सम्मान से जन-मान्यताएँ राजा का विरोध नहीं कर पातीं।

दूसरा नियम है—जन-संपत्ति का ध्यान रखना। जनता का संपत्ति से रागात्मक संबंध होता है। किसी अपराधी को संपत्तिविहीन कर देने से मृत्यु-दंड दे देना अधिक अच्छा है।

तीसरा नियम है—नागरिकों को समुचित स्वतंत्रता प्रदान करना। स्वतंत्र व्यक्तियों की शासन में उपयोगिता स्वयं सिद्ध है।

चौथा नियम है—व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक व्यय में मितव्ययिता का परिचय देना। राजा को चाहिए कि वह व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक कार्यों पर उतना ही खर्च करे जितना आवश्यक है। फिजूल-खर्ची (कभी-कभी) जनता के रोष का कारण बन जाती है। यदि यह जरूरी ही है तो इसके लिए दूसरे देशों पर किए आक्रमणों के परिणामस्वरूप लूटी संपत्ति पर निर्भर रहना चाहिए।

पाँचवाँ नियम है—सार्वजनिक कार्यों में कठोरता का प्रदर्शन। सार्वजनिक कार्यों में राजा को कठोर एवं सख्त होने का परिचय देना चाहिए। कठोरता नियमों की पाबंदी एवं अनुशासन के लिए आवश्यक है।

छठा नियम है—कार्यों का समुचित संपादन। राजा को चाहिए कि वह राज्य के अप्रिय एवं द्वेषकारी कार्यों का संपादन अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से कराए तथा सम्मान के कार्यों में व्यक्तिगत रूप से हाथ बँटाए। इससे जहाँ एक तरफ वह जनता की अप्रसन्नता का पात्र नहीं बनेगा, वहाँ दूसरी तरफ वह जनता की प्रसन्नता सहज ही प्राप्त कर लेगा।

सातवाँ नियम है—अवसरों से अधिकाधिक फायदा लेना। राजा को हर उस मौके से लाभ उठाना चाहिए जिससे उसे न केवल प्रतिष्ठा प्राप्त हो बल्कि उससे सम्मान में भी वृद्धि हो।

आठवाँ नियम है—अवसरवादी क्षमता का होना। राजा का सभी दृष्टियों से सक्षम होना आवश्यक है। उसके बाह्य आचरण से दया, करुणा, प्रेम, सहानुभूति आदि मानवीय गुण प्रकट हों, किंतु आवश्यकता पड़ने पर वह इन गुणों से सर्वथा ही प्रतिकूल आचरण करने में समर्थ हो। अपने परामर्शदाताओं पर वह तभी विश्वास करे जब ऐसे विश्वास से किसी भी हानि की संभावना न हो। उसे यह याद रखना चाहिए कि जो दूसरों को धोखा देता है उसे धोखा देने वालों की कमी नहीं होती।

नवाँ नियम है—कला एवं संस्कृति का पोषक होना। राजा के लिए आवश्यक है कि वह लोगों को महत्त्वपूर्ण कार्यों में संलग्न रखे। लोगों को उसके सभी कार्यों में ऐश्वर्य एवं श्रेष्ठता की झलक तथा कलात्मक अभिरुचि दिखाई दे।

दसवाँ नियम है—जनता की घृणा एवं तिरस्कार का पात्र बनने से बचना। मैकियावेली का परामर्श है कि राजा के कार्य एवं कार्य-विधि ऐसी हो जिससे कि वह जनता का प्रेम प्राप्त कर सके तथा जनता उससे भयभीत भी रहे और यदि दोनों संभव न हों तो (जनता का) राजा से डरना प्रेम करने से ज्यादा अच्छा है। **प्रिंस** में वह लिखता है : "डर की भावना इस ढंग से जागृत की जाए कि यदि वह प्रेम प्राप्त नहीं करता तो घृणा का पात्र भी नहीं बनता और यह तभी तक संभव है जब तक कि वह अपने नागरिकों की संपत्ति एवं उनकी स्त्रियों को हाथ नहीं लगाता।"

ग्यारहवाँ नियम है—युद्धकला में निपुणता। राजा की राज्य के वफादार नागरिकों से गठित एक शक्तिशाली, अनुशासित एवं सुसज्जित सेना का होना राज्य की प्रथम आवश्यकता है। वह १७ और ४० वर्ष की आयु के बीच के सभी स्वस्थ नागरिकों को सैनिक शिक्षा दिए जाने का भी परामर्श देता है। ऐसी सेना की सहायता से राजा न केवल अपनी शक्ति को बनाए रख सकता है बल्कि राज्य की सीमाओं में विस्तार भी कर सकता है और जिसके बिना वह देश के भीतर नागरिक विद्रोह और देश के बाहर पड़ोसी राज्यों की महत्त्वाकांक्षा का शिकार बन जाएगा। खरीदे गए सैनिकों का मैकियावेली ने कड़ा विरोध किया है। उसका कथन है कि ऐसे सैनिक शत्रु की अपेक्षा स्वयं राजा के लिए घातक बन जाते हैं।

बारहवाँ नियम है—परिणाम ही साधनों की उपयुक्तता का एकमात्र मापदंड है। राजा को साधनों की उपयुक्तता अथवा उनके औचित्य पर विचार करने की तनिक भी जरूरत नहीं है। उसका एकमात्र लक्ष्य है राज्य को संरक्षण प्रदान करना। वह लिखता है : "राजा को राज्य के संरक्षण की ही चिंता करनी चाहिए साधन तो हमेशा ही

सम्मानजनक समझे जाएंगे और उन्हें सार्वजनिक समर्थन प्राप्त होगा।''

गणतन्त्र व्यवस्था के संरक्षण के लिए भी मैकियावेली उपर्युक्त नियमों को कम अथवा अधिक रूप में स्वीकार करता है। वह डिस्कोर्सेज में लिखता है: "मुझे विश्वास है कि राज्य के जीवन को जब खतरा हो तो राज्य के संरक्षण के लिए राजतंत्र तथा गणतन्त्र दोनों ही सामान्य निष्ठा एवं विश्वास को समाप्त कर कृतघ्नता का रास्ता अपना लेंगे।' इस सामान्य परामर्श के अतिरिक्त गणतंत्रों के संरक्षण के लिए वह कुछ विशिष्ट परामर्श भी प्रदान करता है। यथा—राज्य की मौजूदा परिस्थितियों के अनुसार संविधान तथा कानूनों में परिवर्तन प्रथम आवश्यकता है। परंतु वह यह भी कहता है कि संविधान में यह परिवर्तन मान्य परंपराओं से अधिक भिन्न नहीं होंगे, चाहे ऊपरी तौर पर यह परिवर्तन कितने ही बड़े क्यों न दिखें, इसलिए कि "सामान्य जनता वास्तविकताओं में जाने का प्रयास नहीं करती।"

दूसरा महत्वपूर्ण परामर्श यह है कि गणतंत्र में भी, विशेषकर संकट काल में, ऐसी व्यवस्था हो जिसके अंतर्गत शासन का कोई एक अधिकारी सर्वोच्च सत्ता का प्रयोग कर सके। गणतंत्र में इस तानाशाही (सरकार के) लक्षण की आवश्यकता को मैकियावेली ने रोम के गणतंत्रीय विधान से प्राप्त किया था। उसकी मान्यता है कि गणतंत्रीय व्यवस्था में सामान्यतः निर्णय धीमी गति से लिए जाते हैं। आपात्काल में ऐसे निर्णय गणतंत्र के अस्तित्व के लिए ही घातक बन जाते हैं।

राज्य का विस्तार—जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है, मैकियावेली की मान्यता है कि गतिशीलता का नियम राज्यों पर भी लागू होता है। वह (राज्य) या तो विस्तार करते हैं या फिर नष्ट हो जाते हैं। वह राज्य के विस्तार की चर्चा इसी संदर्भ में करता है। प्रिंस में राजतंत्र के विस्तार की और डिस्कोर्सेज में गणतंत्र के विस्तार की वह चर्चा करता है। फ्रांस तथा स्पेन के तात्कालिक राज्यों का उद्धरण देकर वह डिस्कोर्सेज में लिखता है: "कोई भी राज्य तब तक संगठित अथवा सुखी नहीं हो सकता जब तक कि वह किसी एक कामनवेल्थ अथवा एक राजा के पूर्णतः अधीन नहीं हो जाता, जैसाकि फ्रांस तथा स्पेन में हुआ है।"

मैकियावेली विस्तार के साथ उन तरीकों की चर्चा करता है जिनके प्रयोग द्वारा राजा अपने राज्य का विस्तार करता है। वह लिखता है: उस पड़ोसी राज्य को जीतना विशेष कठिन नहीं जिसकी जनता उसी जाति की हो जिस जाति की जीतने वाले राज्य की जनता है। भाषा की समानता इस कार्य को और भी आसान बना देती है। ऐसी स्थिति में विजेता राजा का एक मात्र कार्य भूतपूर्व राजा की सीमा-रेखा को समाप्त कर देना है; संस्थाओं में परिवर्तन जरूरी नहीं। किंतु जिन राज्यों की जनता भिन्न जाति तथा भिन्न भाषा-भाषी है, वहाँ विलीनीकरण अपेक्षाकृत समस्या-मूलक होता है। ऐसे अवसरों के लिए मैकियावेली का परामर्श है कि विजेता राजा छीने गए राज्य की संस्थाओं को समाप्त कर दे।

गणतंत्र राज्यों में विस्तार के विषय में उसने जो परामर्श दिए हैं वह उसके रोम के गणराज्य के अध्ययन पर आधारित हैं। इन्हें वह इस प्रकार व्यवस्थित करता है:

राज्य की जनसंख्या में वृद्धि : प्रजा की संख्या में वृद्धि से मित्र राज्यों की संख्या में वृद्धि महत्वपूर्ण होती है; जीते हुए क्षेत्रों में उपनिवेशों की स्थापना तथा युद्ध में प्राप्त धन-संपत्ति का राज्य के खजाने में जमा कर देना वह आवश्यक बतलाता है। वह छापामार युद्ध अथवा युद्ध के प्रचार से खुले युद्ध के अधिक पक्ष में है। राज्य की समृद्धि राजा का प्राथमिक लक्ष्य होना चाहिए, किन्तु इसमें तात्पर्य यह नहीं कि नागरिक भी सम्पन्न हों; नागरिकों का विपन्न होना राज्य के अधिक हित में रहता है। वह एक सुगठित एवं अनुशासित सेना की आवश्यकता पर विशेष बल देता है। उसकी मान्यता है कि राजा के पास सेना का होना ही पर्याप्त नहीं है, उसके प्रयोग में भी उसे दक्ष होना जरूरी है। धन-संपत्ति से वह एक अच्छी सेना को महत्त्व देता है। उसने लिखा है: 'संपत्ति अच्छे सैनिकों को हमेशा ही प्राप्त नहीं कर पाती जबकि अच्छे सैनिक हमेशा ही संपत्ति प्राप्त कर लेते है।''

मैकियावेली की सामान्य राजनीतिक मान्यताएँ :

मैकियावेली के विचारों में बाद के राजनीतिक विचारकों को ऐसे महत्त्वपूर्ण 'सूत्र' प्राप्त हुए है जिन्हें उन्होंने विभिन्न सिद्धांतों के रूप में प्रतिपादित किया है। इनमें से कुछ तो आधुनिक राजनीतिक दर्शन के आधारभूत सिद्धांत हैं। यह सही है कि मैकियावेली ने इनकी विस्तार से व्याख्या नहीं की है, किन्तु इससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि वह राजनीतिक दर्शन के इन आधारभूत तथ्यों से परिचित था। यह राजनीतिक मान्यताएँ निम्नलिखित हैं—

संप्रभुता विषयक मान्यता—संप्रभुता का सिद्धांत राजनीतिक दर्शन का सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। संप्रभुता से तात्पर्य राज्य के उस लक्षण से है जो सर्वोच्च है, मौलिक है, अविभाज्य है, अहस्तांतरणीय है तथा जो कानून से ऊपर है। मैकियावेली ही वह प्रथम राजनीतिक विचारक है जिसने राज्य के इस स्वरूप—सर्वोच्चता—को पहचाना। सेबाइन ने लिखा है: ''आधुनिक राजनीतिक अर्थों में 'राज्य' से लगाए जाने वाले तात्पर्य का निर्माण मैकियावेली ने किया था। यहाँ तक कि सर्वोच्च राजनीतिक संस्था के नाम के रूप में यह शब्द आधुनिक भाषाओं में उसी की रचनाओं द्वारा प्रचलित हुआ प्रतीत होता है।''[1] मैकियावेली राज्य को सर्वोच्च मानता है। राज्य के हित नागरिकों एवं अन्य संस्थाओं के हितों से श्रेष्ठ हैं। वह राजा को सभी महत्त्वपूर्ण गतिविधियों पर नियंत्रण रखने का अधिकार प्रदान करता है। यही नहीं, वह राज्य-सत्ता को कानून से सीमित नहीं मानता।

यह सही है कि मैकियावेली ने 'संप्रभुता' शब्द का प्रयोग नहीं किया है; उसने संप्रभुता का एक सिद्धांत के रूप में प्रतिपादन नहीं किया। यह कार्य बोडिन, ग्रोशस, आस्टिन आदि बाद के विचारकों ने किया। मैकियावेली के विवरण में हम सर्वोच्चता के सभी लक्षणों को नहीं पाते। इस संदर्भ में हमें यह याद रखना चाहिए कि संप्रभुता के जिस सिद्धांत से हम आज परिचित हैं उसे अपने इस स्वरूप को प्राप्त करने में शताब्दियाँ

---

१. सेबाइन : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी पृ० ३०१

लग गइ। उसे तो केवल इस बात का श्रेय जाता है कि उसने राज्य के इस महत्त्वपूर्ण लक्षण को पहचाना था।

राष्ट्रीय राज्य विषयक विचार—मैकियावेली को राष्ट्रीय राज्य का प्रवर्तक भी माना गया है। प्रिंस तथा डिस्कोर्सेज में उसने जो कुछ भी लिखा है उसका एकमात्र लक्ष्य इटली को एक शक्तिशाली एवं संगठित राष्ट्र के रूप में निर्मित होते देखना था। उसका अपने देश इटली के प्रति लगाव तथा इटली की उसकी जानकारी संदेह से परे थी। वह उन सभी शक्तियों के प्रति पर्याप्त सजग एवं सचेष्ट था जो किसी जन-समूह को एक राष्ट्र के रूप में संगठित रखती है। डायले ने लिखा है: "इन शक्तियों का उसका (मैकियावेली का) वर्णन वस्तुतः राष्ट्रीयता की शक्तियों का ही वर्णन है।"[1] मैकियावेली का विश्वास था कि समान परम्पराएँ एवं रीति-रिवाज, समान भाषा, समान विधि-व्यवस्था तथा अपने (जन-समूह) को दूसरे (जन-समूह) से पृथक् समझने की आंतरिक भावना ही वह महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ हैं जो मनुष्यों को अपने आपसी बड़े-बड़े विवादों को भुलाकर विदेशी खतरे की स्थिति में एकता के सूत्र में बाँध देती हैं। यही राष्ट्रवाद है और उसकी यही मान्यताएँ उसे 'आधुनिक राष्ट्रीयतावाद का जनक' बना देती हैं।

किंतु यह भी सही है कि मैकियावेली ने 'राष्ट्रीयता' शब्द का प्रयोग आधुनिक अर्थ में नहीं किया है।[2] सेबाइन का यह कथन इसी संदर्भ में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है कि "उसने कभी भी राष्ट्रीय आधार पर निर्मित शासन की धारणा की कल्पना नहीं की... उसकी धारणा राष्ट्रव्यापी नागरिकता की स्थापना की ऊँचाई तक नहीं उठ पाई।"[3]

विधि विषयक मान्यता—मैकियावेली की विधि विषयक धारणा उसके बृहत्तर लक्ष्य से सीधे रूप में संबद्ध है। यह बृहत्तर लक्ष्य है, राष्ट्र का शक्तिशाली एवं समृद्धशाली होना या दूसरे शब्दों में, श्रेष्ठता, शक्ति एवं ख्याति प्राप्त करना ही शासन का लक्ष्य है और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निर्मित कानूनों के अनुसार जीवन यापन करना राज्य के नागरिकों का लक्ष्य है। मैकियावेली के लिए चूँकि यह लक्ष्य लौकिक है, इसी भौतिक जगत से संबद्ध है, इसलिए वह चर्च के उन नियमों को मान्यता नहीं देता जो व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति कराने का आश्वासन देते हैं तथा जिन पर मध्ययुग की चर्च विषयक मान्यताएँ आधारित थीं। स्पष्ट है, मैकियावेली की कानून विषयक धारणा में 'ईश्वरीय कानून' को कोई स्थान नहीं है और न वह 'प्राकृतिक कानून' को मान्यता देता है। 'प्राकृतिक कानून का सिद्धांत' (Doctrine of Natural Law) की मान्यता है कि उचित व्यवहार के कुछ शाश्वत नियम हैं जिनका प्रत्येक अच्छे व्यक्ति को पालन करना चाहिए। मैकियावेली ऐसे किन्हीं कानूनों में आस्थावान् नहीं। उसके लिए वही कानून अच्छे हैं जो उपर्युक्त लक्ष्य की प्राप्ति कराने में समर्थ हों।

---

१. डायले : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थॉट; पृ० १३४
२. वही; पृ० १३४
३. सेबाइन : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी पृ० ३०० ३०१

मैकियावेली मानवीय कानून का समर्थक है। राजा ही कानून तथा सरकार का निर्माण करता है। यही कानून नागरिकों में राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करते हैं; नैतिक तथा नागरिक सद्‌गुणों का स्रोत कानून ही है। ऐसे कानून के निर्माता तथा जनता से उसका पालन कराने वाले एकमात्र विधायक को ही राज्य का शासक होना चाहिए। शासक का विवेक ही कानून है। कानून (चर्च सहित) सभी नागरिकों एवं संस्थाओं पर समान रूप से लागू होता है किंतु राजा स्वयं कानून के ऊपर है; कानून राजा पर लागू नहीं होता।

किंतु जहाँ तक कानूनों में परंपराओं एवं जन-रीतियों का प्रश्न है, मैकियावेली दुहरी मान्यताओं को लेकर चलता है। प्रिंस में वह एक निरंकुश राजा का पक्षपाती है। अतः कानूनों में जन-रीतियों एवं परंपराओं को विशेष महत्त्व नहीं देता। किंतु डिस्कोर्सेज में वह राजा को परामर्श देता है कि उसे जन-परंपराओं, रीतियों आदि को समुचित सम्मान देना चाहिए और उन्हें बनाए रखने का यथा-संभव प्रयास करना चाहिए।

प्रमुख स्पष्टीकरण—अपनी यथार्थवादिता एवं व्यावहारिकता के लिए मैकिया-वेली को काफी बदनाम किया गया है। आधुनिक राजनीतिक दर्शनशास्त्रियों में मैकियावेली से अधिक शायद ही किसी अन्य की इतनी कटु आलोचना की गई हो। उसकी धर्म, नैतिकता, राजनीति, राजा विषयक विशिष्ट मान्यताओं को 'मैकियावेली-वाद' की संज्ञा दी गई है। उसे अपने 'युग का शिशु' तथा 'प्रथम आधुनिक राजनीतिक विचारक' भी कहा गया है। इन दोनों का स्पष्टीकरण आवश्यक है।

मैकियावेली अपने युग के शिशु के रूप में :

प्रो० डनिंग ने लिखा है : "किसी अन्य राजनीतिक दर्शन की व्यवस्था में वाता-वरण का प्रभाव इतना स्पष्ट नहीं जितना कि मैकियावेली में है। यह योग्य फ्लोरिंटाईन पूर्ण अर्थ में अपने युग का शिशु था।"[1] मैकियावेली अपने युग की (विशेषकर इटली की) परिस्थितियों से पूर्णतः परिचित था, उसने उन परिवर्तनों का—विशेषकर राजनीतिक परिवर्तनों का—समीप रहकर गहराई से अध्ययन किया था, जो यूरोप के अनेक देशों में तेजी के साथ हो रहे थे; राजनीतिक परिवर्तनों के आधारभूत कारणों को उसने इसी वाता-वरण में ढूँढने की चेष्टा की तथा जो समाधान प्रस्तुत किए वह भी युग की आवश्यकताओं के सर्वथा अनुकूल थे। सेबाइन ने लिखा है : "समस्त यूरोप में हो रहे महान् परिवर्तनों ने राजनीतिक सिद्धांत में भी लगभग समान परिवर्तन ला दिए और १६वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में यह परिवर्तन मैकियावेली जैसे एक कठिन—लगभग विरोधाभासी—व्यक्तित्व में सम्मिलित रूप में प्रकट हुए। उस युग के किसी अन्य व्यक्ति ने समस्त यूरोप में हो रहे राजनीतिक विकास की दिशा को इतने स्पष्ट रूप में नहीं देखा था। उसके अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति उन संस्थाओं की प्राचीनता के अनुसरण को नहीं जानता

---

१ डनिंग ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरीज Vol I पृ० २८५

था जो या तो हटती जा रही थीं या फिर जिन्होंने इस प्रक्रिया में शक्ति के नग्न स्वरूप को सहर्ष स्वीकार कर लिया था। उस युग में किसी अन्य ने राष्ट्रीय एकता के उस अपरिपक्व (प्रारंभिक) तत्त्व को इतना अधिक नहीं सराहा जिस पर वह शक्ति अस्पष्ट रूप मे आधारित थी। कोई अन्य उस राजनीतिक और नैतिक भ्रष्टाचार के प्रति इतना अधिक जागरूक नहीं था जो प्राचीन धार्मिक एवं राजनीतिक मान्यताओं के पतन का परिणाम था। फिर भी, संभवतः किसी अन्य ने स्वस्थ सामाजिक जीवन के प्रति इतनी तीव्र आसक्ति का एहसास नही किया था जैसी कि प्राचीन रोम ने उसके मस्तिष्क में पैदा की थी। निश्चित रूप से इटली को मैकियावेली से अधिक कोई और नहीं जानता था।"[1]

किसी भी विचारक के विचार युग की परिस्थितियों से न तो अछूते रहते है और न अछूते रह सकते हैं। कम अथवा अधिक रूप मे युग का वातावरण प्रत्येक विचारक को प्रभावित करता है। इस रूप में प्रत्येक विचारक अपने युग का शिशु होता है किंतु प्लेटो अथवा अरस्तू अथवा अन्य किसी को अपने युग का शिशु नहीं कहा जाता। इसका एकमात्र कारण यही है कि इन विचारकों के दर्शन में वातावरण ने निर्णायक भूमिका अदा नहीं की है। इसके विपरीत मैकियावेली के विचार युगीन वातावरण मे ही निर्मित हुए है तथा उसने जो निष्कर्ष निकाले हैं वह इटली के संदर्भ में ही निकाले गए है। मानव प्रकृति विषयक उसकी मान्यता इसी पृष्ठभूमि का सीधा परिणाम है। वह मनुष्य को प्रकृतिशः बुरा मानता है। उसी के शब्दों मे : "मनुष्य कृतघ्न, चंचल, धोखेबाज, कायर तथा लोभी है।"

मैकियावेली को 'पुनर्जागरण का शिशु' भी कहा गया है। फॉस्टर उसे 'राजनीति में पुनर्जागरण का प्रतिनिधि' मानता है। मैकियावेली का जन्म फ्लोरेंस में हुआ था और फ्लोरेंस १४६९ में पुनर्जागरण का केन्द्र था। मैकियावेली को इसी संदर्भ में 'फ्लोरेंस का शिशु' भी कहा गया है। मैकियावेली का दर्शन बड़ी दूरी तक प्राचीनता के प्रति उसके लगाव का ही परिणाम था। मध्ययुगीन मान्यताएँ टूट रही थीं; व्यक्ति और समाज पर धर्म तथा मौलिकता के बंधन ढीले हो रहे थे; स्वतंत्र चिंतन की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। नए-नए क्षेत्रों की खोज, व्यापार की नई-नई संभावनाओं तथा नए-नए वैज्ञानिक आविष्कारों से इन नवीन प्रवृत्तियों को काफी बढ़ावा मिला। यही नहीं, उसका बौद्धिक प्रशिक्षण एवं उपलब्ध प्रसाधन वातावरण के लक्षणों के सर्वथा ही अनुकूल थे। प्राचीन साहित्य—विशेषकर इतिहास—उसके (बौद्धिक) भोजन की सामग्री थी और उसमें उसने अपनी प्रकृति की सभी इच्छाओं को संतुष्ट किया। डनिंग ने लिखा है: "इस साहित्य में निहित शक्ति के प्रभाव में उसकी तीक्ष्ण बुद्धि ने तात्कालिक राजनीति की समस्याओं पर प्रहार किया तथा समाधानों का प्रतिपादन किया, जो पद्धति तथा परिणामों मे पिछली १२ शताब्दियों के समाधानों से इतने भिन्न थे जैसे कि उन शताब्दियों का कभी अस्तित्व ही न रहा हो।"[2]

---

१. सेबाइन : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी; पृ० २८८
२. डनिंग : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरीज Vo I पृ० २९०

राजनीति को व्यावहारिकता प्रदान करने के लिए उसे याद किया जाता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मैकियावेली सही अर्थों में अपने युग का शिशु था। निश्चित ही "यदि उसने किसी और समय तथा किसी अन्य स्थान में रचना की होती तो राजनीति विषयक उसकी मान्यताएँ स्पष्ट रूप से भिन्न होतीं।"[1] मैकियावेली के धर्म विषयक विशिष्ट दृष्टिकोण को 'युग विशेष का दृष्टिकोण' बतलाते हुए सेबाइन आगे लिखता है: "यदि उसने इटली के अलावा किसी अन्य देश में लिखा होता या उसने इटली में ही सुधारवाद के प्रारंभ के उपरांत लिखा होता या और भी अधिक स्पष्ट रूप से, रोमन चर्च में प्रतिक्रियात्मक-सुधारवाद (Counter Reformation) के प्रारंभ के उपरान्त लिखा होता तो ऐसा अनुमान लगाना असंभव ही है कि धर्म के संबंध में वह ऐसा दृष्टिकोण अपनाता जैसा कि उसने अपनाया है।"[2]

मैकियावेली प्रथम आधुनिक राजनीतिक विचारक के रूप में :

राजनीतिक दर्शन के इतिहास में मैकियावेली को किस युग में व्यवस्थित किया जाए इस पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ समालोचक उसे मध्ययुग का अंतिम विचारक मानते हैं, तो कुछ उसे मध्ययुग और आधुनिक युग के बीच की कड़ी मानते हैं। उनके अनुसार उसमें दोनों युगों की छाया प्रतिबिंबित होती है। किंतु अधिकांश विद्वान् उसे प्रथम आधुनिक विचारक ही मानते हैं। फॉस्टर जैसे विद्वान् भी इस मान्यता से सहमत हैं। मैकियावेली ने उन मान्यताओं का जोरदार खंडन किया है जिन पर मध्ययुगीन राजनीतिक दर्शन आधारित था। इन पुरानी मान्यताओं ने राजनीतिक विकास के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था। उसने नवीन मान्यताओं का निर्माण करके इस विकास को गति प्रदान की। यह सही है कि मैकियावेली के विचार उसके समय में ही यूरोप में प्रभावी रहे हैं किंतु यह भी सही है कि उसके ये नए विचार मध्य-युग की उस व्यवस्था को यूरोप से हटा नहीं पाए जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप उनका उद्भव हुआ था।

अधिक स्पष्टीकरण के लिए उसकी मान्यताओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) नकारात्मक मान्यताएँ ;
(ख) सकारात्मक मान्यताएँ।

(क) नकारात्मक मान्यताएँ

मैकियावेली की नकारात्मक मान्यताएँ पाठक की दृष्टि को सबसे पहले आकर्षित करती हैं। लौकिक को अलौकिक से अलग करके तथा प्राकृतिक कानून के सिद्धांत को अस्वीकार करके वह कैथोलिक व्यवस्था के आधारभूत सिद्धांतों पर घातक प्रहार करता है। मध्ययुग की समाप्ति का यही समारंभ था।

---

१. सेबाइन : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी; पृ० २८६
२. वही ; पृ० ३०२

राजनीति की धर्म तथा नैतिकता से पृथकता—मैकियावेली 'धर्मनिरपेक्ष राजनीति' का प्रतिपादक है। इससे तात्पर्य है कि राज्य का अपना स्वयं का कोई धर्म नहीं और न उसकी अपनी कोई नैतिकता ही है। दूसरे शब्दों में, राज्य धर्म तथा नैतिकता से परे है। यही नहीं, धर्म तथा नैतिकता निश्चित रूप से राज्य के अंतर्गत है, उससे ऊपर नहीं। धर्म तथा नैतिकता का संबंध राज्य से न होकर उसके नागरिकों से है। राज्य व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान तो करता है किंतु उससे यह भी अपेक्षा करता है कि इस धार्मिक स्वतंत्रता का वह (नागरिक) राज्य के विरोध में प्रयोग नहीं करेगा। ऐसा कार्य दंडनीय है। यदि यह आधुनिक राजनीति के प्रमुख लक्षण है तो निश्चय ही मैकियावेली आधुनिक राजनीति का प्रणेता दार्शनिक है।

मध्ययुग की यह एक महत्त्वपूर्ण मान्यता थी कि व्यक्ति का अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति करना है। इस मान्यता ने दुहरी व्यवस्थाओं को आवश्यक बना दिया था—लौकिक एवं पारलौकिक व्यवस्था; मानवीय कानून तथा ईश्वरीय कानून; राज्य और चर्च। मैकियावेली की इस घोषणा ने, कि व्यक्ति का लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति न होकर बड़प्पन, शक्ति एवं ख्याति प्राप्त करना है तथा उन्हें इसी विश्व में रहकर प्राप्त किया जा सकता है, मध्ययुगीन व्यवस्थाओं के आधार को ही समाप्त कर दिया। यही नहीं, उसने चर्च तथा पादरियों की कटु आलोचना की तथा इटली की तात्कालिक पतित दुरवस्था के लिए उन्हें ही पूर्णतः दोषी ठहराया। उसने चर्च के राज्य से श्रेष्ठ होने अथवा स्वतंत्र होने के दावे को गलत बतलाया और बतलाया कि चर्च राज्य के पूर्णतः अधीन है और राज्य (तथा राजा) धार्मिक एवं नैतिक बंधनों से पूर्णतः मुक्त है। वह कहता है: "राजा को राज्य की सुरक्षा का ध्यान रखने दो, साधन तो हमेशा ही सम्माननीय समझे जायेंगे तथा उनकी सामान्यतः प्रशंसा ही की जायगी।" **डिस्कोर्सेज** में तो वह और भी स्पष्ट शब्दों में परामर्श देता है: "जहाँ राज्य की सुरक्षा ही खतरे में हो वहाँ उचित-अनुचित, दया-दुष्टता, श्रेष्ठ-शर्मनाक का कोई प्रश्न नहीं होना चाहिए। इसके विपरीत उस साधन के अलावा प्रत्येक चीज को अस्वीकृत कर दिया जाना चाहिए जो उसके (राज्य के) जीवन की रक्षा कर सके तथा उसकी स्वतंत्रता को सुरक्षा प्रदान कर सके।"

स्पष्ट है, "राज्य किसी नीतिशास्त्र को नहीं जानता। जो कुछ वह करता है वह न तो नैतिक है और न अनैतिक, प्रत्युत वह नैतिकता से रहित है।" इसी प्रकार "राज्य किसी धर्म को नहीं जानता। जो कुछ वह करता है वह न तो धार्मिक है और न अधार्मिक, प्रत्युत वह धार्मिकता से रहित है।"

मैकियावेली ने राज्य के धर्म एवं नैतिकता को जितने स्पष्ट ढंग से नकारा है उतने ही स्पष्ट ढंग से उसने व्यक्ति के जीवन में धर्म एवं नैतिकता के महत्त्व को स्वीकारा भी है। राज्य के स्वास्थ्य एवं समृद्धि के लिए वह धर्म की आवश्यकता एवं उसके महत्त्व को स्वीकार करता है। **डिस्कोर्सेज** में वह इस विषय पर विस्तार से चर्चा करता है। धर्म जनता में एकता की भावना का जागरण करता है तथा सदाचरण में वृद्धि करता है। राज्य की शक्ति में वृद्धि के लिए इन दोनों के महत्त्व से वह भलीभाँति परिचित था। उसकी मान्यता थी कि धर्म का परिपालन राज्यों की श्रेष्ठता का कारण है उसी प्रकार

धर्म की अवहेलना उनके विनाश का कारण। इटली के पतन का कारण वह इसी (धर्म की) अवहेलना को मानता है। वह अच्छी तरह से जानता था कि कोई भी राज्य तब तक अपना विकास नहीं कर सकता जब तक कि उसके नागरिक केवल (दंड के) डर के कारण उनकी सेवा करते हैं। **डिस्कोर्सेज** में वह लिखता है : "जो राजा और गणराज्य स्वयं को भ्रष्टाचार से दूर रखना चाहते हैं उन्हें सर्वप्रथम समस्त धार्मिक संस्कारों की शुद्धता को सुरक्षित रखना चाहिए तथा उनके साथ श्रद्धापूर्वक व्यवहार करना चाहिए क्योंकि धर्म की हानि होते हुए देखते रहने से बढ़कर किसी देश के विनाश का अन्य कोई बड़ा लक्षण नहीं है।"

प्राकृतिक कानून की अस्वीकृति—मैकियावेली एक अन्य किंतु महत्त्वपूर्ण मध्ययुगीन मान्यता को दृढ़ता के साथ अमान्य कर देता है। यह है प्राकृतिक कानून विषयक मान्यता। प्राकृतिक कानून सिद्धांत की मान्यता है कि सत्-व्यवहार के कुछ शाश्वत नियम हैं और प्रत्येक 'अच्छा' व्यक्ति इन नियमों का पालन करता है। उसके अच्छे होने का एकमात्र मापदंड यही है कि वह कहाँ तक इन शाश्वत नियमों का पालन कर सका है, इसके विपरीत मैकियावेली का मापदंड यही है कि वह (मनुष्य) श्रेष्ठता, शक्ति तथा ख्याति को कहाँ तक प्राप्त कर सका है; उसके अनुसार व्यक्ति का लक्ष्य भी यही है। वह व्यवहार के नियमों का भी प्रतिपादन करता है और बतलाता है कि व्यक्ति किस प्रकार अपने इस लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। प्रिंस राजा के लिए ऐसे ही नियमों का संकलन है; यह साधारण व्यवहार के वह नियम हैं जिनके परिपालन से राजा अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। किंतु प्राकृतिक कानून के समान न तो यह 'शाश्वत' हैं और न यह 'सत्-व्यवहार' से संबद्ध है। उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक, धर्म-अधर्म जैसी किन्हीं भी धारणाओं से इनका दूर का भी संबंध नहीं है। आधुनिक राजनीति इसी आधार पर निर्मित है। मैकियावेली राजनीतिज्ञों का 'चहेता' (प्रिय) दार्शनिक है। सेबाइन ने लिखा है : "मैकियावेली अपने समय से लेकर आज तक कूटनीतिज्ञों का प्रिय लेखक रहा है।"[१]

(ख) सकारात्मक मान्यताएँ :

यह वह आधुनिक मान्यताएँ हैं जिन्हें उसने या तो स्वीकार किया है या फिर स्वयं ही उनका प्रतिपादन किया है। इस संदर्भ में उसकी राज्य विषयक तथा पद्धति विषयक मान्यताओं का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें कुछ तो 'सूत्र' रूप में ही हैं जिन्हें बाद के विचारकों ने सिद्धांतों का रूप प्रदान किया। संप्रभुता विषयक, राष्ट्रीय राज्य विषयक, यथार्थवादी राजनीति विषयक, अवसरवादिता विषयक मान्यताएँ इसी रूप में हैं। इनकी विस्तृत चर्चा पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है।

राज्य विषयक मान्यता—आज हम राज्य को 'सर्वोच्च' संस्था के रूप में जानते हैं। मैकियावेली ही वह विचारक है जिसने सर्वप्रथम आधुनिक राज्य के इस सर्वमान्य स्वरूप को पहचाना था।

---

१. सेबाइन : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी· पृ० २९१

मैकियावेली को आधुनिक राजनीति का प्रथम दार्शनिक माने जाने के पीछे यह एक महत्त्वपूर्ण कारण है।

संप्रभुता विषयक धारणा—संप्रभुता का सिद्धांत आधुनिक राजनीति का एक आधारभूत सिद्धांत है। यह सही है कि संप्रभुता सिद्धांत का प्रतिपादन बोदिन जैसे बाद के विचारकों ने किया था किंतु यह भी उतना ही सही है कि मैकियावेली ही वह प्रथम विचारक है जिसने संप्रभुता की धारणा को पहचाना था।

राष्ट्रीय राज्य विषयक धारणा—राष्ट्रीय राज्य विषयक धारणा आधुनिक राजनीतिक धारणा है। यह सही है कि मैकियावेली ने इस सिद्धांत (राष्ट्रीय राज्य) का प्रतिपादन उस रूप में नहीं किया था जिस रूप में कि आज हम उससे परिचित है। उसने तो 'राष्ट्रीयता' शब्द का भी प्रयोग नहीं किया। किंतु उसकी रचनाओं में राजनीति के लेखकों को वह लक्षण दिखाई दिए है जिन्होंने आगे चलकर राष्ट्रीय राज्य के सिद्धांत का रूप धारण कर लिया है। डायले ने लिखा है : "वह उन शक्तियों के संबंध में स्पष्ट रूप से सचेत था जो राज्य का संगठन करती हैं और जिनका उसके द्वारा किया गया वर्णन वस्तुतः राष्ट्रीय शक्तियों का ही वर्णन है।"[1] राष्ट्रीय शक्ति के संदर्भ में उसने समान परंपराओं एवं रीति-रिवाजों, समान भाषा, समान विधि व्यवस्था तथा अपनों को दूसरों से अलग समझने की आंतरिक भावना के महत्त्व को समझा था। यही वह लक्षण है जो किसी जनसमूह को राष्ट्र की संज्ञा प्रदान करते हैं।

यथार्थवादी राजनीति विषयक—मैकियावेली को यथार्थवादी राजनीति का प्रणेता कहा गया है। मध्ययुग के अन्वेषण एवं सुधार के शास्त्रीय विरोध से राजनीतिक दर्शन की रक्षा के पीछे मैकियावेली का यथार्थ के प्रति यही भावनात्मक लगाव था। उसने राजनीति की समस्याओं और उनके समाधानों को जितने स्पष्ट तथा सरल तरीके से प्रस्तुत किया है उसकी कल्पना करना ही कठिन है। अनुभवसिद्ध यह व्यावहारिक नियम आज नित्य बन गए हैं। मैक्सी ने लिखा है : "सभी स्पष्टवादी राजनीतिक विचारक मैकियावेली के साथ इस बात पर लगभग सहमत है कि राज्य तथा राज्य प्रशासन की कला को व्यक्तिगत नैतिकता के नियमों से संबद्ध करना व्यावहारिक दृष्टि से असंभव है। फिर भी विचित्रता तो यह है कि उसके समान अविचल रूप से स्पष्ट और खरा बनने का साहस बहुत ही कम में है।"[2] वह आगे लिखता है : "मैकियावेली की यही धृष्टता है कि उसने राजनीति को नीतिशास्त्र से अलग किया और शासन कला के एक निर्देशक सिद्धांत के रूप में आवश्यकतानुसार आचरण करने का सुझाव दिया। परंतु राजनीति विज्ञान के लिए यह एक बहुमूल्य सेवा थी। यथार्थवादिता वैज्ञानिक राजनीतिक चिंतन की दिशा में पहला कदम है।"[3]

राजनीतिक यथार्थवादियों में प्रथम होने का श्रेय मैकियावेली को दिया जाता है।

---

१. फिलिस डायले : ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थॉट ; पृ० १३४
२. मैक्सी : पोलिटीकल फिलॉसफीज; पृ० १३२
३. मैक्सी : वही; पृ० १३३

अवसरवादिता विषयक—मैकियावेली ही वह महत्त्वपूर्ण प्रथम विचारक है जिसने अवसरवादिता को राजनीतिक मान्यता प्रदान की है। वह राजा को साधनों के प्रयोग की छूट ही नहीं देता बल्कि उसे परिस्थितियों के अनुसार कार्य करने का परामर्श भी देता है; उसके लिए लोमड़ी की चालाकी और शेर का साहस दोनों आवश्यक हैं। उसमें सभी अच्छे गुणों का होना उतना आवश्यक नहीं, जितना कि उनके होने का दिखावा करना है; अच्छे रास्ते को छोड़ना आवश्यक नहीं (यदि संभव है तो) किंतु (यदि आवश्यक है तो) उसे बुरे रास्ते पर चलने का भी अभ्यस्त होना आवश्यक है, क्योंकि इन स्थितियों में भी वह 'अवसर' का अधिकतम लाभ उठा सकेगा। मैक्सी ने लिखा है : "राजनीतिक विचारों में यह मैकियावेली का युग था जिसकी प्राप्तियों (उपलब्धियों) एवं रचनाओं को तब तक याद रखा जायगा जब तक कि अवसरवादिता राजनीति विज्ञान के शब्दकोश में है।"[१]

भौतिकवादिता विषयक—मैकियावेली के लिए मनुष्य का लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति नहीं है। उसका लक्ष्य बड़प्पन, शक्ति और ख्याति अर्जित करना है। यह लौकिक लक्ष्य हैं; इनकी प्राप्ति मनुष्य इसी संसार में रहकर करता है। इस प्रकार मैकियावेली आध्यात्मिक अथवा पारलौकिक सुख (मोक्ष) के स्थान पर सांसारिक सुखों को प्रधानता देता है। वह नितांत भौतिकवादी है। भौतिक सुखों की प्राप्ति के एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में वह व्यक्तिगत संपत्ति की चर्चा करता है और राजा को परामर्श देता है कि वह व्यक्ति की संपत्ति को न छीने।

भौतिक सुखवादिता में आस्थावान् होने के कारण आलोचकों ने उसे उपयोगिता-वादी भी कहा है। मध्ययुगीन दर्शन व्यक्ति को अधिक महत्त्व नहीं देता; मैकियावेली उसे समुचित महत्त्व प्रदान करता है। व्यक्तियों को वह राज्य तथा समाज का संघटक मानता है; पुरुषार्थी बनने की दिशा में उन्हें प्रोत्साहित करता है। इसी कारण कुछ अन्य आलोचक उसे व्यक्तिवादी मानते हैं। किंतु मैकियावेली को उपयोगितावादी अथवा व्यक्तिवादी कहना वैसा ही है जैसा कि प्लेटो को फासिस्टवादी कहना।

मैकियावेली की राजनीतिक दर्शन को देन :

ऊपर जिन सिद्धांतों की चर्चा की गई है तथा जिनके कारण मैकियावेली को प्रथम आधुनिक राजनीतिक विचारक माना गया है, मोटे तौर पर वही मैकियावेली की राज-नीतिक दर्शन को देन है। उसके सिद्धांतों को गलत समझा गया। परिणामस्वरूप "उसके नाम पर एक ऐसा कलंक लग गया जो आज तक नहीं धुला है।" उसकी सबसे अधिक आलोचना तो धर्म एवं नैतिकता के प्रति उसके दृष्टिकोण के कारण हुई है।

राजा को धर्म एवं नैतिकता के बंधनों से मुक्त रखने के पीछे इटली का अपना पराभव था जिसके लिए वह रोम के चर्च एवं पोप को दोषी बतलाता है। उस पर राज-नीति की नैतिकता को भ्रष्ट करने का आरोप लगाना उसके प्रति अन्याय करना है। मैक्सी ने लिखा है : "उसने राजनीति की नैतिकता को भ्रष्ट नहीं किया—वह तो सदियों

१. मैक्सी : पोलिटीकल फिलॉसफीज़ : पृ० १२६

पहुंच हो चुकी थी किंतु उसने अवश्य ही जिस निर्मम स्पष्टवादिता के साथ उच्च पदों में पाए जाने वाले पवित्र कपटों के दंभपूर्ण ढोंग का पर्दाफाश किया, वह प्रशंसनीय है। उसे इस बात का भी श्रेय मिलना चाहिए कि वह एक सच्चा और उत्साही देशभक्त तथा आधुनिक राष्ट्रवाद के अग्रदूतों में से एक था।"[1]

वास्तविकता तो यही है कि सार्वजनिक नैतिकता और व्यक्तिगत नैतिकता को एक-दूसरे से पृथक् करना ही मैकियावेली की राजनीतिक दर्शन को एक विशिष्ट देन है। सेबाइन ने लिखा है : "यह एक ऐसा भेद है जो व्यावहारिक राजनीति और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में आज तक चला आ रहा है।"[2]

मैकियावेली की आलोचना का एक अन्य कारण उसके विचारों को ठीक ढंग से न समझना भी है। उसकी राजनीतिक रचनाएँ राजनीतिक सिद्धांत की वस्तु न होकर राजनयिक साहित्य की वस्तु है।

मैकियावेली द्वारा अपनाई गई निरीक्षण और अनुभव की पद्धति के संदर्भ में गैटिल ने लिखा है : "इन्हीं चीजों का सहारा लेकर, आगे चलकर, मध्ययुग की उस पद्धति का ध्वंस किया गया जिसके अनुसार वास्तविक जीवन की परिस्थितियों से पूर्णतया पृथक् रहकर कोरे चिंतन के बल पर दर्शन का निर्माण किया जाता था।"[3]

अंतर्राष्ट्रीय संघर्षों एवं राष्ट्रों की—विशेषकर बड़े राष्ट्रों की—महत्त्वाकांक्षाओं में मैकियावेली के इस कथन की व्यावहारिकता को ढूँढ़ना कठिन नहीं कि राज्य स्थायी नहीं रहता ; वह या तो विकास करता है या फिर उसका पतन होता है ; अत. प्रत्येक राज्य को विस्तारवादी नीति का अनुसरण करना चाहिए।

१. मैक्सी : पोलिटीकल फिलॉसफीज़ ; पृ० १३६

२. सेबाइन : "..Machiavelli a favourite writer for diplomats from his own day to the present."—ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरी ; पृ० २६१

३. गैटिल : राजनीतिक चिंतन का इतिहास पृ० १७०

६

ज़्यां ज़ाक रूसो

[JEAN JACQUES ROUSSEAU]

[१७१२—१७७८ ई०]

"रूसो के ग्रंथ फ्रांस की क्रांति की पाठ्य-पुस्तकें थीं।" —फिलिस डायले

"राजनीति के क्षेत्रों में रूसो की सीख निर्णयात्मक न होकर परामर्शमूलक थी, परंतु उसके परामर्शों का प्रवृत्तिमूलक प्रभाव साहित्य एवं इतिहास का एक लंबे समय तक प्रमुख तथ्य बना रहा।" —डनिंग

रूसो : एक दृष्टि—

१. **सामान्य परिचय**—(i) स्थान : जिनेवा (स्विट्ज़रलैंड); (ii) जन्म : २८ जून, १७१२; (iii) मृत्यु २ जुलाई, १७७८।

२. **प्रमुख रचनाएँ**—(i) दी डिस्कोर्सेज़ ऑन आर्ट्स एंड साइंसेज़ (१७४९);
(ii) दी डिस्कोर्सेज़ ऑन दी ओरीजिन ऑफ इनईक्वालिटी (१७५४);
(iii) ऐन इंट्रोडक्शन टू पोलिटीकल इकोनॉमी (१७५८);
(iv) दी नूवेल हैलोईज़ (१७६१);
(v) दी सोशल कांट्रेक्ट (१७६२);
(vi) इमाईल (१७६२);
(vii) दी कन्फैशंस (१७७८);
(viii) दी डायलॉग्ज़;
(ix) दी रिवरीज़;
(x) दी कंसीडरेशस ऑन दी गवर्नमेंट ऑफ पोलैंड।

"घोर दुविधा एवं असंतोष के क्षणों में रूसो ने यूरोप के समक्ष पुराने जर्जर ढाँचों को तोड़-फेंकने के औचित्य के साथ-ही-साथ एक ऐसा आदर्श भी प्रस्तुत किया जिसे इस तोड़-फोड़ की समाप्ति के उपरांत प्राप्त किया जा सकता था।" —*फिलिस डायले*

रूसो १८वीं शताब्दी का विचारक था। 'सामाजिक समझौतावादी' दर्शन-शास्त्रियों की 'त्रयी' में रूसो अंतिम कड़ी था।[1] युग में—विशेषकर फ्रांस में—व्याप्त

1. हॉब्स तथा लॉक इस सिद्धांत के अन्य दो प्रमुख समर्थक थे।

सामाजिक एवं राजनीतिक असंतोष की भरपूर अभिव्यक्ति रूसो में हुई, उस. रचनाओं में तात्कालिक फ्रांस की परिस्थितियों का सर्वाधिक सही प्रतिबिंब मिलता है उसका अपना स्वयं का जीवन इन्हीं परिस्थितियों का परिणाम था। जन्म से ही अभा. का आवारा जीवन जीने वाले रूसो ने समाज की 'कुरूपता' और व्यक्ति के 'कोट'. धब्बों' को नजदीक से देखा था। स्वयं का यही अनुभव उसके ज्ञान का स्रोत था। इस पृष्ठभूमि में सामाजिक रूढ़ियों तथा अन्य सभी प्रकार के बंधनों के प्रति उसके विद्रोह को सहज ही समझा जा सकता है। कला तथा विज्ञान संबंधी उपलब्धियों पर आधारित बनावटी सभ्यता के बोझ के नीचे कराह रही जनता के साथ उसे गहरी सहानुभूति थी। वह उसे परामर्श देता है: "प्रकृति में लौट जाओ।" (Go back to the nature), जहाँ कृत्रिमता नहीं, लुकाव-छिपाव नहीं, असमानता नहीं। वह कहता है: "हमें अज्ञान निष्कपटता और गरीबी लौटा दो। केवल यही हमें सुखी बना सकते है।"[1] किंतु यह 'अज्ञान, निष्कपटता और गरीबी' उस व्यक्ति की नहीं जो (आधुनिक) समाज में निवास कर रहा है, बल्कि उस पूर्व-सामाजिक (समाज के निर्माण के पहले के) व्यक्ति की है जिसे रूसो 'प्रकृति का अविकृत शिशु' (Unspoiled child of nature) कहता है।

सोशल कांट्रैक्ट में रूसो अधिक व्यावहारिक एवं अपेक्षाकृत ठोस धरातल अपना लेता है और विकास की गति को पीछे मोड़ने की बात न कहकर तात्कालिक समाज को ही इस प्रकार रूपान्तरित करने का परामर्श देता है जहाँ व्यक्ति उतना ही 'स्वतंत्र' तथा 'समान' जीवन व्यतीत कर सके जैसा जीवन वह (समाज के निर्माण के पूर्व) प्राकृतिक अवस्था में जीने का अभ्यस्त था। "इस प्राकृतिक अवस्था की ऐतिहासिकता में रूसो को हॉब्स तथा लॉक से अधिक विश्वास था।"[2] 'सामाजिक समझौते का सिद्धांत' (Social Contract Theory) में उसकी गहरी आस्था का पता इसी बात से चल जाता है कि उसने इस सिद्धांत का प्रतिपादन उस समय किया था जबकि उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया प्रारंभ हो चुकी थी। गैटिल ने लिखा है: "जिस समय इंग्लैंड में ह्यूम 'सामाजिक समझौता सिद्धांत' की जड़ें खोद रहा था, उसी समय रूसो ने उस सिद्धांत का प्रयोग राज्य विषयक एक ऐसे दृष्टिकोण का पोषण करने के लिए किया जो हॉब्स के निरंकुशवाद और लॉक के संयत संविधानवाद दोनों से भिन्न था।"[3] उसका लक्ष्य संप्रभुता के एक ऐसे सिद्धांत का प्रतिपादन करना था जिसके द्वारा स्वतंत्रता एवं सत्ता में समन्वय स्थापित किया जा सके।

सामान्य परिचय :

व्यक्ति का जीवन ही उसके 'जीवन दर्शन' की कुंजी होता है। यह कथन संभवतः रूसो के लिए ही गढ़ा गया प्रतीत होता है। वह अन्य लोगों से अनेकानेक रूपों में भिन्न था रूसो उन बदकिस्मतों में से एक था जो पालन-पोषण के बिना ही बड़े होते हैं, जिन्हें

१. रूसो: दी डिस्कोर्सेज ऑन आर्ट्स एंड साईसेज।
२. गैटिल: राजनीतिक चिंतन का इतिहास पृ० २९४
३ वही पृ० २९३

विरासत में कुछ भी प्राप्त नहीं होता, जिन्हें पिता से भी दुर्व्यसन ही प्राप्त होते हैं, जो जन्म से ही उपेक्षित एवं स्नेहहीन रहने के कारण अहंकारी एवं असंयमी वन जाते हैं। जो वाल्यावस्था में 'विगड़े हुए लड़के' और वड़े होने पर 'आवारा' की पदवी से विभूषित होते हैं। इस प्रकार रूसो न तो कोई राजनेता था और न कोई वहुत वड़ा विद्वान् और न दार्शनिक, किंतु वह प्रकृति से ही बड़ा भावुक एवं संवेदनशील था। उसका अपना स्वयं का अनुभव ही उसकी संपदा थी। विलक्षण वुद्धि ही नहीं, अभिव्यक्ति की विशिष्टता प्रकृति की उसे महानतम देन थी।

स्पष्ट है, रूसो में लेखक के सभी गुण विद्यमान थे। यही कारण है कि केवल ३८ वर्ष की आयु में ही उसे एक बड़े लेखक के रूप में मान्यता एवं सम्मान प्राप्त हो गया था। उसकी रचनाओं में उसके जीवन की जटिलता पूर्णतः अभिव्यक्त हुई है; असंगतियों एवं विरोधाभासों ने उसके सिद्धांतों को आलोच्य बना दिया है। उसके विचारों को समझने के लिए उसके जीवन का संक्षिप्त सामान्य परिचय आवश्यक है। डनिंग ने लिखा है : "रूसो को, एक व्यक्ति के रूप में स्पष्ट जानकारी द्वारा ही राजनीतिक सिद्धांत के लिए उसके योगदान को सही रूप में समझा जा सकता है।"[1]

रूसो का जन्म २८ जून १७१२ को जिनेवा (स्विट्ज़रलैंड) में हुआ था। उसका पिता व्यवसाय से एक कुशल घड़ीसाज था। उसकी माता की मृत्यु प्रसव में ही हो गई थी। अतः उसके पालन-पोषण का दायित्व उसके पिता को ही वहन करना पड़ा। उसका पिता अस्थिर प्रवृत्ति का होने के कारण स्वभाव से उग्र तथा फिजूलखर्च था। रोमांचकारी एवं प्रेम-प्रसंगों से ओतप्रोत सस्ते साहित्य में उसकी विशेष अभिरुचि थी। दस वर्ष से भी कम उम्र के बालक रूसो से वह इन कहानियों को सुना करता था, वगैर इस बात की चिंता किए कि इन सब का, जिन्हें वह पूरी तरह समझता भी नहीं, उसके कोमल एवं भावुक मन पर क्या और कितना प्रभाव पड़ेगा ? रूसो **कन्फैशंस** (Confessions) में स्वयं पर इसके न केवल प्रभाव को स्वीकार करता है वरन् इस बात को भी स्वीकार करता है कि इसके प्रभाव से वह कभी भी पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाया।

इससे यह तो हुआ कि रूसो को 'पढ़ने और समझने का अभ्यास' इस छोटी उम्र से ही पड़ गया था किंतु यौन (Sex) की जो भावना उसके अपरिपक्व दिल और दिमाग में घर कर गई थी वह कभी संतुष्ट न हो सकी; उसके संवंध तो अनेक स्त्रियों से हुए किंतु वह स्थायी संवंध किसी से भी न वना सका। थिरेसी (Thirise) नामक एक निम्नवर्गीय महिला अंततः उसकी जीवन-संगिनी बनी। आश्चर्य तो इस बात का है कि जब १७७० में रूसो ने वृद्धावस्था में थिरेसी के साथ विधिवत् विवाह किया उस समय तक थिरेसी उसके ५ बच्चों की माँ बन चुकी थी, किंतु बच्चों को अनाथालय में भेज दिया गया क्योंकि उनके पालन-पोषण की शक्ति रूसो में नहीं थी।

---

१. डनिंग : "The contributions of Jean Jacques Rousseau to political theory can be rightly understood only through a pretty clear idea of the man himself."—ए हिस्ट्री ऑफ पोलिटीकल थ्योरीज ; Vol. I, पृ० १